सनाद्यन्त क्रियापदों का सङ्गणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण

sanādyanta kriyāpadoṁ kā saṅgaṇakīya anuprayoga, abhijñāna evṁ viśleṣaṇa

दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएचडी (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधकर्त्ता

भूपेन्द्र कुमार

शोध-निर्देशक

डॉ. सुभाष चन्द

सहायक आचार्य

संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-110007

2018

सनाद्यन्त क्रियापदों का सङ्गणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण

sanādyanta kriyāpadoṁ kā saṅgaṇakīya anuprayoga, abhijñāna evṁ viśleṣaṇa

दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएचडी (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधकर्त्ता

भूपेन्द्र कुमार

शोध-निर्देशक

डॉ. सुभाष चन्द

सहायक आचार्य

संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-110007

2018

Department of Sanskrit
University of Delhi
Delhi-110007, India

Date : 23.01.2018

Certificate of Originality

The research work embodied in this thesis entitled **"सनाद्यन्त क्रियापदों का सङ्गणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण (sanādyanta kriyāpadoṁ kā saṅgaṇakīya anuprayoga, abhijñāna evṁ viśleṣaṇa)"** has been carried out by me at the Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India. The Manuscript has been subjected to plagiarism checked by **Urkund software**. The work submitted for consideration of award of Ph.D. is original.

(Bhupendra Kumar)
Candidate

Student Approval Form

Name of the Author	**BHUPENDRA KUMAR**
Department	**Department of Sanskrit**
Degree	**DOCTOR OF PHILOSOPHY**
University	**UNIVERSITY OF DELHI**
Guide	**DR. SUBHASH CHANDRA**
Thesis Title	**सनाद्यन्त क्रियापदों का सङ्गणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण (sanādyanta kriyāpadoṁ kā saṅgaṇakīya anuprayoga, abhijñāna evṁ viśleṣaṇa)**
Year of Award	**TO BE AWARDED**

Agreement

1. I hereby certify that, if appropriate, I have obtained and attached hereto a written permission/statement from the owner(s) of each third party copyrighted matter to be included in my thesis, allowing distribution as specified below.
2. I hereby grant to the university and its agents the non-exclusive license to archive and make accessible, under the conditions specified below, my thesis, in whole or in part in all forms of media, now or hereafter known. I retain all other ownership rights to the copyright of the thesis. I also retain the right to use in future works (such as articles or books) all or part of this thesis, or project report.

Conditions:

1. Release the entire work access Worldwide	

2. Release the entire work for 'My University' only for **1 year** **2 year** **3 year** **and after this time release the for** **access worldwide**	
3. Release the entire work for 'My University' only while at the same time releasing the following parts of the work (e.g. because other parts relate to publication) for worldwide access. **a) Bibliographic details and Synopsis only.** **b) Bibliographic details, synopsis and the following chapters only.** **c) Preview/Table of Contents/24 page only.**	
4. View Only (No Downloads) (worldwide)	
5. Release the entire work access Worldwide	
6. Release the entire work for 'My University' only for **1 year** **2 year**	

3 year **and after this time release the for** **access worldwide**	
7. Release the entire work for 'My University' only while at the same time releasing the following parts of the work (e.g. because other parts relate to publication) for worldwide access. **d) Bibliographic details and Synopsis only.** **e) Bibliographic details, synopsis and the following chapters only.** **f) Preview/Table of Contents/24 page only.**	
8. View Only (No Downloads) (worldwide)	

Signature of the Scholar **Signature an Seal of the Guide**

Place: UNIVERSITY OF DELHI, DELHI

Date: 23.01.2018

University of Delhi

Supervisor's Certificate for Exclusion of Self-Published work

Following five (5) Research papers based on this research have been published in the international peer reviewed journals and international conference proceedings:

1. Chandra, Subhash, Kumar, Vivek and Kumar, Bhupendra. "Innovative Teaching and Learning of Sanskrit Grammar through SWAGATAM (स्वगतम्)." *Language in India* 17.1 (2017).
2. Kumar, Bhupendra and Yadav, Rakesh. "आधुनिक संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (उत्तरसीताचरित के सन्दर्भ में)" *International Referred Online Research Journal* 55 (2017).
3. Kumar, Bhupendra and Chandra, Subhash. "संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों की संगणकीय पहचान एवं विश्लेषण: सामान्य अध्ययन". *International Referred Online Research Journal,* 52 (2016).
4. Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Acute Sporadic English in Bollywood Film Song's Lyrics: A Textual Evidence based Analysis of Code-Mixing in Hindi". *Language in India*, 16.11 (2016).
5. Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Lexical Resources for Detection, Analysis and Word Formation process for Sanskrit Morphology". *In Proceedings of 3rd Workshop on Indian Language Data: Resources and Evaluation under 10th Edition of its Language Resources and Evaluation Conference (LREC-2015), Grand Hotel Bernardin Conference Center, Portorož (Slovenia)*, During 23-28 May 2016., pp.65-68, (2016).

Following four (4) Research papers based on this research have been presented in the international conferences and accepted for publications:

1. Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "SWAGATAM: An E-Learning Tools for Teaching and Learning Sanskrit

Grammar in Higher Education". *In Proceedings of the International Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर : वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 15-18, 2016. **(To be published in 2018).**

2. Chandra, Subhash and Kumar, Bhupendra. "संस्कृत सनाद्यन्त विश्लेषक". *In Proceedings of the International Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर : वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 15-18, 2016. **(To be published in 2018).**
3. Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Detection, Analysis and Word Formation Process of Sanskrit Morphology: A Hybrid Approach". *In Proceedings of the Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015. **(To be published in 2018).**
4. Kumar, Bhupendra and Chandra, Subhash. "वेदान्त ग्रन्थों के अर्थनिर्धारण हेतु नियम एवं उदाहरण संयुक्त विधि का प्रयोग करके संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों की संगणकीय पहचान एवं विश्लेषण". *In Proceedings of the Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015. **(To be published in 2018).**

This published works have been included in the thesis and has not been submitted for any degree to any University/institute.

Signature of Student **Signature of Supervisor**

जीवन अस्थिर अनजाने ही, हो जाता पथ पर मेल कहीं,
सीमित पग डग, लम्बी मंज़िल, तय कर लेना कुछ खेल नहीं।
दाएँ-बाएँ सुख-दुःख चलते, सम्मुख चलता पथ का प्रसाद
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

संसार रूपी सागर में जीवन जीने की कला सिखाने वाले पूज्य दादा जी श्रीलाल सिंह, एवं चिरस्मरणीय स्वर्गीय पिता श्री राजपाल सिंह, त्याग एवं तपस्या की प्रतिमूर्ति पितृतुल्य चाचा श्री सतीश कुमार शास्त्री जी एवं माता श्रीमती कमलेश देवी जी, तथा गुरुजनों के श्री शुभ चरण कमलों में सादर समर्पित !

आभार

प्रस्तुत शोध की पूर्णता हेतु मुझे प्रभुप्रसाद की हमेशा प्राप्ति होती रही है अतः आरम्भ में प्रथमगुरु जगत् रचयिता परमपिता परमेश्वर को मेरा बारम्बार प्रणाम । इस शोध की पूर्णता में गुरुजनों के आशीर्वाद तथा अग्रजों एवं मित्रों की प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, अत: इनके प्रति आभार-व्यक्त करना अपना दायित्व समझता हूँ । इसी क्रम में परमादरणीय शोधनिर्देशक डॉ. सुभाष चन्द जी को हार्दिक नमन करता हूँ । जिन्होंने सनाद्यन्त क्रियापदों का सङ्गणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण इस विषय पर शोध करने के लिए प्रेरित किया । संस्कृत शास्त्रों एवं संगणकीय भाषाविज्ञान में आपके कौशल, निरन्तर सहायता एवं योग्य शोध निर्देशन के बिना मेरे लिए यह कार्य कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव ही था । शोध के दौरान आप द्वारा दिये गये निरन्तर समय एवं नवीन विषय संगणकीय भाषाविज्ञान के प्रशिक्षण के साथ-साथ कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग का भी ज्ञान आपने बड़ी ही सरलता के साथ कराया है । आपके स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन से यह शोधकार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका है । छात्रों एवं शोधकार्यों के प्रति आपका इतना समर्पण मेरे लिए सम्मानीय है । इस शोधकार्य को आपने एक ही नहीं अनेकों बार सम्पादित किया जिसके कारण यह कार्य इस स्थिति में पहुँच पाया है । अत: आदरणीय गुरुजी के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ ।

छात्रों के प्रति स्नेहशील-हृदया संस्कृत विभाग की विभागाध्यक्षा आदरणीया प्रो. शारदा शर्मा जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे इस विषय पर काम करने का अवसर प्रदान किया । हमारे विभाग के अन्य प्राध्यापकगण प्रो. रमेश चन्द्र भारद्वाज, सहाचार्य डॉ. डॉ. पूर्णिमा कौल, डॉ. मीरा द्विवेदी, भारतेन्दु पाण्डेय, डॉ. ओमनाथ बिमली, डॉ. दयाशंकर तिवारी, डॉ. सत्यपाल सिंह, डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी, डॉ. वेद प्रकाश डिंडोरिया, डॉ. रंजीत बेहरा, सहायक आचार्य, डॉ. बलराम शुक्ल, डॉ. टेकचन्द मीणा, डॉ. धनञ्जय आचार्य, डॉ. उमाशंकर, डॉ. सोमवीर, डॉ. करुणा आर्य, डॉ. श्रुति राय, डॉ. मोहिनी, डॉ. अवधेश प्रताप सिंह, डॉ. राजीव रंजन, डॉ. एम किशन, डॉ. विजय शंकर द्विवेदी को भी मैं धन्यवाद देना चाहूँगा जिनका समय-समय पर अमूल्य मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं स्नेह मिला । विभागीय शोधसमिति (DRC) का भी आभार व्यक्त करता हूँ

जिसकी सहमति से ही इस विषय पर कार्य करने का अवसर मिला। मैं किरोडिमल महाविद्यालय के सभी अध्यापकगणों का आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिनके निर्देशन में मुझे दो वर्षों तक अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं पाणिनि महाविद्यालय रेवली के आचार्य श्री विजयपाल विद्यावारिधि जी तथा आचार्य प्रदीप कुमार शास्त्री का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। जिनका अन्तेवासी बनकर मुझे संस्कृत व्याकरणशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। और आगे शोध कार्य करने की बीजाङ्करण स्वरूप प्रेरणा प्राप्त हुई।

शोध प्रबन्ध लेखन में सबसे बड़ा कार्य सम्पादन का होता है। इस शोध को हमारे ही विभाग के अध्यापकगणों एवं मित्रों ने एक ही बार नहीं कई बार सम्पादित किया जिससे शोध में आने वाली कमियों को यथासम्भव दूर किया जा सका। बिना इनके यह कार्य इतना अच्छा सम्भव नहीं था। मेरे सहशोधार्थी एवं शोधमण्डल के सदस्यों ने भी समय-समय पर अपना सहयोग दिया इसके लिए उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। मेरे ही विभाग के संगणकीय भाषाविज्ञान के शोधार्थी साक्षी, माधव, विवेक, रवि कुमार मीना तथा जलज का भी मै आभारी हूँ।

मुझे यहाँ तक पहुँचाने में मेरे परिवार के सभी सदस्य एवं सभी सम्बन्धियों की अहम् भूमिका रही है। अतः उनके लिए भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। जिनका आशीर्वाद मुझे प्रतिपल प्राप्त होता रहा है। मैं अपने अग्रजों भ्राता हरीश कुमार, आचार्य रामचन्द्र, तथा अनुजों में अर्चना आर्या, योगेन्द्र कुमार एवं रोहित आर्य का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

विश्वविद्यालय के उन सभी पुस्तकालय कर्मचारियों तथा विभागीय कार्यालय के सभी कर्मचारियों का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तक प्राप्ति में तथा प्रशासनिक कार्यों में समय-समय पर सहयोग किया। विभागीय प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने में श्री प्रताप सिंह, श्री मयंक कुमार, श्रीमती मोनिका दुबे एवं श्री संदीप का हर समय सहयोग मिला। इनका भी आभार व्यक्त करता हूँ। इस शोध का परिणाम दिल्ली विश्वविद्यालय के सर्वर पर उपलब्ध होगा जिसका उपयोग कोई भी कहीं से इंटरनेट के माध्यम से कर सकता है। अतः इसके लिए मैं अपने विश्वविद्यालय के कम्प्यूटर केन्द्र का भी आभारी हूँ जिन्होंने इसे होस्ट करने के लिए सभी सुविधाएँ प्रदान की। अन्त में उन सभी को धन्यवाद देना चाहूँगा जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ।

भूपेन्द्र कुमार

विषय-सूची

Certificate of Originality ..... i-i

Student Approval Form ..... ii-iv

Supervisor's Certificate for Exclusion of Self-Published work ..... v-vi

आभार ..... viii-ix

विषय-सूची ..... x-xvi

संस्कृत लिप्यन्तर के लिये अन्ताराष्ट्रीय वर्णमाला(आईएएसटी) ..... xvii-xvii

बराह सॉफ्टवेयर द्वारा देवनागरी के लिये यूनीकोड में संस्कृत टंकण सहायता ..... xviii-xviii

परिचय 01-06

प्रथम अध्याय 07-40

संस्कृत व्याकरण परम्परा एवं क्रियापद

1. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का परिचय 07-12
2. संस्कृत व्याकरणशास्त्र-परम्परा 12-25
3. पाणिनि अष्टाध्यायी का परिचय 25-27
4. संस्कृत पदों का संक्षिप्त परिचय 27-31
5. संस्कृत क्रियापद एवं सनाद्यन्त 31-40

द्वितीय अध्याय 41-95

संस्कृत सनाद्यन्तों का परिचय एवं शोध सर्वेक्षण

1. संस्कृत सनाद्यन्तों का परिचय 41-51

1.1. सभी धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय 42-51

1.2. चुनिन्दा धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय 51-59

1.3. धातु तथा सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय 59-85

2. शोध सर्वेक्षण 86-95

तृतीय अध्याय 96-130

संस्कृत सनाद्यन्तों की रूपसिद्धि प्रक्रिया

चतुर्थ अध्याय 131-149

सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु संगणकीय नियम

पञ्चम अध्याय 150-154

वेब आधारित सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण सिस्टम का परिचय

निष्कर्ष एवं भावी अनुसंधान संभावनाएँ 155-156

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 157-164

सन्दर्भग्रन्थ सूची (References) 157-164

सहायक ग्रन्थसूची (Bibliography) 165-170

ईंटरनेट ग्रन्थ सूची (Internet source)..... 171-171

शब्दकोश (Dictionary)..... 172-172

परिशिष्ट.....173-184

प्रथम परिशिष्ट.....173-184

पाणिनीय धातुपाठ एवं सनादि प्रत्ययों से निर्मित धातुओं के प्रारूप

द्वितीय परिशिष्ट.....185-189

सनाद्यन्त प्रकरण में प्रयुक्त सूत्रों की सूची

तृतीय परिशिष्ट.....190-190

वेब आधारित सिस्टम का स्क्रीनशॉट

चतुर्थ परिशिष्ट 191-191

सनाद्यन्त विश्लेषण सिस्टम परिणाम का स्क्रीनशॉट

प्रकाशन सूची..... 192-201

प्रथम प्रकाशन 192-192

Kumar, Bhupendra and Yadav, Rakesh. "आधुनिक संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (उत्तरसीताचरित के सन्दर्भ में)" International Referred Online Research Journal 55 (2017).

द्वितीय प्रकाशन 193-193

Chandra, Subhash, Vivek Kumar, and Bhupendra Kumar. "Innovative Teaching and Learning of Sanskrit Grammar through SWAGATAM (स्वगतम्)." *Language in India* 17.1 (2017).

तृतीय प्रकाशन 194-194

Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Acute Sporadic English in Bollywood Film Song's Lyrics: A Textual Evidence based Analysis of Code-Mixing in Hindi". *Language in India*, 16.11 (2016).

चतुर्थ प्रकाशन..... 195-195

Kumar, Bhupendra and Chandra, Subhash. "संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों की संगणकीय पहचान एवं विश्लेषण: सामान्य अध्ययन". *International Referred Online Research Journal,* 52 (2016).

पञ्चम प्रकाशन..... 196-196

Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Lexical Resources for Detection, Analysis and Word Formation process for Sanskrit Morphology". *In Proceedings of 3rd Workshop on Indian Language Data: Resources and Evaluation under 10th Edition of its Language Resources and Evaluation Conference (LREC-2015), Grand Hotel Bernardin Conference Center, Portorož (Slovenia)*, During 23-28 May 2016., pp.65-68, (2016).

षष्ठ प्रकाशन 197-197

Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "SWAGATAM: An E-Learning Tools for Teaching and Learning Sanskrit Grammar in Higher Education". *In Proceedings of the International*

Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर : वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi During, Dec 15-18, 2016. **(To be published in 2018).**

सप्तम प्रकाशन 198-198

Chandra, Subhash and Bhupendra, Kumar. "संस्कृत सनाद्यन्त विश्लेषक". *In Proceedings of the International Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर: वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 15-18, 2016. **(To be published in 2018).**

अष्टम प्रकाशन 199-199

Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. "Detection, Analysis and Word Formation Process of Sanskrit Morphology: A Hybrid Approach". *In Proceedings of the Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015. **(To be published in 2018).**

नवम प्रकाशन 200-200

Kumar, Bhupendra and Chandra, Subhash. "वेदान्त ग्रन्थों के अर्थनिर्धारण हेतु नियम एवं उदाहरण संयुक्त विधि का प्रयोग करके संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों की संगणकीय पहचान एवं विश्लेषण". *In Proceedings of the Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015. **(To be published in 2018).**

दशम प्रकाशन 201-201

Sakshi and Kumar, Bhupendra. "वैदिक दार्शनिक आख्यानों का स्वरूपात्मक विश्लेषण". *International Referred Online Research Journal,* 5, (2017)**.**

शोधपत्र प्रस्तुतिकरण प्रमाणपत्रसूची 202-206

प्रथम प्रस्तुतिकरण 202-203

Paper entitled "SWAGATAM: An E-Learning Tools for Teaching and Learning Sanskrit Grammar in Higher Education" has been presented in *International Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर : वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 15-18, 2016.

द्वितीय प्रस्तुतिकरण 204-204

Paper entitled "संस्कृत सनाद्यन्त विश्लेषक" has been presented in *International Conference on Veda: Veda as Global Heritage: Scientific Perspectives (वेदों की वैश्विक धरोहर : वैज्ञानिक आयाम), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 15-18, 2016.

तृतीय प्रस्तुतिकरण 205-205

Paper entitled "Detection, Analysis and Word Formation Process of Sanskrit Morphology: A Hybrid Approach" has been presented *Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015.

चतुर्थ प्रस्तुतिकरण..... 206-206

Paper entitled "वेदान्त ग्रन्थों के अर्थनिर्धारण हेतु नियम एवं उदाहरण संयुक्त विधि का प्रयोग करके संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों की संगणकीय पहचान एवं विश्लेषण" has been presented in *Twenty Second International Congress of Vedanta(22Vedanta), Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi* During, Dec 27-30, 2015.

संस्कृत लिप्यन्तर के लिये अन्ताराष्ट्रीय वर्णमाला(आईएएसटी)

INTERNATIONAL ALPHABET FOR SANSKRIT TRANSLITERATION (IAST)

अ *a*	आ *ā*	इ *I*	ई *ī*	उ *u*
ऊ *ū*	ऋ *ṛ*	ॠ *ṝ*	ऌ *ḷ*	ए *e*
ऐ *ai*	ओ *O*	औ *Au*	ं *ṃ*	ः *ḥ*
क् *k*	ख् *kh*	ग् *G*	घ् *Gh*	ङ् *ṅ*
च् *c*	छ् *C*	ज् *J*	झ् *Jh*	ञ् *ñ*
ट् *ṭ*	ठ् *ṭh*	ड् *ḍ*	ढ् *ḍh*	ण् *ṇ*
त् *t*	थ् *th*	द् *D*	ध् *Dh*	न् *n*
प् *p*	फ् *ph*	ब् *B*	भ् *Bh*	म् *m*
य् *y*	र् *R*	ल् *L*	व् *v*	
स् *s*	श् *ś*	ष् *ṣ*	ह् *H*	
क्ष् *kṣ*	ज्ञ् *jñ*	श्र् *śr*		

बराह सॉफ्टवेयर द्वारा देवनागरी के लिये यूनीकोड में संस्कृत टंकण हेतु सहायक तालिका

Unicode Devanagari Input Mechanism through Baraha software (http://www.baraha.com)				
अ (a)	आ (A/aa)	इ (i)	ई (I/ee)	उ (u)
ऊ (U/oo)	ऋ (Ru)	ॠ (RRu)	ऌ (lRu)	ॡ (lRRu)
ए (e)	ऐ (ai)	ओ (o)	औ (au)	अं (aM)
ः (aH)				
क् (k)	ख् (K/kh)	ग् (g)	घ् (G/gh)	ङ् (~G)
च् (c)	छ्(C)	ज् (j)	झ् (J/jh)	ञ् (~j)
ट् (T)	ठ् (Th)	ड् (D)	ढ् (Dh)	ण् (N)
त् (t)	थ् (th)	द् (d)	ध् (dh)	न् (n)
प् (p)	फ् (ph)	ब् (b)	भ् (bh)	म् (m)
य् (y)	र् (r)	ल् (l)		व् (v/w)
स् (s)	श् (S/sh)	ष् (Sh)	ह् (h)	ळ् (Lx)
क्ष् (kSh)	ज्ञ् (j~j)	श्र् (Sr/Shr)		

परिचय

विश्वपटल पर भारत के प्रसिद्ध होने का कारण यहाँ पर प्राप्त होने वाली अमूल्य एवं अद्वितीय ज्ञानसम्पत्ति से है जो ज्ञान संस्कृत भाषा के रूप में प्राप्त हुआ है । यह सर्वविदित है कि भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा ही है । संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीनतम भाषा है क्योंकि विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद इसी भाषा में लिखित है। संस्कृत भाषा को समझने से पहले इस शब्द की व्युत्पत्ति को समझना अत्यावश्यक है संस्कृत शब्द डुकृञ् करणे धातु से क्त प्रत्यय तथा सुट् करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ ऐसी भाषा से है जो परिनिष्ठित एवं शुद्ध है अतः संभवतः सर्वाधिक प्राचीनतम एवं पवित्र वेदज्ञान का आविर्भाव इसी भाषा में हुआ है। इस वेदरूपी ज्ञान को सुगमता से प्राप्त करने हेतु कालान्तर में वेदरूपी पुरुष की कल्पना करके उसके अङ्गों का विभाजन किया गया है इन वेद के अङ्गों को वेदाङ्ग नाम से जाना जाता है इन वेदाङ्गों में व्याकरण को प्रमुखता प्रदान करते हुए मुख की संज्ञा प्रदान की गई है 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' (अवस्थी, 1972)। जिसका वर्णन पाणिनीय शिक्षा में प्राप्त होता है। जिस प्रकार इस सम्पूर्ण संसार के कर्ता धर्ता के रूप में आदिपुरुष ब्रह्मा का नाम स्मरण किया जाता है उसी प्रकार भारतीय विद्वान संस्कृत व्याकरण के आदिम उपदेशक के रूप में व्याकरण का प्रारम्भ ब्रह्मा से ही मानते है । कालान्तर में अनेक वैयाकरणों का नाम इतिहास में प्राप्त होता है परन्तु उन सब में लब्धप्रतिष्ठित पाणिनि ही हैं । इसलिये व्याकरणशास्त्र कर्त्ताओं में सुमेरु के समान भगवान् पाणिनि सदैव अनन्यतम रहेंगे । महर्षि पाणिनि की अद्भुत रचना अष्टाध्यायी ही है जिसकी महत्ता का कारण इसकी वैज्ञानिकता से है पाणिनीय व्याकरण मात्र एक पुस्तक न होकर शब्दों का एक वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें शब्दों की निर्माणप्रक्रिया का वैज्ञानिक एवं पारम्परिक वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण अष्टाध्यायी लगभग चार सहस्र सूत्र तथा आठ अध्याय एवं बत्तीस पादों में विभक्त है, सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में षड्विध सूत्रों का विधान महर्षि पाणिनि ने किया है । अष्टाध्यायी को अष्टक, शब्दानुशासन एवं वृत्तिसूत्र इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। श्री हण्टर ने अष्टाध्यायी को मानव मस्तिष्क का अतीव महत्वपूर्ण अविष्कार कहा है । अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि ने चार और उपदेशों का प्रणयन किया जिनको मिलाकर पाणिनीय पञ्चोपदेश के नाम से जाना जाता है वे पाँचों उपदेश इस प्रकार हैं अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ एवं लिङ्गानुशासन हैं ।

अष्टाध्यायी में सुबन्त तथा तिङन्त दोनों प्रकार के शब्दों की निर्माण प्रक्रिया को दर्शाया गया है। तिङन्तों के मूल के लिए पाणिनि ने धातुपाठ का उपदेश किया है जिसमें लगभग 2000 मूलधातुओं का उपदेश प्राप्त होता है। जिनकी धातुसंज्ञा पाणिनीय सूत्र भूवादयो धातवः से होती है। परन्तु पाणिनीय अष्टाध्यायी में धातुसंज्ञा करने वाले दो सूत्रों का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें दूसरा सूत्र है सनाद्यन्ता धातवः है। इस सूत्र से बनने वाली धातुओं के लिए अन्य धातुपाठ की संरचना पाणिनि ने नहीं की है क्योंकि इन धातुओं की निर्माण प्रक्रिया को अष्टाध्यायी में बताया गया है जोकि सनादि बारह प्रत्ययों के लगने के बाद बनती हैं ये बारह प्रत्यय सन्, यङ्, णिच्, णिङ्, ईयङ्, आय, यक्, क्यच्, काम्यच्, क्यष्, क्यङ्, तथा क्विप् हैं। इस प्रकार मूलधातुपाठ में उपदिष्ट धातुओं से जब कालक्रमानुसार लकार आते है तो वह प्राथमिक क्रियारूप कहलाते है यथा- पठ्+तिप् = पठति, हसति, भवति आदि, तथा जब उन्हीं मूलधातुओं तथा सुबन्तों से ये बारह प्रत्यय लगते हैं तो गौणक्रियारूपों का निर्माण होता है यथा- पठितुम् इच्छति= पठ्+सन्= पिपठिष, इस प्रकार का धातु प्राप्त होता है जिससे पुनः वाच्य एवं काल के अनुसार लकारार्थ को द्योतित करने हेतु क्रियारूप बनते हैं। मूलधातुपाठ में धातुओं का अर्थसंग्रहण एवं विभाजन लोकव्यवहार के आधार पर किया गया है। इस विभजन में कुछ धातुएँ सेट् एवं अनिट् दो प्रकार से विभाजित है तथा कुछ धातुएँ सकर्मक तथा अकर्मक रूप से विभाजित हैं सकर्मक धातुओं से लकार कर्ता तथा कर्म को कहने के लिए होते हैं तथा अकर्मक धातुओं से कर्ता तथा भाव को द्योतित करने हेतु होते हैं। इसी प्रकार से सनाद्यन्त धातु बनने के बाद भी लकार कर्ता, कर्म, भाव आदि को द्योतित करने हेतु होते हैं। सनाद्यन्त धातु बनने के बाद भी इनसे आत्मनेपद तथा परस्मैपद के अनुसार तिबादि अठारह प्रत्यय लगाकर के क्रियारूप बनाये जाते हैं। धातुपाठ में धातुओं को उनके क्रियारूपों की संरचना के आधार पर दस गणों में विभक्त किया गया है (Chandra and Jha, 2011), तथा ग्यारहवें गण के रूप में कण्डवादिगण को जोडा है क्योंकि इस गण में आने वाले शब्दों को धातु तथा शब्द दोनों माना गया है परन्तु यहाँ पर धातुओं का प्रकरण होने के कारण से धातु रूप में ही गृहित किया गया है।

Sr	गण	विकरण	उदाहरण	प. धा.	आ.धा.	उ. धा.	कुल धा.	सेट् धा.	अनिट् धा.
1.	भ्वादि	शप्	भवति	648	377	58	**1083**	982	101
2.	अदादि	शब्लुक्	अत्ति	41	25	5	**71**	38	33
3.	जुहोत्यादि	श्लु	जुहोति	16	2	6	**24**	5	19

4.	दिवादि	श्यन्	दीव्यति	96	39	5	**140**	106	34
5.	स्वादि	श्नु	सुनोति	24	2	9	**35**	18	17
6.	तुदादि	श	तुदति	134	10	12	**156**	122	34
7.	रुधादि	श्नम्	रुणद्धि	13	3	9	**25**	12	13
8.	तनादि	उ	तनोति	0	2	8	**10**	9	1
9.	क्र्यादि	श्ना	क्रीणाति	45	0	16	**61**	48	13
10.	चुरादि	शप्	चोरयति	361	0	50	**411**	409	2
11.	कण्ड्वादि	यक्	कण्डूयति	40	0	5	**45**	45	0
	कुल सं.	**11**		**1418**	**460**	**183**	**2061**	**1794**	**267**

इस प्रकार से जब इन धातुओं से सनादि प्रत्यय करते हैं तो इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जाती है उदाहरण स्वरूप अगर इन 2000 दो हजार धातुओं से सन् प्रत्यय करते हैं तो प्रत्येक धातु से एक नूतन धातु का निर्माण होता है इस प्रकार 2000+200=4000, धातु बन जाती हैं इसी प्रकार आगे भी निर्माण प्रक्रिया चलती है।

उद्देश्य

समय के साथ-साथ शैक्षिक क्षेत्र में भी परिवर्तन बडी तीव्रता के साथ देखा जा रहा है। प्राथमिक विद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों तक पारम्परिक प्रणाली के साथ साथ उचित तकनीकी प्रक्रियाओं और संसाधनों के सृजन तथा प्रबन्धन द्वारा अधिगम तथा कार्य सुधार द्वारा अध्ययन-अध्यापन में भी परिवर्तन दिखाई देता है। इस प्रकार यह तकनीकि शिक्षा सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर और इंटरनेट अनुप्रयोगों तथा गतिविधियों का समावेश करती हुई शिक्षा के क्षेत्र में तीव्रता से आगे बढ रही है। जिस कारण आज आप घर बैठे ही किसी भी विषय के बारे में ऑनलाइन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जिससे वह विद्यार्थी जिसके शहर में वह कोर्स उपलब्ध नहीं हैं या जो बाहर जाकर पढाई नहीं कर सकते हैं वह भी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए अपने इस शोध द्वारा संस्कृत भाषा के सनाद्यन्त क्रियापदों को विषय बनाकर इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा गुरुजनों से प्राप्त हुई है। इस शोध में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों से प्राप्त नियमों के माध्यम से तथा धातुपाठ से मूलधातुओं का ग्रहण करके सनाद्यन्त धातुओं का निर्माण किया गया है इस शोध का मुख्य विषय सनाद्यन्त धातुओं के रूपों की पहचान करना है। इस शोध

में सनादि प्रत्ययों से बनने वाले क्रियारूपों की पहचान करते हुए विश्लेषण किया जा सकेगा। इस तरह से यह सिस्टम दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की साईट (http://sanskrit.du.ac.in) पर ई-शिक्षण टूल्स (E-Learning Tools) के अन्तर्गत उपलब्ध होगा जिससे जिज्ञासु इसका अधिकाधिक उपयोग कर सकते है।

वेब आधारित सनाद्यन्त क्रियारूपों का अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण सिस्टम का परिचय

यह सिस्टम दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की साईट (http://sanskrit.du.ac.in) पर ई-शिक्षण टूल्स (E-Learning Tools) के अन्तर्गत उपलब्ध होगा। इस वेवसाईट को सर्च करते ही सर्वप्रथम यूजर इंटरफेस दिखाई देता है जैसा चित्र संख्या 1 मे दिखाया गया है। जिसमें पाठ टंकित करने के लिये एक पाठबॉक्स (Text Box) दिया गया है जिसमें टंकन की सहायता से इच्छित सनाद्यन्त क्रियारूप लिखने के बाद क्लिक करें नामक बटन पर क्लिक करने पर प्रयोक्ता द्वारा टंकित सनाद्यन्त क्रियारूप की सूचना इसी पेज पर नीचे प्रदर्शित होती है जिसमें मूलधातु या शब्द की जानकारी के साथ-साथ प्रत्यय, लकार, पुरुष तथा वचन की सम्पूर्ण जानकारी प्रदर्शित होती है।

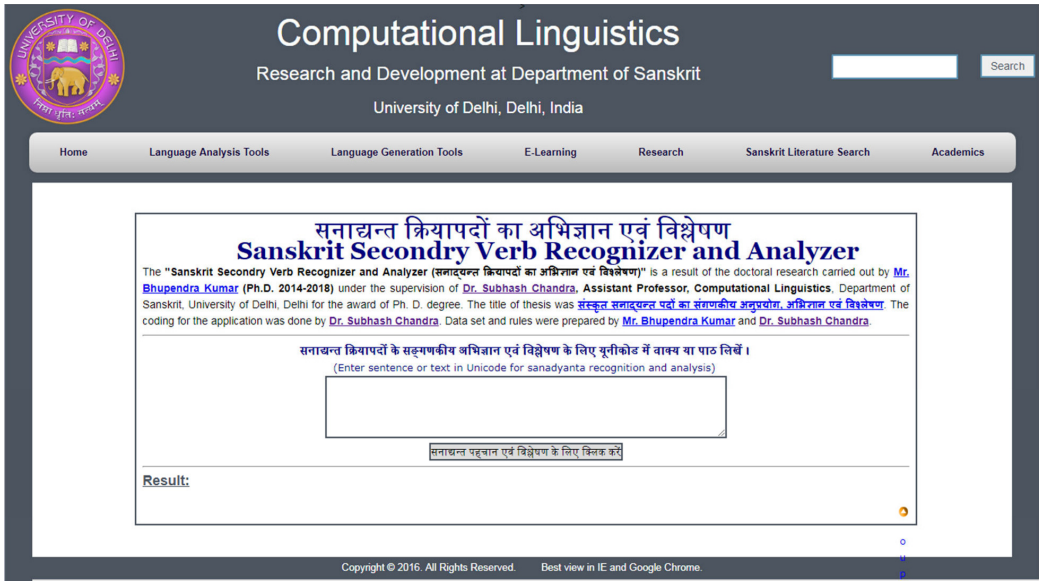

Figure 1: वेब आधारित संस्कृत सनाद्यन्त क्रियारूप का स्क्रीनशॉट

इसी प्रकार सुबन्तों से बनने वाली सनाद्यन्त क्रियापदों की सूचना भी प्रदर्शित की जाती है इस शोध के द्वारा सभी सनाद्यन्तों का ज्ञान सरलता से प्राप्त किया जा सकता है इसके माध्यम से सभी विश्वविद्यालय वे छात्र जिन्हें सनाद्यन्त क्रियारूपों को ज्ञात करने में समस्या का सामना करना पडता था वे सुगमता से प्राप्त कर सकेंगे।

शोधप्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय

यह शोधप्रबन्ध कुल पाँच अध्यायों में विभक्त है इसके अन्त में निष्कर्ष एवं भावी अनुसंधान संभावनाएँ, परिशिष्ट, शोध के दौरान प्रकाशित शोधपत्रों की एक सूची एवं शोधपत्र प्रस्तुतिकरण प्रमाणपत्रसूची आदि शामिल किया गया है । पाँच अध्यायों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

प्रथम अध्याय:

"**संस्कृत व्याकरण परम्परा एवं क्रियापद** " नामक प्रथम अध्याय है जिसमें संस्कृत व्याकरण परम्परा का सामान्य परिचय तथा संस्कृत धातुओं के विषय में बताया गया है ।

द्वितीय अध्याय:

द्वितीय अध्याय के रूप में "**संस्कृत सनाद्यन्तों का परिचय एवं शोध** सर्वेक्षण" हैं सनाद्यन्त प्रक्रिया के शास्त्रीयपक्ष को पाणिनीय नियमों के आधार पर दुहने का प्रयास किया गया है जिससे सनाद्यन्त से सम्बन्धित सभी पक्षों पर गम्भीरता से विचार किया गया है । तथा इस विषय् से सम्बन्धित

तृतीय अध्याय:

तृतीय अध्याय में "**संस्कृत सनाद्यन्तों की रूपसिद्धि प्रक्रिया**" को दर्शाया गया है जिसमें विशेष स्थानों पर घटित प्रक्रिया का वर्णन मुख्य है ।

चतुर्थ अध्याय:

"**सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु संगणकीय नियम**" इस चतुर्थ अध्याय में सनाद्यन्त के डिजिटलाइजेशन में प्रयुक्त होने वाली संगणकीय विधियों का वर्णन किया गया है । तथा इसके विकास में प्रयुक्त प्रमुख डेटा, नियम एवं प्रोग्राम्स का वर्णन किया गया है ।

पञ्चम अध्याय:

अन्तिम अध्याय के रूप में "**वेब आधारित सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण सिस्टम**" को रखा गया है। जिसमें वेब आधारित सिस्टम का सामान्य परिचय सचित्र दिया गया है।

निष्कर्ष एवं भावी शोध की सम्भावनाएँ:

शोध के आधार पर निष्कर्ष तथा इससे सम्बन्धित भावी सम्भावनाओं को प्रदर्शित किया गया है जिससे भावी शोधार्थी शोधहेतु प्रेरित हो सकें, तथा इस विषय को आगे गति प्रदान की जा सके।

प्रथम अध्याय

संस्कृत व्याकरण परम्परा एवं क्रियापद

1. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का परिचय

सृष्टि परिवर्तनशील है यह परिवर्तन इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में देखा जा सकता है, चाहे वह मनुष्य का रहन सहन हो, आचार-विचार हो, खान-पान हो अथवा अपने भावों या विचारों को आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया हो। मनुष्य समाज अपने विचारों का आदान प्रदान करने के लिए भाषा का अवलम्बन करता है । मानव मात्र को परस्पर व्यवहार करने के लिये किसी संकेत विशेष की आवश्यकता आदिकाल से ही रही है एवं आजकल भी है अब वह भाषा सांकेतिक, इंगित, चित्रित अथवा भाषिक किसी भी प्रकार की हो सकती है । इन सब संकेतों में जो व्यवहार योग्य तथा विचार विनिमय का सर्वोत्तम साधन है वह भाषा कहलाती है । इसलिये व्यवहार हेतु संसार में अनगिनत भाषाओं का प्रयोग होता है । भारतीय ज्ञान, चिन्तन-मनन, प्राचीन-काल से संस्कृत भाषा में ही मुखरित हुआ है, मनीषियों के अनुसार दैवीवाक् (संस्कृत) को मानव की आदिम भाषा माना जाता है । जिससे संसार की समस्त भाषाओं की उत्पत्ति को भी स्वीकार किया जाता है। संस्कृत भाषा की प्राचीनता को जानने के लिए विद्वानों ने इसे दो भागों में विभक्त किया है-

1. वैदिक संस्कृत 2. लौकिक संस्कृत ।

1. वैदिक संस्कृत-

वेदे भवः= वैदिकः । वेद विश्व की लब्धप्रतिष्ठित पुस्तक हैं, संसार के सम्पूर्ण ज्ञान के आकर ग्रन्थ हैं। वेदों में समस्त भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान है । मनुस्मृतिकार आचार्य मनु ने चारों वेदों को सम्पूर्ण ज्ञान का आधार माना है, अर्थात् वेदों में सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के सूत्र विद्यमान हैं[1] (पाण्डेय, 1998; शास्त्री, 2005)। वेदों के वास्तविक अर्थों को समझने के लिए इसके छः अङ्गों की सहायता ली जाती है, जिन्हें वेदाङ्ग कहा गया है। पाणिनीयशिक्षा के अनुसार वेदरूपी पुरुष के छः (6) अङ्ग हैं। 'अङ्ग' शब्द का अर्थ निरुक्तकार ने 'उपकारक' बताया है- 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि', अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने

[1] सर्वज्ञानमयो हि सः (मनु. 2.7)।

में सहायता मिलती है उनको अङ्ग कहा जाता है (शर्मा, 1969; शर्मा, 2014 तथा उपाध्याय, 1997 । जिनके नाम इस प्रकार है- शिक्षा (Education), कल्प (Eon), छन्द (Meter), व्याकरण (Grammar), ज्योतिष (Astrology) और निरुक्त (Etymology) आदि[2] (उपाध्याय एवं पाण्डेय, 1997; महतो, 2015 तथा अवस्थी, 1972)। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, प्रातिशाख्य आदि में प्रयुक्त संस्कृत-भाषा को वैदिक संस्कृत के नाम से जाना जाता है तथा उसको दैवी भाषा, देववाणी, आदि भाषा, अतिभाषा, वेदमयी भाषा, वैदिकी भाषा, इत्यादि सार्थक नामों से भी जाना जाता है । देव परिवार से सर्वप्रथम इस भाषा की उत्पत्ति हुई । असुर, गन्धर्व, यक्ष आदि परिवारों ने भी उसका अनुसरण किया तत्पश्चात प्राकृत लोग भी उसी भाषा का प्रयोग करने लगे[3] (शर्मा, 2013) ऋग्वेद सृष्टि का प्राचीनतम ग्रन्थ है जो संस्कृत भाषा में ही है अतः संस्कृत देवभाषा कहा जाता है सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर समस्त परिवारों में वृद्धतम सदस्य ब्रह्मा ही है सभी विद्याओं की भाँति वे भाषाओं के जन्म दाता हैं । इसीलिए अमरकोष में वाणी का प्रथम पर्याय ब्राह्मी ही है[4] (शास्त्री, 1998) । यथा- भाषा का प्राचीनतम प्राप्तरूप वैदिक संहिताएँ हैं और वे साक्षात ब्रह्मा की रचनाएँ मानी जाती हैं[5](शास्त्री, 1947) । फिर यह वाणी देवों की परम्परा के माध्यम से ऋषियों-मुनियों द्वारा जनसाधारण तक पहुँची[6] (मीमांसक, 2006) । ब्रह्मा ने यह वाणी प्रथम अपने पुत्र अंगिरा को पश्चात् पौत्र बृहस्पति को सिखाई बृहस्पति ने इन्द्र को और इन्द्र ने भरद्वाज को इसकी शिक्षा दी । इन्द्र द्वारा बृहस्पति से दिव्यसहस्र वर्षों तक शिक्षा प्राप्त करने के कारण[7](जोशी. 2004) अथवा पराक्रम से सर्वोच्च पद प्राप्त करने के कारण आदि संस्कृत भाषा को इन्द्र की भाषा अर्थात् ऐन्द्री नाम

---

[2] छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात्साङ्गकमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।। पाणिनीयशिक्षा-कारिका- 41-42.

[3] देवीं वाचमजन्यन्त देवास्तां विश्वरूपां पशवो वदन्ति- ऋग्वेद 8/100/11

[4] ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती- अमरकोष-शब्दवर्ग- पृष्ठ-16

[5] "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङिरस , इतिहासः पुराणम्" (बृहदारण्यकोपनिषद् 11/4/10)

[6] "ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्दो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयोः ब्राह्मणेभ्यः (ऋक्तन्त्रव्याकरण)

[7] "बृहस्पतिरिन्द्राय, दिव्यं वर्ष सहस्रं शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम" (पस्पशाह्निक)

से भी जाना गया तथा देवभाषा का अन्तिम विश्लेषण और व्याकरण उन्हीं का मान्य हुआ[8] (सोनटक्के, 1970)। उस समय इन्द्र व्याकरण का वर्चस्व होने के कारण बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ने भी इन्द्र से इसकी शिक्षा ग्रहण की[9](फडके, 1992) तथा देवों के पश्चात् मानवों में सम्भवतः भरद्वाज ही सर्वश्रेष्ठ भाषाविज्ञ हुए[10](फडके, 1992) । जिसके कारण पाणिनि ने उनके नामोल्लेखपूर्वक उन्हीं के मत को प्रस्तुत किया[11](जिज्ञासु, 2007)। इस प्रकार वेद वेदाङ्गों में प्रयुक्त भाषा जो देवों, ऋषियों-मुनियों की भी भाषा थी उसको वैदिक संस्कृत के नाम से जाना गया । प्राचीन संस्कृत पर दृष्टिपात् करने से ज्ञात होता है कि संस्कृत भी कालचक्र के साथ परिवर्तित होती रही है । वाचस्पति गैरोला के अनुसार- भाषा और विचारों का क्षेत्र सदा ही विकासमान रहा है भाषा और विचारों के तारतम्य को बाँधने वाली विद्या व्याकरण है व्याकरण एक शास्त्र है जिसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और जो अपने आप में सर्वांगपूर्ण है, (गैरोला, 2014) यही कारण है कि आज संस्कृत के दो प्रकार प्रमुखतः देखने को मिलते हैं । वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों इत्यादि की भाषा वैदिक संस्कृत है ।

2. लौकिक संस्कृत

लोके भवः = लौकिकः । लोक अर्थात् संसार की भाषा, संसार में प्रयुक्त भाषा, संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त भाषा को लौकिक संस्कृत या व्यवहार में प्रयुक्त संस्कृतभाषा को लौकिक संस्कृत के नाम से जाना जाता है अथवा यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल के पश्चात का जो काल है वह लौकिक संस्कृत का काल है इसका समय 900 ई० पू० माना गया है । कालान्तर में कवियों अथवा महाकवियों ने जो रचनाएं सृजित की वे सभी रचनाएँ लौकिक संस्कृत की रचना कहलायी । यथा- रामायण, महाभारत ,रघुवंशम् इत्यादि । परन्तु दोनों कालों की संस्कृत में पर्याप्त अन्तर है । किसी भी भाषा को समझने के लिए उस भाषा के कुछ आवश्यक साधनों का होना अनिवार्य है, जैसे वेदों

---

[8] "वाग् वै पराच्य व्याकृताऽवदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्वीतिति तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्"(तैत्तिरीय संहिता 6.4.7.3)

[9] "इन्दो भरद्वाजाय प्रोवाच (ऐतरेय आरण्यक 2/2/4)

[10] "भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनुचानतमः (ऐतरेय आरण्यक 1/1/2)

[11] "ऋतो भारद्वाजस्य" (अष्टाध्यायी 7.2.63)

के सम्यक् ज्ञान हेतु वेदाङ्गों का उन्नयन किया गया। जिनमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष ये छः अंग आते हैं। इन्हें वेदरूपी पुरूष के अंग माना गया है। जिनमें व्याकरण को प्रमुखता प्रदान करते हुए मुख रूप माना गया है[12](महतो, 2015) इसीलिए वेदों में स्थित मन्त्रों या ऋचाओं के उचित ज्ञान हेतु व्याकरण में पारङ्गत होना अति आवश्यक है तथा वैदिक मन्त्रों के भावबोधन अर्थात् भावों को जानने (प्रकट करने) के लिए भी व्याकरण का ज्ञान होना अति आवश्यक है। "मुखमिव मुख्यम्" अर्थात् जो मुख के समान है वही मुख्य है, प्रधान है। शब्दों के शुद्धस्वरूप के ज्ञान हेतु व्याकरण का अध्ययन अत्यन्तावश्यक है, वेदाङ्गों में व्याकरण को प्रधान माना है[13] (जोशी, 2004) तथा प्रधान में किया गया यत्न फलवान होता है[14] (जोशी, 2004)। व्याकरण अध्ययन के महत्व को स्पष्ट करते हुए किसी कवि की यह उक्ति सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है कि यदि अन्य विद्याओं का अध्ययन करने का अवसर या शक्ति नहीं है तो भी कम से कम व्याकरण का अध्ययन अवश्य करना चाहिए, अन्यथा अशुद्ध उच्चारण के कारण अनर्थ की प्राप्ति होगी[15] (गौड, 2015)।

'व्याक्रियन्ते अनेन इति व्याकरण'[16](जोशी, 2004) जिसके माध्यम से शब्दों का सम्यक् ज्ञान हो वही व्याकरण है। शब्दों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, शब्दरूपी ज्योति ही संसार को प्रकाशित करती है, यदि शब्द रूपी ज्योति न होती तो समस्त संसार अंधकार में डूब जाता[17] (शास्त्री, 1994)। क्योंकि सम्यक् रूप से प्रयुक्त एक शब्द भी स्वर्गलोक में कामना को पूरा करने वाला होता है[18](जोशी, 2004)। इसीलिए महाभाष्यकार ने ब्राह्मणों को बिना किसी कारण के भी

---

[12] मुखं व्याकरणं स्मृतम् (पाणिनीयशिक्षा, महतो, 2015), कारिका- 42

[13] प्रधाने च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। महाभाष्य-पस्पशाह्निक पृष्ठ-23

[14] प्रधाने कृतः यत्नः फलवान् भवति। महाभाष्य-पस्पशाह्निक पृष्ठ-23

[15] यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं, सकृत्-शकृत्॥ नामधातुक्रियारूपः भाषाशास्त्रीय अध्ययन

[16] करणार्थे ल्युट् प्रत्ययः –महाभाष्य पश्पशाह्निक पृष्ठ-78

[17] इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसार न दीप्यते॥ काव्यादर्श-१-४

[18] एकः शब्दः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति। महाभाष्य-पस्पशाह्निक- पृष्ठ-36

व्याकरण अध्ययन अध्यापन का आदेश दिया है[19] (जोशी, 2004)। व्याकरण की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन रही है यह एक विज्ञान है, यह तथ्य पाणिनीय व्याकरण से स्पष्ट होता है चूंकि पाणिनि व्याकरण का एक-एक सूत्र पूर्णरूप से वैज्ञानिक है । विज्ञान का अर्थ है किसी भी विषय वस्तु का सूक्ष्मता से ज्ञान प्राप्त करना (त्रिपाठी, 1977) जिसे परा विद्या कहते हैं । भर्तृहरि ने भी इसे पराविद्या तथा पवित्रतम ज्ञान कहा है[20](अवस्थी, 2010) । व्याकरण परम्परा भारत में ऋग्वैदिक काल से चली आ रही और पाणिनि इसमें अनुपम हैं (त्रिपाठी,1977) ।

व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति -

ब्रह्मा से लेकर दयानन्द सरस्वती पर्यन्त समस्त भारतीय विदान् एकस्वर से स्वीकार करते हैं कि संसार में जितना भी ज्ञान है उन सबका आदि मूल वेद हैं[21](मीमांसक, 2006)। इस सिद्धान्तानुसार व्याकरणशास्त्र का आदिम स्रोत भी वेद ही हैं, वैदिक मन्त्रों में अनेक पदों की व्युत्पत्ति उपलब्ध होती है जो इस सिद्धान्त की पोषक हैं**[22]** (मीमांसक1994) । यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति निरूक्तकार ने इस प्रकार की है**[23],[24]।[25]।**

शब्दशास्त्र के प्रमाणभूत महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण के गौण प्रयोजनों का वर्णन करते हुए चत्वारि श्रृङ्गा०[26], उत त्वः पश्यन्[27] इत्यादि मन्त्रों का उद्धरण देकर इनकी व्याकरण सम्मत व्याख्या की है (मीमांसक1994)। उपर्युक्त उदाहरणों एवं मतों से स्पष्ट होता है कि व्याकरण के आदि स्रोत भी वेद ही हैं । व्याकरण पद जिस धातु से निष्पन्न होता है, उसका मूल अर्थ में प्रयोग यजुर्वेद में उपलब्ध होता है[28](भट्टाचार्य, 1973)। व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति कब हुई इस प्रश्न का उत्तर अद्यावधि अनुत्तरित है, परन्तु ये निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि प्राप्त वैदिक पदपाठों की

---

[19] ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयश्चेति । महाभाष्य-पस्पशाह्निक-पृष्ठ-23

[20] तथैव लोके विद्यानामेषा विद्या परायणम् । वाक्यपदीयम्-1.14

[21] We may divide the whole of Sanskrit literature beginning with the Rigveda ending with Dayanada's introduction to his edition of the Rig-veda. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास-द्वितीय अध्याय

[22] यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः- ऋग्वेद-1.164.50

[23] यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः- निरुक्त-3.19

[24] धान्यमसि धिनुहि देवान् -यजुर्वेद-1.20

[25] धिनोतेर्धान्यम् -महाभाष्य-5.2.4

[26] ऋग्वेद-4.58.3

[27] ऋग्वेद्-10.71.4

[28] दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापति । यजुर्वेद-19.77

रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त कर चुका था। प्रकृति-प्रत्यय, धातु-उपसर्ग, और समासघटित पूर्वोत्तरपदों का विभाग पूर्णतया निर्धारित हो चुका था । बाल्मीकि रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामायणकालीन समाज भी व्याकरण के सुव्यवस्थित पठन-पाठन से सम्यकरूपेण अवगत था[29](मुनि, 1983) । हनुमान से जब श्रीराम मिलते है तब हनुमान के व्याकरण सम्मत इतने शुद्ध उच्चारण को देख बहुत प्रसन्न हुए। हनुमान का इतना वाक्पटु होना युक्त भी था क्योंकि हनुमान के पिता वायु शब्दशास्त्र-विशारद थे (मीमांसक, 2006) । शब्दशास्त्र के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग रामायण (मुनि, 1983), गोपथ ब्राह्मण[30] (देवी, 2008), मुण्डकोपनिषद्[31] (तैलंग, 2000), और महाभारत[32] (सुक्थंकर, 1998) आदि अनेक ग्रन्थों में मिलता है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि व्याकरण शास्त्र की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन काल में हो गयी थी । पं० युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि- त्रेता युग के आरम्भ में व्याकरणशास्त्र ग्रन्थ रूप में सुव्यवस्थित हो चुका था।

2. संस्कृत व्याकरणशास्त्र-परम्परा

व्याकरण परम्परा को ऋक्तन्त्रकार ने प्रतिपादित किया है- उनके अनुसार ब्रह्मा ने बृहस्पति को व्याकरण का प्रवचन किया, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने ऋषियों को तथा ऋषियों ने ब्राह्मणों को व्याकरण का उपदेश किया है[33] (मुंशीराम, 1962)। इस प्रकार से व्याकरण की आदि परम्परा का आरम्भ हुआ है उसका कुछ विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं-

ब्रह्मा- समस्त भारतीय प्राचीन विद्वानों, ऐतिहासिकों का यह मत है कि संसार में जितनी भी विद्याएँ हैं, उन सभी विद्याओं के प्रवचन कर्ता ब्रह्मा ही हैं। ब्रह्मा का आदि प्रवचन ही शास्त्र अथवा

---

[29] नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्। बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपभाषितम् ॥ किष्किन्धा-3.29

[30] ओङ्कारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वैयाकरणं, को विकारः, को विकारी, कति वर्णः, कतिमात्रः, कत्यक्षरः, कतिपदः कः संयोगः किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणम् - गोपथ ब्राह्मण- 1.24

[31] तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषामिति- मुण्डकोपनिषद्-1.1.5

[32] सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा ॥ महाभारत उद्योगपर्व - 43.61

[33] "ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्दो भरद्वाजाय , भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयोः ब्राह्मणेभ्यः - ऋक्तन्त्रम्-1-4

शासन के नाम से प्रसिद्ध हुआ[34](मीमांसक, 1994)। इसके पश्चात् जितने भी प्रवचन हुए अथवा जितने भी वैयाकरणों द्वारा ग्रन्थों का प्रणयन किया गया वह इसी ब्रह्मा के प्रवचन के अनुसार हुआ, परन्तु वह उत्तरोत्तर संक्षिप्तता को प्राप्त होता चला गया । अतएव बाद के सभी ग्रन्थ अनुशास्त्र, अनुतन्त्र, अथवा अनुशासन कहलाते हैं चूँकि अनुशासन आदि में प्रयुक्त अनुनिपात अनुक्रम और हीन दोनों ही अर्थों का परिचायक है[35] (त्रिपाठी एवं मालवीय 2012)। इसलिए उत्तरवर्ती तन्त्र या ग्रन्थ संक्षिप्त होने से पूर्व तन्त्रों की अपेक्षा हीन माने जाते हैं । ब्रह्मा द्वारा प्रोक्त 22 शास्त्रों का उल्लेख करते हुए व्याकरण का भी उल्लेख पं भगवद्दत्त ने अपनी पुस्तक में किया है[36](सत्यश्रवा, 1996) ।

बृहस्पति-

ब्रह्मा ने बृहस्पति को व्याकरण का ज्ञान प्रदान किया । बृहस्पति ने अनेक शास्त्रों का प्रवचन किया जिनमें से व्याकरण भी एक है । बृहस्पति द्वारा व्याकरण के प्रवचन करने के प्रमाण अनेक ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं । महाभाष्य के अनुसार बृहस्पति ने इन्द्र को दिव्य सहस्र वर्ष तक प्रतिपद व्याकरण का उपदेश किया था[37](जोशी, 2004) । इसका उल्लेख ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी प्राप्त होता है[38](शास्त्री, 1970) । इस प्रकार से ये व्याकरण परम्परा निरन्तर बढती रही । अद्यावधि जितने भी व्याकरण प्राप्त होते हैं उनको प्रायः तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है-

1. **छान्दसमात्र- प्रातिशाख्यादि ।**
2. **लौकिकमात्र- कान्त्रादि ।**
3. **लौकिक वैदिक उभयविध- आपिशल, पाणिनीयादि ।**

इस के अतिरिक्त यदि व्याकरण के प्रवक्ता आचार्यों पर दृष्टिपात् करें तो सभी वैयाकरणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. पाणिनि से प्राचीन

---

[34] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास,द्वितीय अध्याय,पृष्ठ-67

[35] अनु शाकटायनं वैयाकरणाः - काशिका-1.4.86 सूत्र की टीका

[36] भारतवर्ष का बृहद् इतिहास-द्वितीय भाग,अध्याय-4

[37] बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्द पारायणं प्रोवाच । महाभष्य-1.1.1

[38] पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम् ।

दिव्यं वर्षसहस्रं च सा त्वा दध्यौ च पुष्करे ॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण-प्रकृतिखण्ड-4.27)

2. पाणिनि से अर्वाचीन

पाणिनि से पूर्व अनेक वैयाकरणों के व्याकरण प्रचलन में थे । उन्होनें अपने व्याकरण में जिन आचार्यों का उल्लेख किया है वे सब पाणिनि से प्राचीन हैं । पाणिनि ने अष्टाध्यायी में अनेक आचार्यों के मतों को उद्धृत किया है । यथा- प्राचाम्[39] (जिज्ञासु, 2007) अर्थात् प्राचीन आचार्यों के मत में, उदीचाम्[40] (जिज्ञासु, 2007) उदीच्य आचार्यों के मत में, आचार्याणाम्[41] (जिज्ञासु, 2007), एकेषाम्[42] (जिज्ञासु, 2007) इत्यादि अनेक स्थानों पर पाणिनि ने प्राच्य विद्वानों के मत का उद्धरण दिया है । एतदतिरिक्त भी अनेक वैयाकरणों के नामविशेष का उल्लेख किया है । पाणिनि से पूर्व लगभग 85 वैयाकरण प्रकाश में थे[43](मीमांसक, 1994) । उन 85 वैयाकरणों मे से लगभग दश आचार्यों को नामोल्लेख पूर्वक महर्षि पाणिनि ने स्वयं स्मरण किया है, यथा- शाकल्य[44](जिज्ञासु, 2007), काश्यप[45] (जिज्ञासु, 2007) शाकटायन[46] (जिज्ञासु, 2007) सेनक[47] (जिज्ञासु, 2007), आपिशलि[48] (जिज्ञासु, 2007) , स्फोटायन[49] (जिज्ञासु, 2007), चाक्रवर्मण[50] (जिज्ञासु, 2007), गालव[51] (जिज्ञासु, 2007), भारद्वाज[52] (जिज्ञासु, 2007), गार्ग्य[53] (जिज्ञासु, 2007) । अन्य भी अनेक आचार्यों का नामोल्लेख पाणिनीय व्याकरण में प्राप्त होता हैं ।

वर्तमान समय में अष्ट या नव व्याकरण ही विद्वत्समाज में प्रसिद्ध है, उनमें भी पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होता है, कुछ विद्वान आठ व्याकरणों का तो कुछ विद्वान नौ व्याकरणों का उल्लेख करते हैं । मीमांसक ने अपने व्याकरणशास्त्र का इतिहास में श्री तत्त्वविधि नामक वैष्णवग्रन्थ को उद्धृत्

---

[39] प्राचां ष्फः तद्धितः । अष्टाध्यायी- 4.1.117

[40] उदीचामिञ् । अष्टाध्यायी-4.3.153

[41] आदाचर्याणाम् । अष्टाध्यायी-7.3.49

[42] यजुष्येकेषाम् । अष्टाध्यायी-8.3.108

[43] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास प्रथम अध्याय पृष्ठ - 63

[44] सम्बुद्धौ शाकलस्येतावनार्षे-अष्टाध्यायी-1.1.16

[45] तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य- अष्टाध्यायी-1.2.25

[46] लङः शाकटायनस्य- अष्टाध्यायी-3.4.111

[47] गरेश्च सेनकस्य- अष्टाध्यायी-5.4.112

[48] वा सुप्यापिशिलेः- अष्टाध्यायी-6.1.92

[49] अवङ् स्फोटायनस्य- अष्टाध्यायी-6.1.123

[50] ई चाक्रवर्मणास्य- अष्टाध्यायी-6.1.130

[51] तृतीयादिषु भाषितपुंस्कंपुंवद् गालवस्य- अष्टाध्यायी-7.1.74

[52] ऋतो भारद्वाजस्य- अष्टाध्यायी-7.2.63

[53] अतो गार्ग्यस्य- अष्टाध्यायी-8.1.20

करते हुए नव वैयाकरणों का नामोल्लेख प्राप्त होना स्वीकार किया है[54] (मीमांसक, 2006) । इसी प्रकार से रामायण में भी नव व्याकरणों की चर्चा दृष्टिगोचर होती है[55] (शास्त्री,1990) ।

परन्तु इसके विपरीत अर्वाचीन ग्रन्थों में आठ ही शब्दशास्त्रज्ञों की गणना की गयी है[56] । इसी प्रकार वोपदेव ने भी कविकल्पद्रुम में अष्ट वैयाकरणों को ही अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है[57] (गणि, 2005)। दुर्गाचार्य ने भी व्याकरण के अष्ट प्रभेदों को स्वीकार किया है[58] (शर्मा, 1969)। इस प्रकार से वैयाकरणों के मत में भिन्नता देखने को मिलती है । इस समय व्याकरण सम्प्रदाय में "ऐन्द्रं चान्द्रं", "इन्द्रश्चन्द्रं" इस प्रकार के दो पद्य प्रसिद्ध हैं । इन पद्यों के अनुसार मुख्यतः एकादश व्याकरण प्राप्त होते हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

ऐन्द्रव्याकरण-

ब्रह्मा से बृहस्पति ने व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया । बृहस्पति ने इन्द्र के लिए प्रतिपद-पाठ द्वारा इस शब्दशास्त्र का प्रवचन किया था । उस समय तक प्रकृति प्रत्यय का विभाजन नहीं हुआ था । सबसे पहले इन्द्र ने ही शब्दोपदेश की प्रतिपदपाठ-रूपी क्लिष्टता को समझा और उन्होनें प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा शब्दोपदेश प्रक्रिया की प्रकल्पना की (मीमांसक, 2006) । तैतिरीय संहिता में प्रमाण प्राप्त होता है[59](सातवलेकर, 2002)। इसकी व्याख्या करते हुए सायणाचार्य इस प्रकार लिखते हैं – उस अखण्ड वाणी को मध्य-मध्य से तोडकर और उसका प्रकृति-प्रत्यय विभाग किया,[60](सायण, 1985) अर्थात् प्राचीन समय में वाणी व्याकरण सम्बन्धी प्रकृति-प्रत्ययादि संस्कार से रहित अखण्ड

---

[54] ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।

सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम् ॥ व्याकरण शास्त्र पृष्ठ सं-22

[55] सर्वासु विद्यासु तपोविधाने पस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।

सोयं नवव्याकरणार्थ वेत्ता ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड-36.47

[56] ब्राह्मपैशानमैन्द्रश्च प्राजापत्यं बृहस्पतिम् ।

त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयमथाष्टकम् ॥ हैमवद्वृत्यवचूर्णि-प्रारम्भ में

[57] इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नाआपिशली शाकटायनः ।

पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥ कविकल्पद्रुम-प्रारम्भ में

[58] व्याकरणमष्टप्रभेदम् - दुर्गनिरुक्तवृत्ति-पृष्ठ-74

[59] "वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत् । ते देवा इन्द्रब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति तामिन्द्रो मध्यतो अवक्रम्य व्याकरोत्" (तैतिरीय संहिता-6-4-7)

[60] तामखण्डां वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययविभागं सर्वत्राकरोत्-सायण ऋग्भाष्य-पृ०26

पदरूप में बोली जाती थी, देवताओं ने अपने राजा इन्द्र से कहा कि इस वाणी को प्रकृति-प्रत्ययादि संस्कार से युक्त करो, तदनन्तर इन्द्र ने इस वाणी को व्याकृत किया (मीमांसक, 2006) । मीमांसक जी ने संस्कृत व्याकरण शास्त्र के इतिहास मे लिखा है कि- यह इन्द्र व्याकरण अत्यन्त विस्तृत था, तिब्बतीय ग्रन्थानुसार ऐन्द्र व्याकरण में कुल पच्चीस सहस्र श्लोक थे, इस प्रकार यह ऐन्द्र व्याकरण एक सहस्त्र श्लोक वाले पाणिनीय व्याकरण से पच्चीस गुना बडा था । यद्यपि ऐन्द्र व्याकरण वर्तमान समय में प्राप्त नहीं होता है परन्तु कथासरित्सागर के अनुसार ऐन्द्रतन्त्र अतिपुराकाल में ही नष्ट हो गय था (शास्त्री, 2016) तथापि ऐन्द्र व्याकरण के सूत्रों को प्रमाणिक आचार्यों ने बारम्बार उद्धृत किया है । यथा- "**अथ वर्णसमूहः**"[61] "**सं प्रयोगः प्रयोजनम्**"[62]। अतः वर्तमान समय में ऐन्द्र व्याकरण का कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है, इस व्याकरण की चर्चा अथवा उल्लेख प्रमाण के रूप में ऐतिहासिक ग्रन्थों में ही प्राप्त होता है ।

चान्द्रव्याकरण-

चान्द्र व्याकरण पाणिनि से परकालिक व्याकरण माना जाता है । भर्तृहरि के अनुसार आचार्य चन्द्र ने लुप्तप्रायः हो चुके व्याकरण का पुनः प्रचार किया[63] (अवस्थी, 2010)। चान्द्र व्याकरण प्रायः महाभाष्य का अनुसरण करता है, इस ग्रन्थ में वार्तिकों का प्रयोग नहीं हुआ है । सूत्रों में ही सब कुछ प्रतिपादित किया गया है, इस प्रकार से यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण से बहुत लघु है ।

काशकृत्स्नव्याकरण-

महाभाष्यकार ने प्रथम आह्निक में आपिशल और पाणिनीय शब्दानुशासनों के साथ-साथ काशकृत्स्न[64] (जोशी, 2004) के शब्दानुशासन का भी उल्लेख किया है । वोपदेव ने भी आठ प्रसिद्ध शाब्दिकों में काशकृत्स्न का उल्लेख किया है[65](गणि, 2005)। क्षीरस्वामी ने अपने ग्रन्थ

---

[61] चरकन्यास- पृ०-58

[62] नाट्यशास्त्र-14.32

[63] पर्वतादागमं लब्ध्वा भाष्यबीजाऽनुसारिभिः ।

स नीतो बहुशाखात्वं चन्द्राचार्यादिभिः पुनः ॥ (वाक्यपदीयम् -2.189)

[64] पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, आपिशलम्, काशकृत्स्नम् - महाभाष्य-4-2-45

[65] इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥ कविकल्पद्रुम

क्षीरतरङ्गिणी में काशकृत्स्नीय मत का निर्देश किया है-[66] । काशकृत्स्न व्याकरण के अनेक सूत्र प्राचीन वैयाकरण वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं, काशकृत्स्न व्याकरण का धातुपाठ भी प्रकाशित हो चुका है, कन्नड टीका में काशकृत्स्न व्याकरण के लगभग 135 सूत्र भी उपलब्ध होते हैं (मीमांसक, 2006) । पं० युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि काशकृत्स्न व्याकरण का संक्षिप्त रूप ही कातन्त्र है (साहू, 2011) । इस व्याकरण के तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं- काशकृत्स्नतन्त्र, काशकृत्स्नधातुपाठ, मीमांसाशास्त्र । काशकृत्स्न भृगुवंशीय थे एवं इनके व्याकरण का समय विद्वान प्रायः वि० पू० 3100 मानते हैं(साहू, 2011) । काशकृत्स्न व्याकरण की विशेषता यह है कि यह गौरव लाघव का विचार करके प्रवृत्त होता है[67'68] । इस प्रकार के प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि संभवतः इस व्याकरण में तीन अध्याय रहे होंगे, किन्तु प्रत्येक अध्याय में कितने पाद तथा कितने सूत्र थे ये प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता । वर्तमान समय में इस व्याकरण के प्रायः चालीस सूत्र प्राप्त होते हैं, जिनका परिशीलन पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने काशकृत्स्नव्याकरण नामक ग्रन्थ में किया है[69](साहू, 2011) ।

आपिशलव्याकरण-

पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में[70] आचार्य आपिशलि को स्मरण किया है । महाभाष्यकार ने भी आपिशलि का मत प्रमाणरूप में उद्धृत किया है[71](जोशी, 2004)। इसके अतिरिक्त भी काशिका[72] (विद्यावारिधि, 1997), न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि[73], प्रदीपकार कैयट[74](जोशी, 2004) इत्यादि प्राचीन ग्रन्थकारों ने आपिशल व्याकरण के अनेक सूत्र उद्धृत किये हैं । पाणिनि ने

---

[66] काशकृत्स्ना अस्य निष्ठायामनिट्त्वमाहुः- आश्वस्तः, विश्वस्तः"-क्षीरतरङ्गिणी-पृष्ठ-185

[67] काशकृत्स्नं गुरूलाघवं- काशिका वृत्ति-4-3-115

[68] त्रिकं काशकृत्स्नम् का० वृ०-5-1-58

[69] पाणिनीय पदव्यवस्था-पृ-8

[70] वा सुप्यापिशलेः -अष्टाध्यायी-6-1-92

[71] एवं च कृत्वाऽऽपिशलेराचार्यस्य विधिरुपपन्नो भवति- महा०-4.2.45

[72] ज्ञापकं स्यादत्तदन्तत्त्वे तथा चापिशलेर्विधिः-काशिका-4.2.45

[73] न्यास-4.2.45

[74] आपिशलकाशकृत्स्नयोस्त्वग्रन्थे- व्या० महा० प्रदीप-5.1.21

आपिशलि शब्द का पाठ कौड्यादिगण में किया है[75]। "शिक्षा आपिशलीयादिका"[76](राजशेखर, 1934) राजशेखर के इस कथन से यह भी प्रमाणित होता है कि इनका शिक्षा ग्रन्थ भी रहा होगा। इन सभी तथ्यों पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि इनका समय लगभग वि० पू० 3000 रहा होगा[77](साहू, 2011)। इस व्याकरण में भी पाणिनीय व्याकरण की भाँति ही आठ अध्याय प्राप्त होने के प्रमाण मिलते हैं[78](साहू, 2011)। पतञ्जलि के समय में आपिशल व्याकरण का खूब प्रचार प्रसार रहा होगा क्योंकि स्वयं महाभाष्यकार अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि[79] (जोशी, 2004)। आपिशलव्याकरण सम्प्रति प्राप्त नहीं होता है, किन्तु इसके कुछ सूत्र प्राप्त होते हैं यथा- "धेनो रञः, मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु, तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासु छन्दसि" इत्यादि। पाणिनीय व्याकरण से पुरातन व्याकरणों में केवल आपिशल व्याकरण ही ऐसा है जिसके सर्वाधिक सूत्र उपलब्ध होते हैं और अन्य पाठों का परिचय भी मिलता है[80](मीमांसक, 2006)। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण के समान सर्वाङ्गपूर्ण सुव्यवस्थित तथा उससे कुछ विस्तृत था, और इसमें लौकिक वैदिक उभयविध शब्दों का व्याख्यान था।

शाकटायनव्याकरण-

पाणिनीय सूत्रपाठ में आचार्य शाकटायन का तीन[81] बार उल्लेख प्राप्त होता है (जिज्ञासु, 2007)। आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त[82] (शर्मा, 1969) में वैयाकरण शाकटायन का मत उद्धृत किया है। महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट शब्दों में शाकटायन को व्याकरण शास्त्र का प्रवक्ता कहा है[83] (जोशी, 2004)। कुछ आचार्यों का मानना है कि शाकटायन काण्व के शिष्य थे किन्तु अनेक आचार्य मानते हैं कि काण्व इन्ही का ही दूसरा नाम था (साहू, 2011)। शाकटायन का व्याकरण अत्यन्त विशाल

---

[75] सिध्दान्तकौमुदी गणपाठ-4.1.80

[76] काव्यमीमांसा-द्वितीयअध्याय-pg-133

[77] पाणिनीयपदव्यवस्था-पृ-9

[78] "अष्टक आपिशलपाणिनीये" पाणिनीयपदव्यवस्था-पृ-9

[79] आपिशलमधीते आपिशला ब्राह्मणी- महा०-4.1.14

[80]सं व्या० शा० का इति०-पृ०-160

[81] लङः शाकटयनस्यैव- अष्टाध्यायी-3.4.111, व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य- अष्टाध्यायी-8.3.18, त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य- अष्टाध्यायी-8.4.50

[82] तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च-निरुक्त-1.12

[83] व्याकरणे शकटस्य च तोकम्-महाभाष्य-3.3.1

था क्योंकि शाकटायन के मत में सभी शब्द व्युत्पन्न माने गये हैं, जबकि पाणिनि के मतानुसार कुछ प्रातिपदिक अव्युत्पन्न भी हैं। वैयाकरणों में शाकटायन ही एकमात्र ऐसे वैयाकरण हैं जो सम्पूर्ण नाम शब्दों को आख्यातज मानते हैं, निश्चित ही शाकटायन ने किसी ऐसे महत्वपूर्ण व्याकरण की रचना की थी जिसमें सब शब्दों की धातुओं से व्युत्पत्ति दर्शायी गयी थी। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के कारण ही शाकटायन को वैयाकरणों में श्रेष्ठ माना गया है (मीमांसक, 2006)। शाकटायनव्याकरण का ही अङ्गभूत ग्रन्थ उणादिसूत्र प्राप्त होता है, इस व्याकरण में बहुत से शब्दों का अन्वाख्यान अनेक धातुओं से किया गया है। शाकटायन के मत में शब्द के तीन प्रकार है-जातिशब्द, क्रियाशब्द और गुणशब्द तथा यदृच्छा शब्द उनके मत में नही हैं जिसका उल्लेख काशिका में किया गया है[84](विद्यावारिधि, 1997)।

सारस्वतव्याकरण-

ऐसा व्याकरण जो सरस्वती के प्रसाद स्वरूप प्राप्त हुआ हो वह सारस्वत व्याकरण कहलाया। इस व्याकरण के कर्ता के रूप में दो नाम प्राप्त होते हैं - अनुभूतिस्वरूपाचार्य एवं नरेन्द्राचार्य[85](साहू, 2011)। सारस्वतव्याकरण की प्रथमवृत्ति के अन्त में तो अनुभूतिस्वरूपाचार्य का नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु द्वितीय और तृतीय वृत्ति में उनका नाम उल्लेख मिलता है। इसलिए यह कहा जा सकता है सात सौ सूत्र वाली प्रथमावृत्ति के रचयिता नरेन्द्राचार्य एवं अन्तिम वृत्तियों के रचयिता अनुभूति स्वरूपाचार्य हैं (साहू, 2011)। इस व्याकरण के दो पाठ उपलब्ध होते हैं, इन दोनों पाठों में कहीं सात सौ सूत्रों का उल्लेख मिलता है तो किसी पाठ में आठ सौ सूत्रों का उल्लेख मिलता है। सारस्वत व्याकरण की अनेक टीकाएँ विद्यमान हैं परन्तु इनमें क्षेमेन्द्र की टीका सर्वप्रसिद्ध है।

जैनेन्द्रव्याकरण-

आचार्य जिनेन्द्र द्वारा प्रोक्त दो व्याकरण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं- उदीच्य और दाक्षिणात्य। औदीच्य संस्करण में प्रायः दो सहस्र सूत्र हैं, दाक्षिणात्य संस्करण में सात सौ सूत्र अधिक हैं। यह व्याकरण भी पाणिनीय व्याकरण के समान ही है। इस व्याकरण का मुख्याधार पाणिनीय व्याकरण ही है। इस ग्रन्थ में छः प्राचीन जैन आचार्यों का उल्लेख किया गया है।

---

[84] "तदेवं निरूक्तकारशाकटायन दर्शनेन त्रयी शब्दानाम् प्रवृत्तिः,जातिशब्दाः, गुणशब्दाः, क्रियाशब्दाः इति, न सन्ति यदृच्छाशब्दाः" (काशिका-3.3.1)

[85] पाणिनीयपदव्यवस्था-पृ-10

अमरव्याकरण-

अमरसिंह का नामलिङ्गाऽनुशासन नामक ग्रन्थ संस्कृत जगत में प्रसिद्ध है। इस व्याकरण के महत्व को यह सूक्ति प्रकट करती है- "अष्टाध्यायी जगन्माताऽअमरकोशो जगत्पिता इति"(साहू, 2011)। अमर कृत् निश्चित ही कोई व्याकरण रहा होगा ऐसा प्रमाण मिलता है। जिसका महाभाष्यकार ने भी अनुसरण किया है-"अमरसिंहो हि पपीयान् सर्वं भाष्यमचूचुरत्"।

कातन्त्रव्याकरण-

कातन्त्रव्याकरण का व्याकरण वाङ्मय में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, इस व्याकरण का उपजीव्य काशकृत्स्न व्याकरण है (मीमांसक, 2006)। इस व्याकरण को कलापक और कौमार नाम से भी जाना जाता है। अर्वाचीन वैयाकरण कलाप शब्द से भी इस व्याकरण का उल्लेख करते हैं[86] (मीमांसक, 2006)। इस व्याकरण में दो भाग हैं- एक आख्यातान्त दूसरा कृदन्त, दोनों भाग भिन्न भिन्न व्यक्तियों की रचनाएँ है ऐसा विद्वानों का मानना है (मीमांसक, 2006)। काशकृत्स्न सूत्रों एवं कातन्त्र सूत्रपाठ की तुलना करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि कातन्त्र व्याकरण काशकृत्स्न व्याकरण का ही संक्षेप है। कातन्त्र व्याकरण का समय अत्यन्त विवादास्पद है अतः समय के विषय में कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है।

शाकल्यव्याकरण-

शाकल ऋषि के पुत्र शाकल्य कहलाये, और इन्ही शाकल्य ने किसी व्याकरण रचना की जो शाकल्य व्याकरण के नाम से संस्कृत वाङ्मय में प्रसिद्ध है। पाणिनि ने जिन पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है उनमें शाकल्य भी एक हैं, अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में चार बार शाकल्य के मत को महर्षि पाणिनि ने उद्धृत किया है- सम्बुद्धि संज्ञा के सम्बन्ध में[87] असवर्ण अच् को सन्धि करते समय प्रकृतिभाव के सम्बन्ध में[88], लोप विकल्प करने में[89] तथा द्वित्व की प्राप्ति के प्रतिषेध करने के सम्बन्ध में[90]। शौनक, कात्यायन तथा पतञ्जलि ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में इनके मत को उद्धृत किया है, वेद संहिताओं के प्रवक्ता एवं पदपाठकर्ताओं ने भी इन्हें अपने ग्रन्थों में स्मरण किया (साहू,

---

[86] कालापिकास्ततोऽन्यत्रापि पठन्ति-सं व्या० शा० का इति०-पृष्ठ-630

[87] सम्बुद्धौ शकलस्येतावनार्षे- अष्टाध्यायी-1.1.16

[88] इकोऽसवर्णे शाकलस्य ह्रस्वश्च - अष्टाध्यायी-6.1.123

[89] लोपः शाकलस्य - अष्टाध्यायी-8.3.19

[90] सर्वत्र शाकलस्य - अष्टाध्यायी-8.4.51

2011) । शाकल्यव्याकरण का समय वि० पू० 3100 है ऐसा पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' में माना है । इस व्याकरण में लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का अन्वाख्यान किया गया है ।

पाणिनि के उत्तरवर्ती वैयाकरण-

जिस प्रकार पाणिनि से पूर्व अनेक वैयाकरणों के व्याकरण थे ठीक उसी प्रकार से पाणिनि के पश्चात भी अनेक वैयाकरण हुए जिन्होंने अपने मतानुसार व्याकरण की अलग रचना की । कुछ आचार्यों ने पाणिनीय व्याकरण को आधार बनाया कुछ ने अन्य व्याकरणों को अपने ग्रन्थ का उपजीव्य बनाया । पाणिनि से उत्तरवर्ती कुछ प्रमुख आचार्यों के व्याकरण का परिचय इस प्रकार है ।

भर्तृहरि-

भर्तृहरि महर्षि वसुरात के शिष्य थे । जिनका भर्तृहरि के प्रति एक विशेष प्रेम था उन्होनें मेधावी भर्तृहरि को महाभाष्य इत्यादि सम्पूर्ण ग्रन्थों का साङ्गोपाङ्ग उपदेश किया । आचार्य से ज्ञान प्राप्त करके भर्तृहरि ने वाक्यपदीयम् (अवस्थी, 2010) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रणयन किया, ये महाभाष्य का ही पद्यात्मक रूप है (साहू, 2011) । यह ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है- ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड, पदकाण्ड । पदकाण्ड पुनः चौदह समुद्देशों में विभक्त है जिनमें व्याकरणशास्त्र से सम्बद्ध अनेक गूढ रहस्यों को उद्घाटित किया गया है । भर्तृहरि प्रणीत अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं, परन्तु इसके पश्चात भी इनके काल की कोई सटीक जानकारी प्राप्त नहीं होती है । इनके निवास स्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है अनेक बार अपने ग्रन्थों में कश्मीर करने के कारण अनेक विद्वान इन्हें कश्मीरी मानते हैं । इनके द्वारा रचित महाभाष्य दीपिका सम्पूर्ण थी, परन्तु वर्तमान समय में केवल त्रिपादी ही प्राप्त होती है[91](साहू, 2011) ।

कैयट-

पाणिनीय अष्टाध्यायी पर महत्वपूर्ण भाष्य की रचना महर्षि पतञ्जलि ने की उसी महाभाष्य की सभी टीकाओं में सर्वप्रसिद्ध कैयटकृत प्रदीप नामक टीका है । इनका समय भी अनिश्चित ही है फिर भी कुछ साक्ष्यों के आधार पर इनका समय वि० स० 1050-1100 तक माना जाता है (साहू,

[91] पाणिनीयपदव्यवस्था-24

2011) । कैयट के पिता जैयट थे ऐसा उन्होनें स्वयं लिखा है[92] नाम से ही ज्ञात होता है कि ये कश्मीरी होंगे । इनके गुरू महेश्वर थे स्वयं कैयट कारिका लिखते है[93] । कैयट की प्रदीप नाम्नी टीका को आधार बनाकर अनेक व्याख्यान ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें नागेशभट्ट प्रणीत प्रदीपोद्योत ग्रन्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

जयादित्य-वामन-

पाणिनीयव्याकरण पर लिखी गयी सैकडों टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ टीका वामन द्वारा रचित काशिकावृति है (साहू, 2011) । काशिका नामक वृत्ति को दो विद्वानों द्वारा प्रणीत माना जाता है इसमें पूर्वार्द्ध अर्थात् प्रथम पाँच अध्याय जयादित्य द्वारा विरचित हैं एवं उत्तरार्द्ध वामन द्वारा विरचित है ऐसी प्रसिद्धि है । चीनीयात्री इत्सिङ्ग ने जयादित्य का मृत्युकाल वि० सं०-718 माना है[94] (संतराम, 1925) । सभी विद्वान वामनाजयादित्य दोनों को ही काशिका का रचयिता मानते हैं ।

रामचन्द्र-

महावैयाकरण रामचन्द्र द्वारा प्रक्रियाकौमुदी नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया गया जिसका उपजीव्य ग्रन्थ तो पाणिनीय अष्टाध्यायी ही रहा, परन्तु इन्होनें पाणिनीय व्याकरण के क्रम का अनुसरण नहीं किया । इन्होनें अपने ग्रन्थ को संज्ञा, परिभाषा, सन्धि इत्यादि प्रकरणों में विभक्त किया तथा पदों की सिद्धि हेतु आवश्यक सूत्रों का एक ही स्थान पर उल्लेख किया । इस प्रकार इन्होनें एक नूतन प्रणाली का सूत्रपात किया, परन्तु इस ग्रन्थ में समग्र पाणिनीय व्याकरण का व्याख्यान नहीं है । इनका समय 14-15 शताब्दी के मध्य विद्वान मानते हैं (मीमांसक, 2006)।

भट्टोजिदीक्षित-

भट्टोजिदीक्षित का जन्म महाराष्ट्र के ब्राह्मण परिवार में हुआ था, इनके पिता लक्ष्मीधर थे । भानुजी दीक्षित एवं वीरेश्वर दीक्षित इनके पुत्र थे, इनके गुरू श्रीशेषकृष्ण थे । इनके समयकाल के विषय में कोइ निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती है क्योंकि इन्होनें स्वयं कही पर भी अपने समय का उल्लेख

---

[92] कैयटो जैयटात्मजः-कारिका.महाभाष्य प्रदीपस्य मङ्गलाचरणम्

[93] पदवाक्यप्रमाणानां पारं यातस्य धीमतः ।
गुरोर्महेश्वरस्यापि कृत्वा चरणवन्दनम् ॥महाभाष्य प्रदीपस्य मङ्गलाचरणम्

[94] काशिका यह वृत्ति-सूत्र ज्यादित्य की रचना है उसकी मृत्यु हुए आज कोई तीस वर्ष पूर्ण हुए हैं (सन 661-662) इत्सिंग की भारत यात्रा पृष्ठ- 270

नहीं किया है, फिर भी सम्वत 1570-1650 के मध्य मीमांसक जी इनका समय स्वीकार करते है[95](मीमांसक, 2006)। इन्होनें अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया- शब्दकौस्तुभ, प्रौढमनोरमा, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी इत्यादि।

ज्ञानेन्द्रभिक्षु-

ये भट्टोजिदीक्षित के समकालीन थे, इनका समय 1580-1680 वि० है[96](मीमांसक, 2006)। इनके गुरू वामनेन्द्र सरस्वती एवं शिष्य नीलकण्ठ थे (साहू, 2011) । इन्होनें सिद्धान्तकौमुदी पर तत्वबोधिनी नाम से व्याख्या की जो उत्तरकृदन्त पर्यन्त है, यह व्याख्या प्रौढमनोरमा का सार है । इनके शिष्य नीलकण्ठ ने तत्वबोधिनी पर गूढार्थप्रकाशिका नाम से व्याख्या की है।

कौण्डभट्ट-

ये भट्टोजिदीक्षित के भ्राता रङ्गोजिभट्ट के पुत्र थे, इनके गुरू शेषकृष्ण के पुत्र सर्वेश्वर थे । संस्कृत वाङ्गमय में शब्दबोधक ग्रन्थों में सत्रहवीं शताब्दी में इनके द्वारा विरचित वैयाकरणभूषण नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है । वैयाकरणभूषण नामक ग्रन्थ ही बृहद्वैयाकरण, वैयाकरणभूषणसार, लघुवैयाकरणभूषणसार इन तीन भागों में विभक्त किया गया है । कौण्डभट्ट के अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं उनमें वैयाकरणसिद्दान्तदीपिका, स्फोटवाद, तर्कप्रदीप, तर्करत्न, न्यायार्थदीपिका इत्यादि हैं जिनमें कुछ प्रकाशित हैं तथा अभी कुछ अप्रकाशित भी हैं (साहू, 2011)।

हरिदीक्षित-

भट्टोजिदीक्षित द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रौढमनोरमा पर की गई व्याख्याओं में सबसे श्रेष्ठ शब्दरत्न नामक व्याख्या हरिदीक्षित द्वारा प्रणीत है । कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि बृहदशब्दरत्न एवं लघुशब्दरत्न दोनों ही व्याख्या इनके ही द्वारा प्रणीत है । ये भट्टोजिदीक्षित के पुत्र वीरेश्वर के पुत्र थे[97](मीमांसक, 2006) नागेशभट्ट के गुरू थे । इनका समय निश्चित नहीं है तथापि प्रायः सत्रहवीं शताब्दी के बाद का समय इनका माना जाता है[98](साहू, 2011)।

नागेशभट्ट-

---

[95] सं० व्या० शा० का इति०-533

[96] सं० व्या० शा० का इति०-366

[97] सं० व्या० शा० का इति०-530

[98] पाणिनीयपदव्यवस्था-31

नव्यवैयाकरणों में नागेशभट्ट का महत्वपूर्ण स्थान है, इनके पिता का नाम शिवभट्ट तथा माता का नाम सती था[99](भट्ट, 2041) । इनके गुरू हरीदीक्षित थे[100](मीमांसक, 2006), नागोजिभट्ट इनका दूसरा नाम था । प्रयाग के समीप स्थित श्रृङ्गबेरपुर के राजा रामसिंह से वृत्ति प्राप्त करते थे, इनका समय अट्ठारहवी शताब्दी माना जाता है (मीमांसक, 2006) । नागेशभट्ट ने व्याकरण के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है यथा-लघु शब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, भाष्यप्रदीपोद्योत, वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जुषा । वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा का लघुरूप लघुमञ्जुषा एवं परमलघुमञ्जुषा का भी प्रणयन किया । इस प्रकार वैदिककाल से प्रारम्भ होकर व्याकरण परम्परा अनेक शाखाओं में विस्तृत होता हुई नागेश के समय तक पुष्पित पल्लवित हुई ।

पाणिनि का परिचय-

पाणिनि के नाम का उल्लेख अनेक विद्वानों ने अपने शास्त्र में किया है । पाणिनि शब्द की व्युत्पत्ति पणिन् नकारान्त शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है, इसका निर्देश अष्टाध्यायी में भी मिलता है[101](जिज्ञासु, 2007)। पाणिनीय शब्द की मूलप्रकृति पाणिन अकारान्त शब्द है उससे छ (ईय) प्रत्यय होकर पाणिनीय प्रयोग निष्पन्न होता है । पाणिनि को दाक्षीपुत्र कहा गया है[102](जोशी, 2004) इससे स्पष्ट होता है कि पाणिनि की माता नाम दाक्षि था । पाणिनि का कुल अत्यन्त सम्पन्न था यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि इनके यहाँ जितने भी शिष्य अध्ययन करने के लिए आते थे उन सभी के भोजन की व्यवस्था भी वहीं रहती थी क्योंकि महाभाष्य में[103](जोशी, 2004) उदाहरण प्राप्त होता है । पाणिनि के जीवन के विषय में कोई भी सटीक जानकारी प्राप्त नहीं होती है, परन्तु पञ्चतन्त्र में प्रसङ्गवश पाणिनि, जैमिनी, और पिङ्गल के मृत्यु के कारणों को उद्धृत किया गया है**[104]**(आचार्य, 1964)|

---

[99] शिवभट्टसुतोधीमान् सतीदेव्यास्तु गर्भजः -लघुशब्देन्दुशेखर- मंगलाचरण

[100] सं० व्या० शा० का इति०-427

[101] गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च-अष्टा०-6.4.165

[102] सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षिपुत्रस्य पाणिनेः-महा०-1.1.20

[103] ओदनपाणिनीयाः-महाभाष्य-1.1.73

[104] सिंहो व्याकरणास्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः,
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनिम् ।
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्,
अज्ञानावृतचेतसामतिरूषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः ॥ पञ्चतन्त्र- मित्रसंप्राप्ति- श्लोक-36

इस पद्य से स्पष्ट है कि पाणिनि की मृत्यु का कारण सिंह था। किंवदन्ती यह है कि पाणिनि की मृत्यु त्रयोदशी को हुई थी। मास और पक्ष का निश्चय न होने से पाणिनीय वैयाकरण प्रत्येक त्रयोदशी को अनध्याय करते है, यह परिपाटी काशी आदि स्थानों मे अभी भी प्रचलित है (मीमांसक, 2006)।

पाणिनि का समय-

पाणिनि ने स्वयं अपने काल के विषय में कही भी कुछ उल्लेख नहीं किया है, अतः निश्चित रूप से पाणिनि के समय के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। तथापि अनेक अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में उद्धृत् किया है कि-"पाणिनीय ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्यों और अन्य प्राचीन प्रमाणभूत वाङ्मय के बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह सर्वथा सुनिश्चित हो जाता है कि पाणिनि का काल लगभग भारतयुद्ध से दो सौ वर्ष पश्चात अर्थात् 2900 विक्रमपूर्व है, किसी भी अवस्था में पाणिनि का समय भारतयुद्ध से 300 वर्ष अधिक उत्तरवर्ती नहीं है[105](मीमांसक, 2006)।

पाणिनीय शास्त्र का मुख्य उपजीव्य ग्रन्थ-

पाणिनीय अष्टाध्यायी एवं पाणिनीय शिक्षा में जिस प्रकार आठ अध्याय एवं आठ प्रकरण हैं ठीक उसी प्रकार पाणिनि से पूर्वभावी आपिशली के शब्दानुशासन एवं शिक्षा में भी आठ अध्याय और आठ प्रकरण हैं। दोनों आचार्यों के दोनों ग्रन्थों में वर्तमान यह समानता यह इङ्गित करती है कि पाणिनीय तन्त्र का मुख्य उपजीव्य आपिशल-तन्त्र है[106](मीमांसक, 2006)।

3. पाणिनि अष्टाध्यायी का परिचय

वर्तमान समय में संस्कृत वाङ्मय में पाणिनि अष्टाध्यायी व्याकरण का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। पाणिनि ने बडे ही वैज्ञानिक तरीके से अपने इस ग्रन्थ की रचना की है यही कारण है कि अद्यावधि यह ग्रन्थ अपनी प्रसिद्धि के चरम पर है। इस ग्रन्थ को महर्षि पाणिनि ने आठ अध्यायों में विभक्त किया है, अध्यायों को पुनः पादों में विभक्त किया है, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में आठ अध्याय एवं 32 पाद है एवं लगभग चार हजार सूत्र हैं। अष्टाध्यायी में कुल छः

---

[105] सं० व्या० शा० का इति०- 233

[106] पाणिनिरपि स्वकाले शब्दान् प्रत्यक्षन्नापिशलादिना पूर्वस्मिन्नपि काले सत्तामनुसन्धत्ते, एवमापिशलि-सं० व्या० शा० का इति०- 254

प्रकार के सूत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है[107] (उनियाल, 2004)। सञ्ज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश, अधिकार ये छः प्रकार के सूत्र अष्टाध्यायी में प्राप्त होते हैं । इस प्रकार के सूत्रों का विभाजन करने से व्याकरण सम्प्रदाय में गागर में सागर का कार्य होने के समान है ।

पाणिनीय व्याकरण का महत्व-

आज जितने भी व्याकरणग्रन्थ प्रकाश में आये हैं उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण, प्रसिद्ध एवं उपयोगी व्याकरण पाणिनीयव्याकरण ही है । यह प्राचीन आर्ष वाङ्गमय की एक अनुपम निधि है । इस व्याकरण की अत्यन्त सुन्दर, सुसम्बद्ध और सूक्ष्मतम पदार्थ को द्योतित करने की क्षमतापूर्ण रचना को देखने वाला प्रत्येक विद्वान इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रहता । भारतीय प्राचीन आचार्यों के सूक्ष्मचिन्तन, सुपरिपक्व ज्ञान और अद्भुत प्रतिभा का निदर्शन कराने वाला यह अनुपम ग्रन्थ है । संसार में हजारों भाषाएँ हैं परन्तु संस्कृत से इतर किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का ऐसा परिष्कृत एवं परिनिष्ठित व्याकरण अद्यावधि उपलब्ध नहीं होता है, यही कारण है कि आज विदेशी चिन्तक भी यह स्वीकार कर रहे हैं कि संस्कृत ही विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा है । संस्कृत भाषा के जितने भी नवीन प्राचीन व्याकरण हैं उन सभी में एकमात्र पाणिनीय व्याकरण ही जिसका साङ्गोपङ्ग रूप उपलब्ध होता है । यही एकमात्र व्याकरण है जिस पर समय-समय पर अनेक टीकाएँ, भाष्य, व्याख्याएँ की गयी, प्रकरण ग्रन्थों से मण्डित किया गया है । इसके अतिरिक्त पाणिनीय अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक महत्व भी है क्योंकि पाणिनि ने अपने समय के रीति-रिवाज, परम्परा, खान-पान, गोत्र, भौगोलिक दशाओं का बडे ही सुचारू रूप से वर्णन किया है, इन्हीं विषयों को आधार बनाकर वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनिकालीन भारतवर्ष नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें इन सभी तथ्यों को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है । इस प्रकार सिद्ध होता है

---

[107] संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशो अधिकारश्च षड्विध सूत्र लक्षणम् ॥ पाणिनीयव्याकरणस्य भाषावैज्ञानिकं व्याख्यानम्- पृष्ठ-39

कि पाणिनीय व्याकरण न केवल सैद्धान्तिक शास्त्र है अपितु इसके साथ-साथ तत्कालीन सांस्कृतिक, धार्मिक परम्पराओं एवं भौगौलिक दशाओं का वर्णन करने वाला अद्‌भुत ग्रन्थ भी है।

4 संस्कृत पदों का संक्षिप्त परिचय

विश्व में किसी भी भाषा को जानने के लिए अथवा व्यवहार करने के लिये व्याकरण आवश्यक नहीं है ऐसा आज के भाषा वैज्ञानिकों का मानना है उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने समाज से समय के साथ-साथ उस भाषा को समझ और सीख लेता है जिसे शास्त्रों में संकेतग्रह के नाम से भी अभिहित किया गया है, परन्तु यह कथन भाषा के प्रारम्भिक स्तर को जानने के लिये तो उचित है परन्तु निरन्तर चलने वाली भाषिक प्रक्रिया को सम्यक्तया जानने और जीने हेतु एवं भाषा विशेष के ग्रन्थों में लिखित सामग्री के सही अर्थ को जानने के लिये भाषा का सही ज्ञान आवश्यक है तथा वह ज्ञान सन्दर्भित भाषा के व्याकरण से ही सम्भव है । पाणिनीयव्याकरण का मुख्य लक्ष्य पदों का वर्णन करना ही है अथवा पदव्याख्यान ही व्याकरण का प्रतिपाद्य विषय है । न्यायभास्करकार के मतानुसार "समय ज्ञानार्थं चेदं पदलक्षणाया वाचोऽन्वाख्यानं व्याकरणं, वाक्यलक्षणाया वाचोऽर्थलक्षणम्" है। अपद का वाक्य में प्रयोग नहीं होता है परन्तु पद अकेला रहकर भी पूरे वाक्य का आक्षेप कर लेता है। जैसे- 'पठ', 'हस' ये आज्ञा वाचक शब्द हो गये, पठामि, हसामि ये उत्तर वाक्य हो गये। 'कुत्र' यह प्रश्न वाक्य हो गया तो गृहम्, विद्यालय आदि उत्तर वाक्य हो गये। यदि वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का वर्गीकरण किया जाये तो संस्कृत साहितय में मुख्यतः दो प्रकार के पद होते हैं सुबन्त और तिङन्त। सुबन्त में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय आते हैं ठीक इसी प्रकार से पाणिनि ने भी रचना के आधार पर शब्दों को दो ही प्रकार का रखा है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि व्याकरण= "व्याक्रियन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्" शब्दों के भेद को सरलता से जिज्ञासु के समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे जिज्ञासु को प्रत्येक शब्द का भलिभांति ज्ञान हो सके। संस्कृत भाषा में पद कितने प्रकार के होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर संस्कृत आचार्यों के मतों को

जानकर होगा क्योंकि इस पर आचार्यों के अलग-अलग मत हैं उनमें कुछ प्रधान विभाग इस प्रकार है-

चार विभाग- निरुक्तकार यास्क, महाभाष्यकार पतञ्जलि आदि प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार पद चार प्रकार के हैं- **नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात (**शर्मा, **1969)** । कुछ आचार्यों के अनुसार कर्मप्रवचनीय तथा गतिसंज्ञको को जोडकर क्रमशः पाँच ,छः विभाग भी किये जाते हैं । परन्तु पं० दुर्गाप्रसाद ने पद के इन पाँच और छः भेद को नकारा है ।

तीन विभाग- पाणिनीय शब्दानुशासन के अनुसार शब्दों के तीन प्रकार है –नाम, आख्यात और अव्यय । उपसर्ग तथा कर्मप्रवचनीयों का निपातो में अन्तर्भाव होता है और निपातो का अव्ययों में (मीमांसक, 2006)।

दो विभाग- पाणिनीय तथा अन्य वैयाकरणों के मत में शब्दों के सुबन्त और तिङन्त दो ही विभाग किये गये हैं । पाणिनि ने अव्ययों से भी सुबन्त की उत्पत्ति के पश्चात् उनका लोप का विधान किया है । पाणिनि ने गति, उपसर्ग, और कर्मप्रवचनीयों को पृथक्-पृथक् दिखाकर उनका निपातों में अन्तर्भाव दिखाया है । फिर उन निपातों का अव्ययों में समावेश किया है पुनः उन अव्ययों से नामपदों की तरह सुबन्त स्वाद्युत्पत्ति दिखाकर उन प्रत्ययों का लोप भी दिखाया है । इसीलिए यह कहा जा सकता है कि अर्थ के साथ-साथ रुप संरचना को भी ध्यान में रखते हुए पाणिनि ने सुबन्त और तिङन्त के रुप में नाम और आख्यात रूप दो पदभेदों को ही स्वीकार किया है (शास्त्री, 2000)।

एक प्रकार- कतिपय ऐन्द्र आदि प्राचीन प्रवक्ताओं के अनुसार समस्त पद अर्थवत्व के कारण एक ही के प्रकार माने हैं (मीमांसक, 2006)। इसीलिए महर्षि पतञ्जली ने भी व्यावहारिक दृष्टि से तो शब्द के चतुर्धा पक्ष को स्वीकार किया है परन्तु तात्विक दृष्टि से उन्होंने 'एक शब्द' को लोक तथा स्वर्ग दोनों स्थानों पर कामधुक् माना है । पतञ्जली का 'एक शब्द' कोई सामान्य पद नहीं है अपितु यह

अखण्ड वाक्य रूप प्रतीत होता है, जिसे हम स्फोट या शब्दब्रह्म कह सकते हैं। क्योंकि इसी शब्द के ज्ञान में इतना सामर्थ्य हो सकता है जो स्वर्ग तथा लोक में कामधुक् हो सकता है (शास्त्री, 2000)। प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य आधार ग्रन्थ पाणिनीय व्याकरण ही है अतः शोधप्रबन्ध में शब्द के द्विधा प्रकार को स्वीकार करते हुए इस शोध में कार्य किया जायेगा। किसी भी भाषा के शब्दों को जानने के लिये उसकी संरचना को समझना अत्यावश्क होता है कि प्रस्तुत सन्दर्भ में हम जिस शब्द का अर्थ समझने की कोशिश कर रहे हैं वह शब्द वाक्य संरचना के अनुसार किस स्थान पर विराजमान है अन्यथा सन्दर्भ के परिवर्तित होने से शब्दान्तर न होते हुए भी अर्थान्तर हो जाता है इन्द्र शत्रु स्वरतोऽपराधात्। जैसे - संस्कृत में शब्द सामान्यतया दो प्रकार के हैं 1- सुबन्त, 2- तिङन्त। सुबन्त का अर्थ जानने हेतु भी व्याकरण की आवश्यकता है और तिङन्त का अर्थ जानने हेतु भी। सुबन्त और तिङन्त दोनों ही प्रत्ययों के लगने के पश्चात ही वर्ण समूह 'पदत्व' पदवी को प्राप्त होते हैं अपदं न प्रयुञ्जीत इनमें नामवाची शब्द सुबन्त और क्रियावाची शब्द तिङन्त कहलाते हैं।

सुबन्त- सुबन्त के अन्तर्गत कृदन्त, तद्धितान्त, समासान्त, स्त्रीप्रत्ययान्त तथा अव्यय शब्द आते हैं, कृदन्तों में वे शब्द आते हैं जिनमें धातुओं से प्रत्यय होते हैं भू+क्त= भूतः, तद्धितान्त में अर्थवान् शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होने के पश्चात् तद्धित प्रत्यय आता है- लोक+ ठक्= लौकिकः, समासान्त में दों सुबन्त पदों का ग्रहण होता है तथा स्त्रीलिंग की विवक्षा होने पर पुल्लिंग वाची शब्द से स्त्रीलिंग अर्थ को देने वाला प्रत्यय आता है कुमार+ङीप्=कुमारी। प्रकारान्तर से कहें तो जिन शब्दों के अन्त में स्वादि 21 प्रत्यय[108] (जिज्ञासु, 2007) आते हैं वे सभी शब्द सुबन्त शब्द कहलाते हैं। वे सुबन्त प्रत्यय इस प्रकार हैं – सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्,ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप्। ये सभी तीनों वचनों के अनुसार त्रिक=तीन-तीन के जोडे में विभक्त हो जाते हैं- (सु,औ,जस्), (अम्,औट्,शस्), (टा,भ्याम्,भिस्), (ङे,भ्याम्,भ्यस्),

[108] स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् – अष्टाध्यायी- 4.1.2

(ङसि,भ्याम्,भ्यस्), (ङस्, ओस्, आम्), (ङि, ओस्, सुप्) इन प्रत्ययों के अन्तिम में आने के पश्चात ये प्रत्यय सात विभक्तियों में पुनः विभक्त होते हैं तथा पाणिनीय प्रक्रिया में ये सुबन्त शब्द कहलाते हैं(Chandra, 2006) । शब्दरूप तीन लिंङ्गो में चलते हैं- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग । तीनों लिङ्गों में छः विभक्तियाँ होती हैं और एक सम्बन्ध कारक होता है तथा सम्बोधन भी होता है जिनको सामान्य भाषा में आठ विभक्तियाँ कहा जाता है, आठों विभक्तियाँ और तीन वचन मिलाकर 8x3=24 रूप प्राप्त होते हैं । अव्ययों को भी सुबन्त में ही स्थान मिला है परन्तु उनसे आये हुए सुबन्तों का लुक् (अदर्शन) हो जाता है । प्रत्ययों के अनुसार अगर देखें तो किसी भी एक प्रातिपदिक के 21 प्रत्ययों के अनुसार 21 ही रूप बनते हैं और अगर सम्बोधन ओर लग जाये तो 24 रूप प्राप्त होते हैं । परन्तु शब्द के स्वरूप को देखें तो 21 प्रत्ययों के लगने के बाद 16 शब्द प्राप्त होते हैं और अगर सम्बोधन को जोड दें तो 17 शब्द प्राप्त होते हैं । लिंगों के अनुसार ये इन शब्दों की रूप संख्या 14 से 17 तक हो सकते हैं । नीचे दी गई तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (स्) 1	औट्(औ/आ) 2	जस् (अस्) 3
द्वितीया	अम् (अम्) 4	औट्(औ, आ)	शस् (अस्) 5
तृतीया	टा (आ) 6	भ्याम् (भ्याम्) 7	भिस् (भिः/ऐः) 8
चतुर्थी	ङे (ए) 9	भ्याम् (भ्याम्)	भ्यस् (भ्यः) 10
पञ्चमी	ङसि (अस्) 11	भ्याम् (भ्याम्)	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अस्) 12	ओस् (ओः)13	आम् (आम्)14
सप्तमी	ङि (इ)15	ओस् (ओः)	सुप् (सु)16

सुबन्त स्वरूप प्रत्यय माला-1

सुबन्त विचार के पश्चात शब्द के द्वितीय स्वरूप तिङन्त पर विचार करते हैं –

तिङन्त- संस्कृत भाषा में शब्द के द्वितीय प्रकार में तिङन्त का स्थान है तिङ्+अन्त दो शब्दों के मेल से बना है यह शब्द अपने सार्थक अर्थ को द्योतित करता है जिन शब्दों के अन्त मे तिङ् हो वे शब्द तिङन्त शब्द कहलाते हैं । अब प्रश्न होता है कि ये तिङ् क्या है? तो तिङ् को जानने हेतु हमें इसके

स्रोत ग्रन्थ (उपजीव्य ग्रन्थ) की आवश्यकता है जोकि पाणिनीय अष्टाध्यायी में प्रयुक्त है इसमें तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद में तिङ् प्रत्ययों को करने वाले सूत्र[109] का पाठ मिलता है वहाँ पर तिङ् से प्रत्याहार का ग्रहण किया गया है और जिसमें 18 प्रत्ययों का ग्रहण है । जो इस प्रकार हैं- "तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त , आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इड्, वहि, महिङ्" प्रत्याहार बनाने का पाणिनि का अपना तरीका है यहाँ पर प्रथम तिप् के 'ति' का ग्रहण करके महिङ् के 'ङ्' तक का ग्रहण किया गया है । अब इन अठारह प्रत्ययों के माध्यम से तिङ् के दो विभाग हो जाते हैं 9+9=18 प्रथम विभाग में प्रारम्भिक 9 प्रत्यय आते हैं तथा अन्त में शेष 9 प्रत्यय । ये दोनों विभाग परस्मैपद और आत्मनेपद के रूप भेद को दर्शाते हैं तथा इन दोनों में कालक्रम के अनुसार दस लकार होते हैं । इन तिङन्तों का सम्बन्ध काल और अर्थ के साथ होता है तिङन्त रूप अनेक कालों तथा अर्थों के अनुसार कर्ता या कर्म के प्रथमपुरूष, मध्यमपुरूष, उत्तमपुरूष अर्थात् तीन पुरूषों[110] या वचनों[111] के अनुसार बदलते हैं । धातुरूपों के अन्त मे लगने वाले इन तिङन्त प्रत्ययों को विभक्ति भी कहते हैं । वस्तुतः विभक्तियों से ही हम धातु के किसी भी रूप को भलिभांति जान पाते हैं (मिश्र, 2013) ।

5 संस्कृत क्रियापद एवं सनाद्यन्त

व्याकरण हेतु धातुपाठ की महत्ता-

वाक्य में प्रयुक्त तिङन्त का सही अर्थ जानने के लिये प्रथम चरण में उस तिङन्त में प्रयुक्त मूलधातु को जानना आवश्यक है और किसी भी क्रियारूप की मूलधातु वह अक्षर समूह है जिससे प्रत्यय, उपसर्ग आदि हटने के पश्चात उसका एक निश्चित अर्थ होता है पश्चात् उसमें भूत, भविष्य, अथवा

---

[109] तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस् तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् –अष्टाध्यायी- 3.4.78

[110] तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः- अष्टाध्यायी- 1.4.101

[111] तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः- अष्टाध्यायी- 1.4.101

वर्तमान किस काल को व्यक्त करने की क्षमता है अर्थात् वह किस लकार का प्रतिनिधित्व करता है तत्पश्चात् उसमें प्रयुक्त प्रत्यय किस पुरूष तथा वचन को व्यक्त करते हैं इतनी पहचान होने के पश्चात उसके अर्थ का निर्णय करना सरल होता है। इस प्रकार से इतना तो स्पष्ट है कि किसी वाक्य संरचना में आये हुए क्रियारूप को जानने हेतु पाठक को मूलधातु की आवश्यकता होती है।

धातु- धातु यह शब्द सन्दर्भ अथवा प्रकरण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकरणों में विभिन्न अर्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है जैसे- आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ के लिये तो वैद्यों ने रेतस् के लिये भी इसका प्रयोग किया है तथा रसायन शास्त्र या लोक व्यवहार में हिरण्य, रजत, कांस्य, ताम्र, सीसक, रङ्ग, अयस्, रैत्य आदि को भी धातु शब्द की संज्ञा से जाना जाता है और न्यायकोश में तो पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंचतन्मात्राओं (शब्द,रूप, रस, गन्ध,स्पर्श) को भी धातु नाम से कहा गया है। वही संस्कृत भाषाशास्त्र में धातुओं को समझने हेतु विद्वानों ने मूलधातुओं का संकलन अपनी सामर्थ्य अनुसार समय-समय पर किया भी है परन्तु सभी धातुपाठों में पाणिनीय धातुपाठ प्रचलित तथा विश्वसनीय तथा प्रामाणिक माना जाता है पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र में शब्द की मूल-प्रकृति के अर्थ में धातु शब्द का प्रयोग किया है और "धातु" शब्द को "डुधाञ् धारणपोषणयो✓धा" से उत्पन्न माना है तथा अन्य व्याकरण सम्प्रदायों में भी यही माना है एवं निरुक्तकार ने भी इस शब्द को धा✓ धातु से ही उत्पन्न माना है। इस शब्द का प्रथम प्रयोग गोपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है। बृहद्देवता में धातु शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। पाणिनि ने अपने शास्त्र का प्रणयन करने हेतु कुछ सार्थक संज्ञाओं को परिभाषित किया है और कही-कही पर पूर्वाचार्यों द्वारा परिभाषित सार्थक संज्ञाओं को अपने शास्त्र में स्थान दिया है इसीलिए शायद पाणिनि ने धातु शब्द को कही परिभाषित नहीं किया है किन्तु दो महत्वपूर्ण धातुओं का उल्लेख किया है "भू✓" यह मङ्गलार्थ प्रयुक्त है (श्लोकवार्तिक)। परन्तु कात्यायन ने **"क्रियावचनो धातुः"** कहकर धातु को परिभाषित किया है। कातन्त्र व्याकरण में क्रिया के भाव को ही धातु के नाम से परिभाषित किया गया है तथा

वृत्तिकारों के अनुसार **"यः शब्दः क्रियां भावयति प्रतिपादयति स धातु संज्ञो भवति"** अर्थात् जो शब्द क्रिया का भावन या प्रतिपादन करता है वह शब्द धातुसंज्ञक होता है । इसी प्रकार पतञ्जली के अनुसार भी **"क्रियावचनो धातुः"** तथा **"भाववचनो धातुः"** धातु शब्द को परिभाषित किया गया है। सामान्यतया हम धातु को इस प्रकार पहचान सकते है कि- किसी एक क्रिया को विविध प्रत्ययों के साथ अनेक रूपों में शब्द बन जाने पर उनमें जो सबका लघुतम मूलरूप लक्षित हो और वह पुनः विखण्डित न किया जा सकता हो, उसे ही धातु की संज्ञा दी जा सकती है। यथा- कर्ता, कर्म, करण, क्रिया, कार्य, कारक आदि शब्दों का मूल कृ✓ धातु है और इसका पुनः विभाजन भी सम्भव नहीं है दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि क्रियारूपों में प्रत्ययों के पृथक् बोध होते ही जो शेष बच जाता है उसे हम धातु कहते हैं, जो लघुतम इकाई के रूप में जानी जाती है धातु का ही दूसरा नाम 'प्रकृति' भी है (पाण्डेय, 2005)।

व्याकरण के ज्ञान हेतु पाणिनि ने हमें पञ्चोपदेश दिया है जिसमें धातुओं के ज्ञान हेतु पाणिनीय धातुपाठ का ग्रहण किया जाता है जिसमें लगभग 2000 धातुएँ हैं । ये सभी धातुएँ मूलधातु या औपदेशिक धातुएँ कहलाती हैं । {धातुएँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं औपदेशिक धातु तथा आतिदेशिक धातु । 1.जैसा कि अभी बताया है कि धातुपाठ में उपदिष्ट धातुएँ ही औपदेशिक धातुएँ कहलाती हैं । 2. तृतीय अध्याय में पठित द्वादश सनादि प्रत्ययों के लगने से बनने वाली धातुएँ आतिदेशिक धातु कहलाती हैं इस प्रकार धातु अनन्त हैं (दीक्षित, 2014) } इन सभी धातुओं को पाणिनि ने इनकी विशेषताओं के अनुसार दस गणों में विभाजित किया है । प्रत्येक गण की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। सभी गणों का नामकरण उस गण में प्रारम्भिक धातु से किया गया है जो कि इस प्रकार है-

क्रमांक	मूलधातु (औपदेशिक धातु)	शुद्धधातु	गण का नाम	कुल धातु
1	भू सत्तायाम्	भू	भ्वादिगण	1035
2	अद भक्षणे	अद्	अदादिगण	71

3	हु दानादनयोःआदाने चेत्येके	हु	जुहोत्यादिगण*	24
4	दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु।	दिव्	दिवादिगण	141
5	षुञ् अभिषवे	सु	स्वादिगण	34
6	तुद व्यथने	तुद्	तुदादिगण	155
7	रुधिर् आवरणे	रुध्	रुधादिगण	25
8	तनु विस्तारे	तन्	तन्वादिगण	10
9	डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये	क्री	क्र्यादिगण	62
10	चुर स्तेये	चुर्	चुरादिगण	410
कुल्	दसगण			1967

*जुहोत्यादि यहाँ पर हु धातु के द्वित्व होने के कारण से ऐसा नाम है अन्यथा ह्वादिगण भी हो सकता था।

धातुओं के प्रकार-

मूलधातु- पाणिनि ने उपर्युक्त पठित गणों का अपने सूत्रों के माध्यम से भी निदर्शन कराया है प्रथम गण के लिये[112] सूत्र का प्रयोग किया है जिसमें सामान्य शप् विकरण प्रत्यय का विधान है शेषगणों के लिए सभी गणों का भी परिचय विकिरण सूत्रों से कराया है यथा- अदादिगण[113] के लिये, जुहोत्यादिगण[114] के लिये , दिवादिगण[115] के लिये, स्वादिगण[116] के लिये , तुदादिगण[117] के लिये, रुधादिगण[118] के लिये, तनादिगण[119] के लिये, क्र्यादिगण के लिये[120], चुरादिगण[121] के लिये ‘’,

[112] भूवादयो धातवः-अष्टाध्यायी-1.3.1

[113] अदिप्रभृतिभ्यः शपः- अष्टाध्यायी-2.4.72

[114] जुहोत्यादिभ्यः श्लुः- अष्टाध्यायी-2.4.75

[115] दिवादिभ्यः श्यन्- अष्टाध्यायी-3.1.69

[116] स्वादिभ्यः श्नुः- अष्टाध्यायी-3.1.73

[117] तुदादिभ्यः शः- अष्टाध्यायी-3.1.77

[118] रुधादिभ्यः श्नम्- अष्टाध्यायी-3.1.78

[119] तनादिकृञ्भ्यः उः- अष्टाध्यायी-3.1.79

[120] क्र्यदिभ्यः श्ना- अष्टाध्यायी-3.1.81

[121] सत्याप.....चुरादिभ्योः णिच्- अष्टाध्यायी-3.1.25

तथा यक् प्रत्यय के माध्यम से ग्यारहवें गण[122] कण्ड्वादि को भी दर्शाया है परन्तु इनमें कण्ड्वादि को मुख्यतः धातु नहीं अपितु प्रातिपदिक मानते हैं अतः केवल दश गणों के अन्तर्गत पठित धातुओं को ही दशगणी कहा जाता है (त्रिपाठी, 1977) । अतः इन दशगणों में पठित धातुएँ मूलधातु कहलाती हैं।

[धातुओं को इस प्रकार विभिन्न प्रकार से पहचाना जाता है यथा –कि यह अमुक् गण की धातु है, यह इस पद की धातु है, यह सेट् है अथवा अनिट्, एकाक्षर है या द्वयक्षर, उपसर्ग सहित है अथवा उपसर्ग रहित, अजन्त या हलन्त है अजादि है या हलादि है, मूल धातु है या आदिष्ट धातु है प्राथमिक है या गौण इत्यादि]

दस गणीय धातुओं के निम्न प्रकार से कुछ भेद भी हैं जैसे-

धातु भेद 1-

परस्मैपदी[123]- इन दशगणों में पठित धातुओं के अन्त में ति, तः, अन्ति आदि प्रत्यय दृष्टिगोचर होते हैं वे परस्मैपदी धातुएँ होती हैं यथा- हसति, हसतः, हसन्ति।

आत्मनेपदी[124]- जिनके अन्त में त,आताम्, अन्त दिखाई देते हैं वे आत्मनेपदी धातुएँ होती है यथा- सेवते, सेवेते, सेवन्ते आदि।

उभयपदी- जिनके अन्त में दोनों प्रकार के प्रत्यय लगते हो वे धातुएँ उभयपदी कहलाती हैं यथा- वहति, वहतः, वहन्ति, पुनः उसी क्रम में वहते, वहेते, वहन्ते आदि।

धातु भेद 2-

सेट्- कुछ लकारद्योतक प्रत्ययों तास्, स्य्, सिच् आदि अथवा तव्य, तृ, निष्ठा आदि आर्धधातुक प्रत्ययों के करने पर धातु और प्रत्यय के मध्य इ (इट्) का आगम होता है तो वे धातुएँ सेट् धातु

---

[122] कण्ड्वादिभ्यो यक्- अष्टाध्यायी-3.1.27

[123] शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्- अष्टाध्यायी-1.3.78

[124] तङानावात्मनेपदम्-अष्टाध्यायी- 1.4.100

कहलाती हैं। पाणिनि धातुमात्र से परे वलादि आर्धधातुक प्रत्यय होने पर 'इट्[125]' का विधान करते हैं। अतः सनाद्यन्त सभी धातुएँ सेट् हैं।

अनिट्- जिन धातुओं में किसी भी प्रत्यय के आने पर इट् का आगम नहीं होता है वे धातुएँ अनिट् धातुएँ हैं।

वेट्- जहाँ लकारद्योतक प्रत्ययों तास्, स्य्, सिच् आदि अथवा तव्य, तृ, निष्ठा आदि आर्धधातुक प्रत्ययों के करने पर धातु और प्रत्यय के मध्य 'इ' (इट्) का आगम एक पक्ष में होता है, और एक पक्ष में नहीं होता है वे धातुएँ वेट् धातुएँ कहलाती हैं।

धातु भेद 3-

प्रायः सभी धातुएँ एकाक्षर ही हैं परन्तु कुछ धातुएँ द्वयक्षर भी हैं यथा- जागृ, आदि तथा कुछ धातुएँ त्र्यक्षर भी होती हैं चुलुम्प, दरिद्रा आदि।

उपसर्गयुक्त धातुएँ- पाणिनीय धातुपाठ में कुछ धातुओं में उपसर्ग के दर्शन भी होते हैं यथा- उद्+विज्, अधि=+इङ् आदि। 'गतिर्गतौ' सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि पतञ्जली कहते हैं कि धातु तथा उपसर्ग का सम्बन्ध अन्तरङ्ग है और साधनों के साथ उसका सम्बन्ध बहिरङ्ग है। उपसर्ग विशिष्ट क्रिया का ही कारकों के साथ सम्बन्ध होता है। भर्तृहरि के अनुसार 'अट आदि की व्यवस्था के लिये धातु तथा उपसर्ग को पृथक किया जाता है वस्तुतः धातु और उपसर्ग मिलकर ही क्रियावाची हैं अतः उपसर्गयुक्त क्रिया को ही धातु मानना चाहिए[126] (पाण्डेय, 2005)।

निपातयुक्त धातुएँ- कुछ धातुओं में निपातों का संयोग भी देखने को मिलता है यथा- स्म धातु के साथ 'कु' निपात का प्रयोग करके 'कुस्मयते' शब्द का प्रयोग दिखाई देता है। इसी का प्रयोग चुरादिगण में दिखाई देता है 'कुस्म नाम्नो वा' धातु के द्वारा जिससे णिच् प्रत्यय होने पर 'कुस्मयते'

---

[125] आर्धधातुकस्येड् वलादेः-अष्टाध्यायी- 7.2.35

[126] पृष्ठ 305

शब्द की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार 'दुल उत्क्षेपे' धातु में आम् तथा हिम् निपातों को जोडकर आन्दोल व हिन्दोल जैसे शब्दों को निर्मित किया गया है।

मूल के स्थान में आदिष्ट धातुएँ – कुछ धातुओं के प्रयोगों को देखने पर ज्ञात होता है कि मूल धातु का स्थान किसी अन्य धातु ने ले लिया है जैसे- मूलधातु के रूप में पठित पा, घ्रा, स्था आदि धातुएँ सार्वधातुक लकारों में क्रमशः पिब, जिघ्र, तिष्ठ[127] (जिजासु, 2007)धातुओं का स्थान ले लेती हैं। हन् >वध्, ब्रु>वच्, अस्> भू ये ऐसे भी कुछ युग्म है जिनमें एक धातु का अधिकार सार्वधातुक लकारों में तथा एक का आर्धधातुक लकारों में चलता है। इन धातुओं को धातुपाठ में अलग–अलग अर्थों और स्थानों पर सरलता से देखा जा सकता है।

अब गौणधातु के विषय में चर्चा करते हैं जिनमें कुछ मूल धातुओं से मिलकर बनी हैं तो कुछ प्रातिपदिकों से मिलकर इन सभी को यहाँ पर मैंने सनाद्यन्त धातुओं के अन्तर्गत स्थान दिया है।

सनाद्यन्त धातु-

सनाद्यन्त "सन् आदिर्येषां ते सनादयः, एते अन्तः येषां ते सनाद्यन्ताः" अर्थात् सन् प्रत्यय आदि में है जिनके वे सनादि हुए और सन् प्रत्ययाधिकार के अन्तर्गत होने से प्रत्यय है तो सनादि से सन् सहित जो प्रत्यय हैं उनका ग्रहण होता है और वे सनादि जिनके अन्त में हैं वे सनाद्यन्त पद हुए तथा सनाद्यन्त पदों के पश्चात् अगर सुबन्त प्रत्यय लग जाये तो वे सनाद्यन्त सुबन्त हुए यथा-पातुम् इच्छा=पिपासा, ज्ञातुम् इच्छा=जिज्ञासा और तिङन्त प्रत्यय लग जाये तो सनाद्यन्त क्रियापद हुए यथा- पातुम् इच्छति=पिपासति, ज्ञातुम् इच्छति=जिज्ञासति अर्थात् सनाद्यन्त तिङन्त अथवा सुबन्त दोनों हो सकते हैं। अब वे सनादि प्रत्यय कौन कौन से हैं ? तो उत्तर स्वरूप हमें पाणिनीय अष्टाध्यायी में सन् सहित ग्यारह प्रत्ययों के दर्शन होते हैं तो काशिका में वार्तिक के रूप में क्विप्

[127] पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः –अष्टाध्यायी- 7.3.78

प्रत्यय का ग्रहण होने से ये बारह प्रत्यय होते हैं । सन्[128], यङ्[129], क्यच्[130], काम्यच्च[131], क्यङ्[132], क्यष्[133], क्विप्[134], णिच्[135], यक्[136], ईयङ्[137], णिङ्[138], आय[139] (जिजासु, 2007)इस प्रकार से ये बारह प्रत्यय सनाद्यन्त प्रत्यय कहलाते हैं । इनमें कुछ प्रत्यय धातुओं से अलग-अलग अर्थों में और अलग परिस्थितियों में होते हैं यथा-सन् प्रत्यय सामान्यतया इच्छा अर्थ को द्योतित करने के लिये होता है गम्✓ जिगमिषति और उसमें भी विकल्प दिया है जरुरी नहीं कि इच्छा अर्थ को द्योतित करने हेतु सन करना ही हो गन्तुम् इच्छति का विकल्प भी रहता है तथा कुछ धातुओं से नित्य ही सन् होता है यथा- जुगुप्सते , मीमांसते आदि । यङ् प्रत्यय क्रिया के बार-बार करने या होने की परिस्थिति में होता है सन् प्रत्यय की तरह सभी धातुओं से नहीं हो पाता है अपितु पाणिनि ने उसके व्यवहार एवं प्रयोग परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए केवल एकाच् जो धातु साथ-साथ वह हलादि भी हो तो यङ् प्रत्यय का विधान किया है यथा- गम्✓जङ्गम्यते, पठ्✓पापठ्यते । यह प्रत्यय अजादि धातुओं ईङ्, अञ्चु आदि से नहीं होता है तथा इस प्रत्यय में ङ्कार इत् होने के कारण से सभी रूप प्रक्रिया आत्मनेपद में ही चलती है । और जब यङ् के अर्थ वाले परस्मैपद क्रियाशब्द की आवश्यकता हो तो इसी प्रत्यय का लुक् कर दिया जाता है जिससे एक अन्य प्रक्रिया का निर्माण होता है यङ् प्रत्यय के लुक् होने से इस प्रक्रिया का नाम यङ्लुक् प्रक्रिया हुआ तथा जिस में ङ्कार

---

[128] गुप्तिज्किद्भ्यः सन्-अष्टाध्यायी-3.1.5

[129] धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्-अष्टाध्यायी -3.1.22

[130] सुप आत्मनः क्यच्-अष्टाध्यायी -3.1.8

[131] काम्यच्च-अष्टाध्यायी -3.1.9

[132] कर्तुः क्यङ् सलोपश्च-अष्टाध्यायी -3.1.11

[133] लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-अष्टाध्यायी -3.1.13

[134] सर्वधातुभ्यो णिज्वक्तव्यः (वार्तिक)

[135] हेतुमति च-अष्टाध्यायी -3.1.26

[136] कण्ड्वादिभ्यो यक्-अष्टाध्यायी -3.1.27

[137] ऋतेरीयङ्-अष्टाध्यायी -3.1.29

[138] कमेर्णिङ्-अष्टाध्यायी -3.1.30

[139] गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः-अष्टाध्यायी -3.1.28

इत् होने के कारण से आत्मनेपद होता था अब उसके हट जाने से यहाँ सभी रूप परस्मैपद में चलते हैं यथा – पठ्✓पापठिति, 'गाधृ अभिकाङ्क्षायाम्' यह धातु धातुपाठ में आत्मनेपद पठित है परन्तु यहाँ गाध्✓जागाद्धि, ऐसा परस्मैपद रूप ही चलता है। आय प्रत्यय केवल कुछ ही धातुओं से होता है गोपायति, धूपायति आदि । ईयङ् प्रत्यय पाणिनि ने केवल एक ही धातु से प्रयोग किया है ऋतीयते। जब कण्डवादि गण को हम धातु मानकर कार्य करते हैं तो कण्डवादि गण में पठित सभी शब्दों से यक् प्रत्यय का विधान किया गया है यथा- कण्डूयति, कण्डूयते आदि । इस प्रकार धातुओं से ये पाँचों प्रत्यय अपने-अपने सन्दर्भानुसार और अपने नियम के अनुसार लगते हैं।

पाणिनि ने हेतु के प्रेषणादि व्यापार के वाच्य होने पर धातुमात्र से णिच् प्रत्यय का विधान किया है। क्रिया के करने में जो स्वतन्त्र होता है वह कर्ता कहलाता है। उस कर्ता का जो प्रयोजक है वह हेतु कहलाता है। जब उस हेतु का प्रेषणादि-प्रेरणादि व्यापार वाच्य हो तो उसके लिये पाणिनि ने धातु से णिच् प्रत्यय का विधान किया है। यथा- देवदत्तः कटं करोति, यज्ञदत्त: तं प्रेरयति= कटं कारयति देवदत्तेन यज्ञदत्त: । कृ+णिच्=कारि, कारि+तिप्= कारयति । सोऽकामयत, कमु+णिच्= कामि +त= कामयत । पाणिनि ने आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय का विधान किया है "आत्मन: पुत्रम् इच्छति =पुत्रीयति। अपने पुत्र को चाहता है" इतने बडे वाक्य को मात्र "पुत्रीयति" क्रिया शब्द के द्वारा कहा जा सकता है । पुत्र+क्यच्=पुत्रीय, पुत्रीय+तिप्= पुत्रीयति। क्यच् प्रत्यय के समान ही प्रत्ययान्तर के रूप मे काम्यच् प्रत्यय भी होता है। आत्मनः पुत्रम् इच्छति= पुत्रकाम्यति । पुत्र+ काम्यच्= पुत्रकाम्य, पुत्रकाम्य+तिप्= पुत्रकाम्यति । उपमानवाची कर्ता से व्यवहार (आचारे) अर्थ में और भृशादि प्रातिपदिकों से क्यङ् प्रत्यय होता है और सकारान्त सुबन्त के सकार का लोप भी होता है यथा- पयायते, पयस्यते। पण्डित+क्यङ्= पण्डिताय, पण्डिताय+तिप्= पण्डितायते । लोहितादि शब्दों और डाच्प्रत्ययान्त शब्दों से "होना" (भवत्यर्थे) अर्थ में क्यष् प्रत्यय होता है । लोहितायति, लोहितायते । पटपटायति, पटपटायते ।

लोहित+क्यष्=लोहिताय, लोहिताय+तिप्= लोहितायति । लोहित+क्यष्=लोहिताय, लोहिताय+ते= लोहितायते । कण्ड्वादि पठित शब्द जब धातु के रूप में व्यवहृत होते हैं तो उस समय उनसे यक् प्रत्यय होता है । कण्डूञ्- कण्डूयते, कण्डूयति । कण्डू+यक् =कण्डूय, कण्डूय+तिप्= कण्डूयति । कण्डू+यक् =कण्डूय, कण्डूय+ते= कण्डूयते । गुपादि धातुओं से सामान्यतया आय प्रत्यय कहा है किन्तु आर्धधातुक विषय हो तो विकल्प से होगा, गोपायति, गोप्ता । गुप्+आय=गोपाय, गोपाय+तिप्= गोपायति । ऋति धातु से ईयङ् प्रत्यय होता है । यह धातु धातुपाठ में पठित नहीं है अपितु सौत्र धातु है और यह घृणार्थ को द्योतित करती है, ऋतीयते । ऋति+ईयङ्= ऋतीय, ऋतीय+त= ऋतीयते । णिङ् प्रत्यय कमु कान्तौ धातु से होता है कामयते, आर्धधातुक विषय हो तो विकल्प से णिङ् प्रत्यय होता है, प्रत्ययों में ङित् के कारण से आत्मनेपद होता है कमु+णिङ्= कामि, कामि+त= कामयते ।

इस प्रकार से इस अध्याय में संस्कृत व्याकरण शास्त्र की परम्परा को दर्शाते हुए सनादि प्रत्ययों का कुछ संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिसको द्वितीय अध्याय में विस्तार पूर्वक समझाया जायेगा ।

द्वितीय अध्याय

संस्कृत सनाद्यन्तों का परिचय एवं इस पर हुए शोधकार्यों का सर्वेक्षण

संस्कृत सनाद्यन्तों का परिचय

संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों को जानने के लिये आवश्यक है कि- सनाद्यन्त क्या है? इस विषय को जानना आवश्यक है क्योंकि पाणिनि व्याकरण में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखा जाता है प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का अपना महत्व है। सनाद्यन्त शब्द को ज्ञात करने हेतु हमें पहले इस शब्द का अर्थ जानना होगा और इस शब्द का अर्थ है कि सन् आदि में यानि प्रारम्भ में है जिनके[140], तब प्रश्न होता है कि सन् किसके आदि में है और सन् की स्वयं क्या सत्ता पाणिनिय शास्त्र में है। तब पाणिनिय व्याकरण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सन् स्वयं एक प्रत्यय है जिसका उपयोग पाणिनि ने अर्थ विशेष में प्रयोग किया है अतः सन् कुछ प्रत्ययों के आदि में है ऐसा अर्थ ज्ञात होता है और जिन प्रत्ययों के आदि में सन् है उन सभी प्रत्ययों के सहित सनाद्यन्त शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। अधुना यह जानना आवश्यक है कि सन् प्रत्यय है तो उसकी प्रकृति क्या होगी क्योंकि प्रकृति भी दो प्रकार की होती है प्रथम अर्थवान् कोई शब्द विशेष तथा दूसरी प्रकृति धातु होती है एवं यहाँ सन् की प्रकृति धातु है। धातुओं से प्रत्यय लगने के पश्चात् नवीन शब्दों का निर्माण होता है जो सुबन्त अथवा तिङन्त किसी भी प्रकार के हो सकते हैं अथवा दोनों प्रकार के होते हैं। जब हम धातुओं से तिङन्त क्रियापद की रचना हेतु प्रत्यय लगाते हैं तो दो प्रकार के क्रियारूप हमें प्राप्त होते हैं प्राथमिक क्रियारूप तथा गौण क्रियारूप। पाणिनिय धातुपाठ में पठित धातुओं से जब अव्यवहित लकार आते हैं पश्चात् उन लकारों के स्थान पर कालादि विशेष अर्थों में प्रयोग हेतु तिबाद्युत्पत्ति होती है तो प्राथमिक क्रिया रूप बनते है जैसे- 'पठ् व्यक्तायां वाची' धातु से अव्यवहित उत्तर लकार के स्थान पर वर्तमान कालिक क्रिया के अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये तिबाद्युत्पत्ति होती है तब 'पठति, पठतः, पठन्ति' आदि क्रियारूप निष्पन्न होते हैं। परन्तु जब उसी मूलधातु से सन्, यङ्, णिच् आदि प्रत्यय लगने के बाद जब पुनः उसकी धातु संज्ञा[141] होती है तो वे शब्द सनाद्यन्त[142] धातु (गौण क्रियारूप) कहलाते हैं। यथा- पठ् +सन्=पिपठिष, यहाँ 'पिपठिष' यह सनन्त धातु बनती है जिससे सामान्य प्रक्रिया के समान ही कालादि विशेष अर्थों में प्रयोग हेतु लकारादि की उत्पत्ति होकर और उन कालादि अर्थों को पूर्ण करने के लिये तिबाद्युत्पत्ति होने पर पिपठिषति, पिपठिषतः, पिपठिषन्ति, आदि क्रियारूप निष्पन्न होते हैं इस प्रकार सन्

---

[140] सन् आदिर्येषां ते सनाद्यन्ताः।

[141] सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा. 3.1.32)

[142] सन् आदिर्येषां ते सनादयः प्रत्ययाः।

सहित कुल बारह प्रत्यय जब धातुओं तथा प्रातिपदिकों से लगते हैं और उनकी धातुसंज्ञा होती है तो वह सनाद्यन्त धातुएँ कहलाती हैं। ये सनादि प्रत्यय परिस्थिति के अनुसार भी लगते हैं इनका विभाग कुछ इस प्रकार है

1 सभी धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय

2 चुनिन्दा धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय

3 धातु तथा सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय

4 सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय (नामधातु)

अब सनादि बारह प्रत्ययों का यथाक्रम विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे इनके यथार्थस्वरूप को जानने में सहायता हो सके।

1. सभी धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय

सभी धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्ययों में सर्वप्रथम सन् प्रत्यय ही आता है अतः सन् प्रत्यय के विषय को ही प्रस्तुत किया जा रहा है-

1.1 सन प्रत्यय

सन् प्रत्यय का विधान करने वाले तीन सूत्र अष्टाध्यायी में दृष्टिगोचर होते हैं वे किस-किस परिस्थिति विशेष में होते हैं या अर्थ विशेष में होते हैं उन सबका सम्पूर्ण विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. गुप्तिज्किद्भ्यः सन् (3.1.5)।

2.मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य (3.1.6)।

3.धातोः कर्मण समानकर्तृकादिच्छायाम् वा (3.1.7)।

गुप्तिज्किद्भ्यः सन्: अर्थ - गुप्, तिज् तथा कित इन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है और वह परे होता है[143](जिज्ञासु, 2003; विद्यावारिधि, 1997)। उदाहरण- जुगुप्सते, तितिक्षते, मीमांसते।

गुप्तिज्धातुओं का अर्थ निर्धारण: अब यहाँ प्रश्न होता है कि

[143] प्रथमावृत्ति भाग 1.; काशिका (3.1.32)

1. केवल तीन धातुओं से ही सन् कहा है क्या वह सन् 'धातोः कर्मणः०' सूत्र से नहीं हो सकता था?
2. जिन धातुओं से कहा है वो किस अर्थ को लेकर कहा है क्योंकि "अनेकार्थाः हि धातवो भवन्ति" के अनुसार यहाँ कौनसा अर्थ गृहित है?
3. और धातु पाठ में भी गुप धातु 'गुप व्याकुलत्वे, गुपू रक्षणे, गुप गोपने' इस प्रकार तीन अर्थ वाली धातुओं का परिचय प्राप्त होता है। सूत्र में धातुओं को अनुदात्तेत क्यों पढा है या धातुओं का अनुबन्ध करण किस कारण किया है।

प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि 'धातोः कर्मणः०' से जो सन् कहा गया है वह सन् वैकल्पिक सन् है और गुपादि धातुओं से कहा गया सन् नित्य है इन धातुओं का प्रयोग सन् के बिना नहीं होता है परन्तु जब ये धातुएँ निश्चित अर्थ को ही कहे तब ही सन् नित्य होता है अन्यथा इन धातुओं से अन्य प्रत्यय भी होते हैं। द्वितीय इन धातुओं के अर्थ का निर्धारण कोश के बल से होता है ये तीनों धातुएँ जब क्रमशः निन्दा, क्षमा, व्याधिप्रतिकार अर्थों को ही कहेंगी, तब इन धातुओं से सन् प्रत्यय नित्य होगा[144] (मेधार्थी, 1993)। अब तृतीय प्रश्न का उत्तर देते समय दो समाधान प्रस्तुत करते हैं- कि गुपादियों में अनुबन्ध करण आत्मनेपद करने के लिये है सामान्यतया जब धातु अनुदात्तेत होती है तो उससे आत्मनेपद के प्रत्ययों का ग्रहण होने से तीनों कालों के प्रयोगार्ह सभी क्रियारूप आत्मनेपद में बनते हैं। इसी प्रकार जब गुप्तिज् आदि धातुओं से सन् प्रत्यय होगा तो सनन्त धातु से आत्मनेपद के प्रत्यय होकर आत्मनेपद को प्रदर्शित करने वाला रूप बनेगा। परन्तु यहाँ एक शंका उपस्थित होती है कि जब 'गुप् +सन्' इस स्थिति में आत्मनेपद करने चलेंगे तो अनुदात्त गुप् धातु से उत्तर सन् का व्यवधान प्राप्त होगा (क्योंकि तिबादि जो प्रत्यय होते हैं वे जिससे कहे जाये उससे अव्यवहित परे होते हैं) तो अनुदात्त करण व्यर्थ प्रतीत होने लगेगा। तब समाधान स्वरूप 'पूर्ववत्सनः' सूत्र से आत्मनेपद करना चाहते हैं। परन्तु पूर्ववत्सनः कहता है कि-सन् प्रत्यय के आने के पूर्व जो धातु आत्मनेपदी रही हो, तो उससे सनन्त होने के पश्चात् भी आत्मनेपद होता है। किन्तु यहाँ तो सन् आने के पूर्व गुप् या तिज् कोई भी धातु आत्मनेपदी नहीं है क्योंकि जब भी इन तीनों धातुओं से प्रत्यय करने की इच्छा होगी तब सर्वप्रथम सन् की उपस्थिति होगी। पाणिनि का कहा कोई भी कथन व्यर्थ नहीं होता है इसलिये पूर्व में प्रयोग न होते हुए भी अनुबन्ध करण का जो प्रयोजन है

[144] निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते।

आत्मनेपद करना उस अनुबन्ध करण करने के सामर्थ्य से आत्मनेपद हो ही जायेगा भले ही 'पूर्ववत्सनः' की शर्त पूर्ण न भी हो रही हो।

द्वितीय समाधान- अवयव में किये हुए चिह्न का कोई प्रयोजन सिद्ध न हो रहा हो तो वह चिह्न अवयवी का विशेषक बन जाता है और वह अवयवी का ग्रहण कराता है[145] । क्योंकि अवयव-अवयवी में समवाय-सम्बन्ध होता है जिस प्रकार गाय की सक्थि या कर्ण में किया गया कोई भी चिह्न गाय का विशेषक होने से गाय का ग्रहण कराता है । उसी प्रकार जब यहाँ 'गुप्+सन्=जुगुप्स' से आत्मनेपद करने के लिये प्रत्यय लाते हैं तो वह गुप् अवयव में किया गया अनुदात्त करण अपने अवयवी जुगुप्स का भी ग्रहण करायेगा जिस कारण आत्मनेपद हो जायेगा।

परन्तु यहाँ भी शंका उत्पन्न होती है कि जब अवयव से अवयवी का ग्रहण होता है तो 'जुगुप्सयति, मीमांसयती' आदि स्थानों पर भी आत्मनेपद की प्राप्ति होगी। इसके लिये कहते हैं कि अवयव में किया गया चिह्न उसी अवयवी का ग्रहण करायेगा जिस अवयवी के साथ उस अवयव का अव्यभिचार सम्बन्ध होता है या समवाय-सम्बन्ध होता है[146] (जोशी, 2004; मीमांसक, 2000) लेकिन उस अवयवी का ग्रहण नहीं करायेगा जिसको वह व्यभिचरित कर सकता है। जिस प्रकार कर्ण में किया गया कोई चिह्न उस कर्ण के अवयवी गाय विशेष का विशेषक होने से उस गाय का ग्रहण तो कराता है परन्तु गो-समुदाय का ग्रहण नहीं कराता है क्योंकि उस कर्ण और गाय का समवाय सम्बन्ध है अर्थात् वह चिह्न उस गाय का व्यभिचार नहीं करता है परन्तु गो-समुदाय में उपस्थित गायों का व्यभिचार तो वह करता ही है तो वह उनका ग्रहण नहीं करा सकता है। ठीक उसी प्रकार ([गुप्+सन्=जुगुप्स]+णिच्=जुगुप्सि) यहाँ गुप् धातु में किया गया अनुदात्तेत्व जुगुप्स का विशेषक बन सकता है क्योंकि जुगुप्स का अवयव गुप् धातु उस समुदाय (जुगुप्स) का व्यभिचार कभी नहीं करता है क्योंकि सन् रहित केवल गुप् धातु का प्रयोग नहीं किया जा सकता है अतः यदि हम उस गुप् धातु में किये हुए अनुदात्त के द्वारा जुगुप्स समुदाय को विशेषित नहीं करेंगे तो अवयव में किया हुआ वह अनुबन्ध करण व्यर्थ हो जायेगा लेकिन जुगुप्सि इस णिजन्त धातु का विशेषक नहीं बन सकता है क्योंकि णिच् से रहित गुप् धातु का जुगुप्स में प्रयोग किया जा सकता है। गुप् और सन् ही समवाय सम्बन्ध से रहते हैं परन्तु गुप् के साथ णिच् समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है

---

[145] अवयवे कृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवति।

[146] अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं योऽवयवो न व्यभिचरति। महाभाष्य भाग-3

तो वह णिजन्त जुगुप्सि का व्यभिचार कर सकता है। अतः णिजन्त जुगुप्सि धातु से आत्मनेपद की प्राप्ति नहीं होगी। फलस्वरूप यहाँ पर परस्मैपद के रूप बनते हैं।

मान्बधदान्शान्भ्योः दीर्घश्चाभ्यासस्य-

अर्थ- मान्, बध्, दान् और शान् धातुओं से सन् प्रत्यय होता है और अभ्यास के विकार को दीर्घ होता है (जिज्ञासु, 2003; विद्यावारिधि, 1997)। उदाहरण- मीमांसते, बीभत्सते, दीदांसते, शीशांसते।

दीर्घत्व स्थान निश्चायक विचारणा-

शंका - सूत्र में अभ्यास को दीर्घ कहा गया है तो वह 'मीमांसते' में मान् धातु के अभ्यास 'अ' को प्राप्त होता है। यद्यपि 'सन्यतः' सूत्र से अभ्यास को इत्त्व की प्राप्ति होती है और तदुपरान्त दीर्घ करने पर 'मीमांसते' इष्ट रूप सिद्ध हो सकता है। लेकिन प्रकृत सूत्र सन् की उत्पत्ति के साथ ही अभ्यास को दीर्घ विधान करता है उससे सन् प्रत्यय होते ही अभ्यास को दीर्घ हो जायेगा जिससे वह दीर्घ करने के लिये इत्त्व की प्रतीक्षा नहीं कर सकता है। तो इसका समाधान यह है कि दीर्घ करने के लिये भी पहले अभ्यास सञ्ज्ञा करनी पडती है पश्चात् अभ्यास को दीर्घ हो पाता है। तो जिस तरह दीर्घ अभ्यास की प्रतीक्षा करेगा उसी तरह वह इत्त्व की भी प्रतीक्षा कर लेगा। लेकिन दीर्घ अभ्यास की प्रतीक्षा इसलिये कर लेता है क्योंकि सूत्र में अभ्यास को दीर्घ विधान किया गया है पर इत्त्व की प्रतीक्षा नहीं कर सकता है। इस प्रकार इकार को दीर्घ न होकर अभ्यास को दीर्घ प्राप्त होता है जिससे मीमांसते रूप सिद्ध नहीं हो पाता है। समाधाता कहता है कि अभ्यास विकार कार्यों में अपवाद उत्सर्गों को नहीं बाधा करते है इस कारण दीर्घ इत्त्व को नहीं बाध पाता है और पहले इत्त्व होकर पश्चात् इत्त्व को दीर्घ होकर मीमांसते इत्यादि इष्ट रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्वितीय समाधान - अथवा सूत्र का स्वरूप परिवर्तित करके "मान्बधदान्शान्भ्य ई चाभ्यासस्य " ऐसा सूत्र बना देंगे जिसका अर्थ होगा कि अभ्यास को 'ई' होता है परिणामस्वरूप कोई दोष नहीं आयेगा। शंकाकर्त्ता कहता है कि

परिवर्तित सूत्र से विहित ईकार 'हलादिः शेषः' सूत्र का अपवाद है जिस कारण ईकार हलादिः शेषः सूत्र लगने से पहले ही होगा तो वह मान् अभ्यास के आकार को न होकर नकार को होने लगेगा। समाधाता कहता है कि हम सूत्र में "ई चाच" ऐसा जोडेंगे तब सूत्र का अर्थ होगा कि अच् के स्थान

पर ईकार होता है । तो अब मान् अभ्यास के नकार को ईकार नहीं होगा, पहले हलादिः शेषः लगेगा पश्चात् अच् आकार के स्थान में ईकार की प्रवृत्ति होगी और इष्ट रूप सिद्ध हो जायेगा ।

तृतीय समाधान- अथवा हम "मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चेतोभ्यासस्य" ऐसा सूत्र बनायेंगे जिसका अर्थ होगा कि अभ्यास के इकार को दीर्घ होता है, जिससे पहले सन्यतः सूत्र की प्रवृत्ति होकर पश्चात् दीर्घ होगा अतः कोई दोष उपस्थित नहीं होता है ।

यद्यपि इन सभी समाधानों से इष्ट रूप तो सिद्ध हो जाता है लेकिन सूत्र का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है । तो अब सूत्र को परिवर्तित न करते हुए समाधान प्रस्तुत करते हैं -

चतुर्थ समाधान- सूत्र में चाभ्यासस्य पद का विग्रह "च अभ्यासस्य" ऐसा नहीं है बल्कि "च आभ्यासस्य" ऐसा है और आभ्यासस्य का अर्थ है 'अभ्यास का विकार' । तो अब सूत्र का अर्थ होगा कि अभ्यास के विकार को दीर्घ होता है न कि अभ्यास को दीर्घ होता है । ऐसा सूत्रार्थ होने से यद्यपि अभ्यास विकार लोप और ह्रस्व को भी दीर्घ प्राप्त हो सकता है लेकिन लोप को तो दीर्घ विधान नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अभावरूप है और यदि मान् के ह्रस्व अकार को दीर्घ करने चले तो तद्धित प्रत्यय का प्रयोग करके सूत्र में जो आभ्यास ऐसा प्रयत्न किया है वह व्यर्थ हो जायेगा इसलिये इत्व को ही दीर्घ होता है अथवा सन् ऐसा उच्चारण करके जो सन्यतः सूत्र से इत्त्वविकार किया गया है उसका ही इस सूत्र में ग्रहण है ऐसा जानना चाहिये । जिससे पहले सन्यतः सूत्र से अभ्यासविकार कार्य इत्त्व होगा पश्चात् उस इत्त्व को दीर्घ होगा । तो अब कोई दोष नहीं रह जाता है और मीमांसते इत्यादि इष्ट रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा

सूत्रार्थ- इच्छा क्रिया के कर्म जो धातु इच्छा क्रिया के द्वारा समानकर्तृक अर्थात् इच्छा क्रिया के समान कर्ता वाला हो, उससे इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय विकल्प करके होता है ।

सूत्र में कर्मणः और समानकर्तृकात् पद पढा हुआ है और कर्मत्व व समानकर्तृकत्त्व क्रिया की अपेक्षा से ही सम्भव है । सूत्र में इच्छा क्रिया को प्रत्ययार्थ के रूप में पढा हुआ है तो कर्मत्व व समानकर्तृकत्त्व भी प्रत्यासत्ति न्याय से इच्छा क्रिया की अपेक्षा से ही लिये जायेंगे ।

उदाहरण– कर्तुमिच्छति= चिकीर्षति । हर्तुमिच्छति= जिहीर्षति । पठितुमिच्छति= पिपठिषति ।

इस सूत्र का विवेचन करते हुए इसके सम्पूर्ण स्वरूप पर विचार किया जा रहा है- जैसे कि सूत्र में धातोः पद ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है या कर्म और समानकर्तृक ग्रहण के बिना भी कार्य किया जा सकता है और 'वा' ग्रहण की क्या आवश्यकता है इत्यादि प्रश्नों के माध्यम से सूत्र को स्थापित किया गया है।

धातुपद अर्थ विचार

शंका- सूत्र में धातु पद से धात्वर्थ का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि कर्मत्व व समानकर्तृकत्त्व धात्वर्थ में ही सम्भव हो सकता है धातु शब्द में नहीं। अतः सूत्र का अभिप्राय होगा- इच्छा क्रिया का कर्मभूत जो अर्थ वह जिस धातु से कहा जाता है और यदि वह धातु इच्छा क्रिया के समान कर्त्ता अर्थ वाली भी हो तो ऐसी धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय विकल्प करके होता है। पदमन्जरी

धातुपद प्रयोजन विचार

कर्मत्व व समानकर्तृकत्त्व क्रिया की अपेक्षा से ही होते हैं और धातु ही क्रियावाची होती है तो विना धातु पद के भी इष्ट सिद्धि हो सकती है अतः धातु पद व्यर्थ है। यदि कोई ऐसा कहे कि प्रकर्त्तुमैच्छत्= प्राचिकीर्षत् उदाहरण में प्रकर्त्तुम् इस उपसर्ग सहित धातु से प्रत्यय की उत्पत्ति न हो क्योंकि यहाँ प्रकर्त्तुम् इस संघात के द्वारा ही विशिष्ट क्रिया का प्रतिपादन किया जा रहा है तो कर्मत्व व समानकर्तृकत्त्व भी उसी की अपेक्षा से होगा। यदि संघात से प्रत्यय की उत्पत्ति हुई तो द्विवचन और अडागम इत्यादि कार्य संघात को ही होने लगेंगे जो कि इष्ट नहीं है, वे अनिष्ट रूप न बनें इसलिये सूत्र में धातु पद ग्रहण किया है ऐसा ठीक नहीं है क्योंकि सूत्र में कर्मणः पद भी पढा है जिस कारण कर्म से ही प्रत्यय की उत्पत्ति होगी और प्रकर्त्तुम् यहाँ पर उपसर्ग रहित कर्तुम् ही कर्म है न कि प्रकर्त्तुम्। यदि हम प्रकर्त्तुम् उपसर्ग सहित को कर्म मानेंगे तो प्रकर्त्तुम् में कर्त्तुम् पद को हम कर्म नहीं मान सकते परिणामस्वरूप सूत्र में धातु पद पढ लेने पर भी धातु से सन् प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं हो पायेगी क्योंकि उपसर्ग रहित कर्त्तुम् कर्म नहीं है।

यद्यपि वार्तिककार उपसर्ग रहित धातु को कर्म मानता है। लेकिन भाष्यकार सोपसर्ग धातु को ही न्याय्य कर्म मानते हैं। अपने पक्ष में दोष का निराकरण करते हुए वे कहते हैं कि 'कर्मणः' में पंचमी विभक्ति नहीं है क्योंकि पंचमी विभक्ति मानने पर 'कर्मणः' पद का 'धातोः' पद के साथ सामानाधिकरण रूप में सम्बन्ध होता है जिससे दोष उपस्थित होता है। बल्कि यहाँ पर अवयव में

षष्ठी विभक्ति है जिससे सूत्र का अर्थ बनता है- कर्म का अवयव जो धातु उससे सन् प्रत्यय होता है। इस अर्थ में कोई दोष उपस्थित नहीं होता है क्योंकि सोपसर्ग कर्म पक्ष में भी प्रकर्त्तुम् इस कर्म का अवयव जो 'कृ' धातु उससे सन् प्रत्यय की प्राप्ति हो ही जायेगी और चिकीर्षति इत्यादि उदाहरणों में व्यपदेशिवद्भाव से केवल 'कर्त्तुम्' के 'कृ' से भी प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी।

कर्मणः पद में अवयव षष्ठी विभक्ति मानने पर सुपः आत्मनः क्यच् सूत्र में भी महान्तं पुत्रमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में 'महान्तं पुत्रम्' कर्म का अवयव जो पुत्रम् सुबन्त उससे क्यच् प्रत्यय प्राप्त होने लगता है जो कि इष्ट नहीं है। लेकिन यहाँ पर पुत्रम् पद महान्तं पद की अपेक्षा करने के कारण सापेक्ष हो जाता है और सापेक्षमसमर्थं भवति परिभाषा के बल से पुत्रम् पद असमर्थ हो जाता है और विधि समर्थों की ही होती है[147] (जिज्ञासु, 2007)।

अतः असमर्थ पुत्र शब्द से प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं हो पायेगी। पुत्रम् सुबन्त से क्यच् विधि पदविधि है इसलिये यहाँ पर समर्थ परिभाषा उपस्थित हो सकती है परन्तु सन्विधि पदविधि नहीं है इसलिये सन्विधि में समर्थ परिभाषा उपस्थित नहीं होती है वहाँ पर तो सापेक्ष से भी प्रत्ययोत्पत्ति हो जायेगी अतः प्रकर्त्तुमैच्छत्= प्राचिकीर्षत् में कृ से सन् हो जाता है या दूसरा समाधान ये भी दे सकते हैं कि धातु ही विशिष्ट क्रिया को कहती है उपसर्ग तो केवल उसके द्योतक होते हैं जिससे प्र उपसर्ग कृ को विशेषित नहीं करता है।

वार्तिककार के पक्ष में धातु ग्रहण का प्रयोजन दिया गया कि सुबन्तों से सन् की उत्पत्ति न हो। क्यजादि प्रत्यय विकल्प से कहे हैं तो पक्ष में सन् प्राप्त होने लगता है परन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि सुबन्तों से तो क्यजादि प्रत्ययों का विधान किया गया है वे अपवाद होने से सन् को बाध लेंगे। (सन् कर्ममात्र से विधान किया गया है और क्यजादि कर्मविशेष सुबन्तों से अतः वे सन् का अपवाद बन जाते हैं) जहाँ पर उत्सर्ग और अपवाद विकल्प से विधान किये गये हों वहाँ अपवाद से मुक्त होने पर उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती है तो जिस पक्ष में क्यजादि नहीं होंगे उस पक्ष में उत्सर्ग होने से सन् भी नहीं होगा बल्कि वाक्य ही बना रहेगा। सुपः आत्मनः क्यच् सूत्र आत्मेच्छा मे क्यच् का विधान करता है तो उस पक्ष में सन् प्रत्यय नहीं होगा लेकिन परेच्छा में तो सन् की उत्पत्ति होगी ही राग्यः पुत्रमिच्छति।

इस शंका के लिये दूसरा समाधान भी दिया जा सकता है कि सुबन्त से उत्पन्न सन् से इच्छा का अभिधान नहीं हो पाता है इसलिये अनभिधान होने से प्रत्ययोत्पत्ति नहीं होगी पर अनभिधान

[147] समर्थः पदविधिः- अष्टाध्यायी – 2.1.1

कहना अगतिका गति है क्योंकि बोद्धा लक्षणैकचक्षुष्क होते हैं, वे लक्षण के अनुसार लक्ष्य की व्यवस्था को ही न्याय्य मानते हैं। सूत्र के द्वारा जो शब्द बनेगा वही उपयुक्त होगा अर्थात् वही अर्थ को कहेगा। अतः अभी तक धातु पद व्यर्थ प्रतीत होता है।

उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि सूत्र में समान कर्त्ता कहा है और सुबन्त के साथ समानकर्तृत्व की संकल्पना नहीं बन पाती है क्योंकि पुत्रादि सुबन्त सत्त्वभूत अर्थात् सिद्धभूत अर्थ को कहने वाले हैं और सिद्धभूत अर्थ के आधार पर कर्ता व कर्म साधनों का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है। धातु साध्यरूप होती है उसके आधार पर साधनों का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। अतः समानकर्तृकात् पद की संगति के लिये सूत्र में धातु पद पढना चाहिये। आसितुमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में आसितुम् सुबन्त साध्य है इसलिये यहाँ पर प्रकृत सूत्र सार्थक हो सकता है। ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि इच्छा अर्थ में तुमुन् प्रत्यय का विधान किया गया है तो उस इच्छा अर्थ को तुमुन् के द्वारा ही कह दिये जाने से अब उस इच्छा अर्थ को कहने के लिये पुनः सन् प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी[148]। और आसनमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में भी सन् की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि सूत्र में समानकर्तृकात् कहा है तो जहाँ पर समानकर्तृत्व द्योतित होगा वहीं प्रत्ययोत्पत्ति होगी यथा आसितुमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में बैठना क्रिया वह स्वयं करना चाहता है परन्तु आसनमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में वह स्वयं का आसन चाहता है या दूसरे का ऐसा संदेह गम्यमान होता है तो समानकर्तृत्व की प्रतिपत्ति स्पष्टतया नहीं हो पाती है। सन् प्रत्यय वहीं होगा जहाँ वह स्वयं चाहता है अर्थात् समानकर्तृत्व स्पष्ट रूप से हो। अतः आसनमिच्छति इत्यादि उदाहरणों में सन् प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होगी। यदि समानकर्तृत्व की स्पष्ट प्रतिपत्ति नहीं मानेंगे तो संगतमिच्छति यजदत्तो देवदत्तेन इस उदाहरण में धातु ग्रहण करने पर भी सन् प्रत्यय की प्राप्ति होने लगेगी। यहाँ पर भी स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि वह आत्मकर्तृक संगत चाहता है या परकर्तृक पर ऐसी स्थिति में प्रत्यय इष्ट नहीं है परन्तु यदि वक्ता समानकर्तृकत्व प्रतिपादित करना चाहता है तब तो प्रत्यय होता ही है संजिगंसते वत्सो मात्रा। तो यहाँ पर धातु ग्रहण व्यर्थ प्रतीत होता है। परन्तु अङ्ग का परिमाण निर्धारित करने के लिये धातु ग्रहण करना चाहिये सोपसर्ग का अङ्गत्व न हो धातु का ही हो जिससे अडागम और द्विवचन इत्यादि कार्य धातु रूपी अङ्ग को ही होते हैं और साथ ही प्रकृत सूत्र विहित सन् की धातु से विधान होने से

[148] उक्तार्थानामप्रयोगः -महाभाष्य

आर्धधातुक संज्ञा[149] हो जाती है जिससे शिशयिषते इत्यादि उदाहरणों में आर्धधातुक को निमित्त मानकर इडागम[150] और गुण कार्य हो जाते हैं। पूर्व दोनों सूत्रों से विहित सन् की आर्धधातुक संज्ञा नहीं हो पाती है क्योंकि उनका धातु कहकर विधान नहीं किया गया है जिस कारण जुगुप्सते इत्यादि में आर्धधातुक आश्रय इट् नहीं होता है

कर्म और समानकर्तृक पद विचार

सूत्र से इच्छा अर्थ में प्रत्यय विधान किया गया है और उस इच्छा का कर्म अवश्य ही होना चाहिये। तो प्रत्यासत्ति से प्रकृत्यर्थ ही कर्म रूप में आश्रित होगा। इसी तरह प्रत्यासत्ति से समान कर्त्ता का ही ग्रहण होगा न कि भिन्न कर्त्ता का। तो गमनेन इच्छति या देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः इत्यादि उदाहरणों में प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा और इन अर्थों को कहने के लिये जिगमिषति या बुभुक्षते का प्रयोग भी नहीं होता है अतः अभिधान न होने से सूत्र में कर्म और समानकर्तृक ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।

वा वचन की व्यर्थता

सूत्र में वा वचन क्यों ग्रहण किया हैं इस विषय को उपस्थित करने हेतु यहाँ पर दो पक्ष होते हैं

I. वृत्ति पक्ष और

II. अवृत्ति पक्ष (वाक्य)।

इन दोनों में बाध्य बाधक भाव भी सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों का विषय अलग-अलग है। वृत्ति एकार्थीभाव और व्यपेक्षा विषय वाली होती हैं और वाक्य का अर्थ इनसे भिन्न होता है[151] (जोशी, 2004) ये दोनों स्वभाव से ही होते हैं इनको विधान करने की आवश्यकता नहीं है और वृत्ति पक्ष में सन् प्रत्यय नित्य होता है। तो जब वृत्ति पक्ष और अवृत्ति पक्ष स्वभाव से ही सम्भव है तो अब वा ग्रहण करने से प्रत्यय संज्ञा का विकल्प होने लगेगा जिससे प्रत्यय निमित्तक कार्य भी विकल्प से होने लगेंगे जो कि इष्ट नहीं है। अतः वा ग्रहण करना व्यर्थ है।

वार्तिक - आशङ्कायामुपसङ्ख्यानम्

अचेतन होने से सन् की अप्राप्ति में वार्तिककार कहते हैं कि आशङ्का अर्थ में भी सन् प्रत्यय कहना

---

[149] आर्धधातुकं शेषः –अष्टाध्यायी-3.4.114

[150] आर्धधातुकस्येड् वलादेः–अष्टाध्यायी-7.2.35

[151] वृत्तेरेकार्थीभावविषयत्वाद् व्यपेक्षाविषयत्वाच्च वाक्यस्य भिन्नार्थत्वाद् बाध्यबाधकभावाप्रसङ्गादिति भावः। महाभाष्यप्रदीप।

चाहिये (मेधार्थी, 1993)। आशङ्के पतिष्यति कूलम् - पिपतिष्यति कूलम्, श्वा मुमूर्षति । नदीकूल (किनारे) के अचेतन होने के कारण उसमें इच्छा सम्भव नहीं है और कुत्ता यद्यपि चेतन है पर व्याधि आदि के द्वारा अभिभव होने पर भी उसकी मरने की इच्छा नहीं है । महाभाष्यकार के अनुसार वार्तिक की आवश्यकता नहीं है । वह दो समाधान प्रस्तुत करता है- 1. सूत्र पठित इच्छा शब्द का अर्थ होगा इच्छा इव जिस कारण जैसे चेतन में इच्छा होती है तत्सदृश इच्छा होने पर भी प्रत्यय सिद्ध हो जायेगा (जोशी, 2004; मीमांसक, 2000)। 2. या लोक और वेद में कंसकाः सर्पन्ति, शिरीषोयं स्वपिति, शृणोत ग्रावाणः इत्यादि प्रयोग देखें जाने से सभी चेतन ही होते हैं । इसलिये कोई दोष नहीं है ।

वार्तिक- **इच्छासनन्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः**

इच्छा अर्थ में विहित सन् अन्त वाले शब्द से पुनः सन् नहीं होता है- चिकीर्षितुमिच्छति[152] यहाँ सन् प्रत्यय नहीं होगा लेकिन स्वार्थिक सन् से तो ये सन् हो जाता है- जुगुप्सिषते, मीमांसिषते ।

2. चुनिन्दा धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय

यङ्, ईयङ्, आय, यक् ये प्रत्यय सभी धातुओं से न लगकर अपनी-अपनी परिस्थिति अनुसार लगते हैं ।

यङ्- यह प्रत्यय केवल हलादि धातुओं से ही लगता है और वह हलादि धातु भी एकाच् होनी चाहिये यङ् लगने के बाद पुनः धातु सञ्ज्ञा होकर क्रियारूप बनते हैं तथा एक पक्ष में इस यङ् का भी लुक् हो जाता है और जिस पक्ष में यङ् का लुक् होता है उस प्रक्रिया को यङ्लुक् प्रक्रिया कहा जाता है यङ् से सम्बन्धित शास्त्रीय चर्चा निम्न प्रकार है-

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्[153]

अर्थ - एकाच् जो धातु और हलादि उससे क्रियासमभिहार अर्थ में यङ् प्रत्यय होता है ।

समभिहार शब्द के दो अर्थ बनते हैं - 1. साकल्य रूप से करना 2. पुनः पुनः करना । इन दोनों ही अर्थों मे धातुमात्र से यङ् प्रत्यय होता है ।

---

[152] शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैशिको मतुबर्थिकः ।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः, सनन्तान्न सन्निष्यते ॥ कारिका

[153] अष्टाध्यायी- 3.1.22

1. समभिहार का अर्थ निर्धारण-

सम् पूर्वक हृ धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करने पर समभिहार शब्द बनता है- समभिहरणं समभिहारः । जिसका अर्थ होगा- बिखरी हुई वस्तुओं को एकत्रित करना, समुदायभाव को प्राप्त करवाना[154] । जैसे- लोक में भी देखा जाता है - पुष्पाभिहार, मालाभिहार इत्यादि । लौकिक पुष्पाभिहार इत्यादि उदाहरणों में समभिहार सम्भव हो सकता है क्योंकि वहाँ अनेक पुष्प हैं तो उनका एकत्रीकरण सम्भव है लेकिन यहाँ तो एक ही क्रिया है एक ही धातु एक साथ अनेक क्रिया को नहीं कह सकती है तो यहाँ समभिहार सम्भव नहीं हो पाता है । समाधाता कहता है कि गौण समभिहार को आश्रित करके कोई दोष नहीं आयेगा । लोक में भी ऐसा देखा जाता है- जैसे अन्यजातीय द्रव्य से अव्यवहित द्रव्यों के समूह के लिये समभिहार शब्द का प्रयोग होता है वैसे ही अन्य क्रियाओं से अव्यवहित क्रियाओं में भी समभिहार शब्द का प्रयोग हो सकता है । क्रिया दो प्रकार की होती है –

- प्रधान क्रिया= सामान्य क्रिया विक्लेदन आदि
- अप्रधान क्रिया अर्थात् अवयव क्रिया अधिश्रयणादि ।

इस प्रकार सामान्य क्रिया एक है लेकिन अवयव क्रियाएं बहुत सारी हैं । उन बहुतों में तो समभिहार सम्भव हो ही सकता है । तो जब इन अवयव क्रियाओं को विजातीय क्रियाओं के व्यवधान से रहित होकर किया जाता है अर्थात् साकल्य से किया जाता है तब ये एक पाक सामान्य क्रिया के लिये विहित इन सभी अवयव क्रियाओं का एक साथ विहितत्व होने से समभिहार हो जायेगा । अन्य क्रिया से व्यवहित होने पर सजातीयत्व की हानि होने से समभिहार सम्भव नहीं हो पाता है । क्रम से उत्पन्न अधिश्रयण इत्यादि क्रियाओं का जब बुद्धि से अभेद कर दिया जाता है तो उनका एक समूह रूप बन जाता है जिस समूह में अवयव क्रियाएं गौण हो जाती हैं तो उन गुणभूत अवयव से युक्त समूह को ही क्रिया कहा जाता है[155] । इस प्रकार इन गुणभूत अवयव क्रियाओं का समभिहार सम्भव है ।

2. समभिहार का दूसरा अर्थ

पुनः पुनः करना । समूह रूप में जो पाक इत्यादि क्रियाएँ विद्यमान हैं उन क्रियाओं को जो बार-

---

[154] विप्रकीर्णानामेकत्र राशीकरणं समुदायभावापत्तिर्मुख्यः समभिहारः, महाभाष्य

[155] (गुणभूतैरवयवैः ....)

बार करता है उसे भी समभिहार कहेंगे । जब हमने एक पाक क्रिया की और अगले समय में दूसरी, फिर अगले समय में तीसरी इस तरह बार-बार करने पर भी पाक क्रिया में काल का भेद होने पर कालकृत भेद हो जाता है पर सजातीयत्व की दृष्टि से वह क्रिया एक ही है । यदि उस पाक क्रिया में किसी दूसरी क्रिया का व्यवधान नहीं आता है और उसी पाक क्रिया को हम बार-बार करते हैं तो यह भी समभिहार कहलायेगा ।

धातु पद विचार

महाभाष्यकार इस सूत्र में पढे हुए धातु पद को धातोः कर्मणः० .. सूत्रस्थ धातोः पद के समान व्यर्थ सिद्ध करता है । यहाँ पर भी धातु पद का यही प्रयोजन हो सकता है कि सोपसर्ग से प्रत्यय की उत्पत्ति न हो । प्रकृत में क्रियासमभिहार पद पढने से धातोः पढने की आवश्यकता नहीं है । यदि कोई कहता है कि सोपसर्ग क्रियासमभिहार अर्थ को कहेगा तो प्रत्यय की उत्पत्ति भी सोपसर्ग से ही होगी तो सोपसर्ग को ही द्वित्व इत्यादि प्राप्त होने लगेंगे ऐसा कहना युक्त नहीं है क्योंकि उपसर्ग क्रियासमभिहार का विशेषक है और उपसर्ग रहित धातु ही क्रियासमभिहार अर्थ को कहती है । यदि ऐसा नहीं मानोगे तो आप धातु ग्रहण कर भी लोगे तब भी प्राटति भृशम् इत्यादि उदाहरणों में यङ् की उत्पत्ति नहीं हो पायेगी क्योंकि क्रियासमभिहार में यङ् होता है और प्राटति भृशम् में केवल अट् धातु क्रियासमभिहार अर्थ को नहीं कहता है । इसलिये उपसर्ग रहित धातु को ही क्रियासमभिहार अर्थ का वाचक मानना चाहिये और उपसर्ग को उसका विशेषक । अतः धातु ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है ।

एकाच् और हलादि पद विचार

सूत्र में एकाच् और हलादि ग्रहण क्यों किया? जागर्त्ति भृशम् । ईक्षते भृशम् इत्यादि उदाहरणों में जागृ धातु अनेकाच् और ईक्ष धातु अजादि है यहाँ यङ् की उत्पत्ति न हो । समाधाता कहता है कि अनभिधान होने से ही यङ् प्रत्यय नहीं होगा, एकाच् और हलादि पढने की आवश्यकता नहीं है । प्रकृत सूत्र में क्रियासमभिहार अर्थ में यङ् कहा है और अनेकाच् और हलादि धातु से उत्पन्न यङ् प्रत्यय द्वारा क्रियासमभिहार अर्थ का अभिधान नहीं हो पाता है । सूत्र में आप एकाच् और हलादि पद पढ भी लोगे तब भी अनभिधान फिर भी कहना पडेगा क्योंकि जहाँ एकाच् और हलादि

धातु से भी उत्पन्न यङ् के द्वारा क्रियासमभिहार अर्थ नहीं कहा जायेगा वहाँ भी यङ् नहीं होगा- भृशं रोचते, भृशं शोभते और जहाँ अनेकाच् और हलादि धातु से उत्पन्न यङ् क्रियासमभिहार अर्थ को कहता है तो वहाँ पर यङ् हो जायेगा- अटाट्यते, अरार्यते, अशाश्यते इत्यादि। इसलिये एकाच् और हलादि पद पढने की आवश्यकता नही है।

वार्तिक - सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिग्रहणं यङ्विधावनेकाजहलाद्यर्थम्

यदि सूत्र में कोई परिवर्तन नहीं करते हैं अर्थात् सूत्र में एकाच् और हलादि पद नहीं पढते हैं तब यह वार्तिक पढना सार्थक है। सूचि, सूत्रि, मूत्रि, अटि, अरि, अश और ऊर्णु इन अनेकाच् व हलादि धातु से भी यङ् कहना चाहिये (मेधार्थी, 1993)। सोसूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते। अटाट्यते। अरार्यते। अशाश्यते। प्रोर्णोनूयते। आम्प्रत्यय और इट् के प्रतिषेध के लिये ऊर्णु धातु को नु भाव कहना चाहिये। ऊर्णु को नु करने अब वार्तिक में इसका ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब ये एकाच् भी है और हलादि भी।

लोट् और यङ् विप्रतिषेध विचार

क्रियासमभिहार अर्थ में दोनों की सम्प्रधारणा होने पर विप्रतिषेध से लोट् प्राप्त होता है। जहाँ धातु एकाच् हलादि और क्रियासमभिहार में वर्त्तमान है और धातुसम्बन्ध भी नहीं है वहाँ पर यङ् का अवकाश है - लोलूयते, पोपूयते। जो धातु अनेकाच्, हलादि और क्रियासमभिहार में वर्त्तमान है और धातुसम्बन्ध भी है वो लोट् का अवकाश है जागृहि जागृहि इत्येवं जागर्ति। लेकिन जहाँ धातु एकाच्, हलादि और क्रियासमभिहार में वर्तमान है और धातु सम्बन्ध भी है वहाँ दोनो प्राप्त होते हैं विप्रतिषेध से लोट् हो जाता है- स भवान् लुनुहि लुनुहीत्येवं लुनाति। समाधाता कहता है कि विप्रतिषेध की आवश्यकता नहीं है। दोनों प्रत्ययों का विषय अलग-अलग है। कर्त्ता और कर्म में लोट् विधान किया जाता है और क्रियाविशेष स्वार्थ में यङ्। तो लोट् को कर्ता, कर्म की और धातु की अपेक्षा होने से बहिरङ्ग है जिससे स भवान् लोलूयस्व लोलूयस्वेत्येवायं लोलूयते में अन्तरङ्ग होने से यङ् हो जायेगा और यङ् विकल्प करके होता है तो पक्ष मे लोट् भी हो जायेगा स भवान् लुनुहि लुनुहीत्येवं लुनाति।

नित्यं कौटिल्ये गतौ[156]

अर्थ- गतिवचन वाली धातु से कौटिल्य गम्यमान होने पर नित्य ही यङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। कुटिलं क्रामति चङ्क्रम्यते । दन्द्रम्यते ।

नित्य पद विचार

सूत्र में नित्य ग्रहण अनर्थक है क्योंकि जो अर्थ चङ्क्रम्यते इस प्रत्ययान्त से प्रतीत होता है वह अर्थ कुटिलं क्रामति से प्रतीत नहीं होता है कुटिलं क्रामति इस वाक्य के कहने से संशय होता है कि गति का कौटिल्य है या मन का और चङ्क्रम्यते से तो असंशय ही गति कौटिल्य अर्थ प्रतीत होता है । तो चङ्क्रम्यते के अर्थ का अभिधान न होने से ही कुटिलं क्रामति वाक्य का प्रयोग नहीं होगा अर्थात् नित्य ही प्रत्यय होगा । फिर भी नित्य ग्रहण विषय के नियम के लिये है कि गतिवचन से यङ् प्रत्यय नित्य कौटिल्य में ही होता है क्रियासमभिहार में नहीं । जिस कारण भृशं क्रामति उदाहरण में पूर्व सूत्र से क्रियासमभिहार अर्थ में गतिवचन क्रमु धातु से यङ् प्राप्त था, नियम के कारण नहीं हुआ ।

लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्[157]

अर्थ- लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ धातुओं से भावगर्हा = धात्वर्थगर्हा में यङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। गर्हितं लुम्पति= लोलुप्यते । सासद्यते । चञ्चूर्यते । जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दन्दश्यते । निजेगिल्यते । प्रकृत सूत्र में भी नित्य ग्रहण का विषय नियम प्रयोजन जानना चाहिये कि इन धातुओं से यङ् प्रत्यय नित्य भावगर्हा में ही होता है क्रियासमभिहार में नहीं- भृशं लुम्पति । यहाँ लुप् धातु से क्रियासमभिहार में यङ् प्रत्यय नहीं हुआ ।

भावगर्हा पद विचार

भाव = धात्वर्थ की गर्हा अर्थात् निन्दा होने पर ही यङ् प्रत्यय होगा । साधु जपति इत्यादि उदाहरणों में जपन धात्वर्थ की निन्दा गम्यमान नहीं हो रही है इसलिये यहाँ यङ् नहीं हुआ ।

भाव पद विचार

जब भाव = धात्वर्थ की ही निन्दा हो तभी यङ् होगा यदि किसी अन्य की निन्दा हुई तो नहीं होगा- मन्त्रं जपति वृषलः । यहाँ जप धात्वर्थ की निन्दा नहीं है बल्कि साधनरूपी वृषल की है।

---

[156] अष्टाध्यायी- 3.1.23

[157] अष्टाध्यायी- 3.1.24

यक् प्रत्यय

कण्ड्वादिभ्यो यक्[158]

अर्थ - कण्डूय् इत्यादि से यक् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)।

कण्डूञ्= कण्डूयति, कण्डूयते । ञित् होने से जब क्रिया का फल कर्त्ता को अभिप्रेत होगा तब आत्मनेपद हो जायेगा । इसी प्रकार अन्य धातुओं से भी जानना चाहिये ।

कण्ड्वादि का धातुत्व अधातुत्व विचार

कण्ड्वादि दो प्रकार के होते हैं –

I. धातु ।
II. प्रातिपदिक ।

इन दोनों में से कौन सा ग्रहण करना यहाँ उपयुक्त है इस विचारणा में प्रतिपदिक मानने पर प्रश्नकर्त्ता दोष उपस्थित करता है- कण्ड्वादि को प्रातिपदिक मानने पर यक् में कित्करण क्यों किया? गुणवृद्धि प्रतिषेध के लिये किया गया है ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे रहते अङ्ग को गुण कहा है और आर्धधातुक संज्ञा के लिये यक् धातु से विहित होना चाहिये । लेकिन यक् तो प्रातिपदिक से विहित है । अतः कित्करण का गुणवृद्धि प्रतिषेध प्रयोजन नहीं हो सकता है ।

दूसरा दोष कहते हैं कि कण्ड्वादि से यक् प्रत्यय विकल्प से कहना चाहिये अर्थात् नित्य न हो । यदि नित्य करेंगे तो सभी इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो पाते हैं । नित्य करने पर कण्डूय से क्विप् करने पर अतो लोपः और यस्य हलः सूत्र से अकार और यकार का लोप होने से कण्डूः इत्यादि तो सिद्ध हो जायेंगे परन्तु निम्न दोष उपस्थित होते हैं -

I. कण्ड्वौ, कण्ड्वः में कण्डूय से क्विप् करने पर अतो लोपः और यस्य हलः सूत्र से अकार और यकार का लोप होने पर सूत्र से इयङुवङ्[159] आदेश प्राप्त होने लगते हैं ।
II. कण्ड्वा, कण्ड्वे इत्यादि उदाहरणों मे कण्ड्वा इत्यादि में उदात्त व् से परे तृतीयादि विभक्ति को उदात्त प्राप्त नहीं हो पाता है ।

---

[158] अष्टाध्यायी- 3.1.27

[159] अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ –अष्टाध्यायी-6.4.77

III. वल्गुः, मन्तुः में तुक्[160] प्राप्त होने लगता है उसका प्रतिषेध करना चाहिये ।

IV. वल्गुः, मन्तुः में ह्रस्व भी कहना चाहिये क्योंकि अकृत्सार्वधाकयोर्दीर्घः सूत्र से विहित दीर्घ अन्तरङ्ग होने से पहले प्राप्त होता है ।

V. कण्डूः, मन्तुः इत्यादि में यलोप भी कहना चाहिये क्योंकि परत्व और नित्यत्व के हेतु से पहले क्विप् का लोप होता है । यलोप होने पर, परे वल् न मिलने से लोपो व्योर्वलि सूत्र से य का लोप नहीं हो पाता है और प्रत्ययलक्षण से भी परे वल् नहीं मिल सकता है क्योंकि वर्ण के आश्रित प्रत्ययलक्षण नहीं होता है[161] । यलोप कार्य वर्णाश्रय कार्य है अतः यहाँ प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं हो सकता है ।

VI. वावचन करने पर यक् प्रत्यय नित्य नहीं होगा । जब यक् प्रत्यय होगा तब उस यगन्त से अन्येभ्योऽपि दृश्यते सूत्र से क्विप् प्रत्यय नहीं होगा क्योंकि अन्येभ्योऽपि दृश्यते कर्त्ता में क्विप् प्रत्यय करता है और कण्डूः शब्द से कर्त्रर्थ की प्रतीति नहीं होती है और जब यक् नहीं होगा तब इन शब्दों को संपदादि में मानकर भाव में क्विप् करके कण्डूः इत्यादि रूप सिद्ध हो जायेंगे ।

VII. वावचन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कण्ड्वादि धातु भी होते हैं और प्रातिपदिक भी । धातुपाठ में कण्ड्वादिगण पढा हुआ है तो यक् प्रत्यय की उत्पत्ति प्रातिपदिक से न होकर धातु से ही होगी क्योंकि क्रिया करते हुए व्यक्ति के लिये ही कण्डूयति प्रयोग किया जाता है । कण्डूः इत्यादि की सिद्धि प्रातिपदिक कण्डू से स्वार्थ में स्वाद्युत्पत्ति करके हो जायेगी ।

कारिका - धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासञ्ज्ञनादपि ।

आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥

अर्थ- धातु प्रकरण में पठित होने के कारण कण्ड्वादि को भी धातु ही मानना चाहिये । यक् प्रत्यय में जो ककार अनुबन्ध किया है उससे भी कण्ड्वादि का धातुत्व ही स्थित होता है । अनुबन्धकरण का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है यदि हम कण्ड्वादि को प्रातिपदिक मानेंगे तो गुणवृद्धि प्रतिषेध प्रयोजन जो ककार अनुबन्ध का हो सकता था वो नहीं हो पायेगा क्योंकि गुणवृद्धि प्रतिषेध प्रयोजन धातु में ही सम्भव हो सकता है । धातुपाठ में कण्ड्वादि को कण्डूञ् ऐसा दीर्घ करके जो पढा है उससे पता चलता है कि कण्ड्वादि का धातुत्व विकल्प से होता है अर्थात् कण्ड्वादि धातु भी होते हैं और प्रातिपदिक भी । यदि कण्ड्वादि का नित्य ही धातुत्व होता तो यक् के नित्य होने पर

---

[160] ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्–अष्टाध्यायी-6.1.71

[161] वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्- पारिभाषिक

अकृत्सार्वधाकयोर्दीर्घः सूत्र से दीर्घ होने पर दीर्घत्व वैसे ही सिद्ध था, धातुपाठ में दीर्घ पढना अनर्थक है। लेकिन पाणिनि जी देख रहे हैं कि कण्ड्वादि धातु भी होते हैं और प्रातिपदिक भी। तो प्रातिपदिक पक्ष में यक् प्रत्यय न होने से उस अयगन्त से क्विबादि प्रत्यय होने पर कण्डूः में दीर्घ श्रवण के लिये धातुपाठ में दीर्घोच्चारण सार्थक होता है।

आय प्रत्यय-

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः[162]

अर्थ - गुपू रक्षणे, धूप सन्तापे, विच्छ गतौ, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च इन सभी धातुओं से आय प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। गोपायति। धूपयति। विच्छायति। पणायति। पनायति। पन धातु स्तुत्यर्थ वाली है तो उसके साहचर्य से पण धातु का भी स्तुत्यर्थ ही लेना चाहिये न कि व्यवहार। व्यवहार अर्थ में तो शतस्य पणते। सहस्रस्य पणते रूप ही बनेंगे। पण धातु धातुपाठ में अनुदात्तेत् पढी हुई है तो अनुदात्तङित आत्मनेपदम् सूत्र से आयप्रत्ययान्त पणाय धातु से भी आत्मनेपद होना चाहिये था। आयप्रत्ययान्त पणाय धातु से भी आत्मनेपद तभी हो सकता है जब पण धातु में अनुदात्तकरण चरितार्थ नहीं हो रहा हो लेकिन अनुदात्तकरण तो केवल पण धातु से आत्मनेपद करने में चरितार्थ हो चुका है - पणते। तो अब वो आयप्रत्ययान्त पणाय धातु को विशेषित नहीं करेगा अतः सामान्य रूप से परस्मैपद ही होगा।

ईयङ् प्रत्यय-

ऋतेरीयङ्[163]

अर्थ- ऋति ये सौत्र धातु घृणा अर्थ में वर्त्तमान है इससे ईयङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। ङ्कार आत्मनेपद के लिये है - ऋतीयते, ऋतीयेते, ऋतीयन्ते।

प्रश्नकर्त्ता कहता है कि सूत्र में ईयङ् प्रत्यय न कहकर लाघवार्थ छङ् प्रत्यय कह देते और छ् के प्रत्ययादि होने से आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् सूत्र से ईय् होकर इष्ट सिद्ध हो जायेगा। यद्यपि परत्व के हेतु से आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से इडागम होने पर छ् प्रत्यय के आदि में नहीं मिलेगा लेकिन ईय् आदेश अन्तरङ्ग होने से इडागम से पहले ही हो जायेगा क्योंकि आयनादि

---

[162] अष्टाध्यायी- 3.1.28

[163] अष्टाध्यायी- 3.1.29

आदेश उपदेश में ही हो जाते हैं। तो छङ् प्रत्यय कहने से भी इष्ट सिद्ध हो रहा था फिर भी ईयङ् कहा है तो पाणिनि ज्ञापित करते हैं कि धातु प्रत्ययों को आयनादि आदेश नहीं होते हैं अतः शम् धातु से ढ प्रत्यय करने पर शण्ढः इत्यादि रूप सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये प्रकृत सूत्र मे ईयङ् ही पढना चाहिये क्योंकि अब आयनादि अन्तरङ्ग नहीं है तो परत्व से इडागम ही होगा जिससे छ् प्रत्यय के आदि में नहीं मिलेगा।

3. धातु तथा सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय

इस श्रेणी में णिच् तथा णिङ् प्रत्यय आते हैं वैसे तो सभी धातुओं से णिच् प्रत्यय सामान्यरूप से हो जाता है परन्तु कुछ सुबन्त शब्दों से भी णिच् प्रत्यय कहा जाता है जिस कारण इसे इस श्रेणी में रखना पडता है। इसी प्रकार णिङ् प्रत्यय भी केवल एक धातु से ही कहा गया है और केवल कुछ सुबन्तों से कहा गया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

णिङ् प्रत्यय-

कमेर्णिङ्[164]

अर्थ - कम् धातु से णिङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। कामयते। कामयेते। कामयन्ते।

णित्करण विचार –

णित्करण का सामान्य रूप से वृद्धि कार्य करना ही प्रयोजन लगता है लेकिन यहाँ णकार करने पर भी वृद्धि प्राप्त नहीं हो पाती है क्योंकि णिङ् प्रत्यय में ङ्कार भी किया हुआ है तो क्ङिति च सूत्र से वृद्धि का निषेध हो जायेगा। णित्करण णेरनिटि सूत्र में णिङ् का भी ग्रहण हो जाये इस प्रयोजन के लिये सावकाश है और ङित्करण आत्मनेपद के लिये सावकाश है तो दोनों के सावकाश होने पर प्रतिषेध चूंकि विधि से बलवान् होता है इसलिये वृद्धि का प्रतिषेध प्राप्त होता है। कोई यदि यह कहे कि कम् धातु की मित्संज्ञा[165] का जो प्रतिषेध किया गया है उससे पता चलता है कि कम् धातु से वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है। मित्वनिषेध का यही प्रयोजन है कि यहाँ ह्रस्व[166] न हो। यदि ङित्करण से वृद्धि का अभाव हो जाये तो ह्रस्व स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त होगा। तो जब वृद्धि ही नहीं है तो न कम्यमिचमां से मित्व का निषेध करना व्यर्थ प्रतीत होता है लेकिन आचार्य

---

[164] अष्टाध्यायी- 3.1.30

[165] न कम्यमिचमां (धातुपाठ)

[166] मितां ह्रस्व- अष्टाध्यायी- 6.4.92

देख रहे हैं कि कम् धातु को वृद्धि का निषेध नहीं होता है तदर्थ मित्व का निषेध करना सार्थक होता है। ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि ज्ञापक तभी बन सकता है जब कोई भी प्रयोजन सिद्ध न हो रहा हो। आयादय आर्धधातुके वा सूत्र से णिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है तो जिस पक्ष मे णिङ् नहीं होगा उस पक्ष मे जब णिच् करेंगे तो उस स्थिति में प्राप्त वृद्धि के लिये न कम्यमिचमां से मित्प्रतिषेध करना सार्थक होता है। (णिच् के ङित् न होने से वृद्धि निषेध के लिये यहाँ क्ङिति च सूत्र की प्राप्ति नहीं है) अब समाधाता कहता है कि क्ङिति च सूत्र वहीं पर गुणवृद्धि का निषेध करता है जहाँ इको गुणवृद्धी सूत्र से इक् पद उपस्थित होकर गुणवृद्धि का विधान किया जाता है लेकिन यहाँ पर वृद्धि इक् को न होकर कम् के अ को प्राप्त है। जिस कारण यहाँ क्ङिति च सूत्र की प्राप्ति नहीं है। अतः णित्करण वृद्धि के लिये ही है।

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्[167]

पुच्छ, भाण्ड तथा चीवर इन शब्दों से णिङ् प्रत्यय कहा है करण विशेष में। (विद्यावारिधि, 1997)

पुच्छ शब्द से उत्क्षेपण, परिक्षेपण अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है (मेधार्थी, 1993) उत्पुच्छयते, परिपुच्छयते। भाण्ड शब्द से समाचयन= राशिकरण (इकठ्ठा करना) अर्थ में णिङ् कहना चाहिये (मेधार्थी, 1993) भाण्डानि समाचिनोति= सम्भाण्डयते।

चीवर शब्द से भी अर्जन= द्रव्यलोभोपाय, याञ्चादि, परिधान=आच्छादन अर्थ में भी णिङ् प्रत्यय कहा जाता है चीवरमर्जति परिदधाति वा= चीवरयते। संचीवरयते भिक्षुः। ङित् करण से आत्मनेपद सिद्ध ही है।

णिच् प्रत्यय-

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्[168]

अर्थ- मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त इन प्रातिपदिकों से करोत्यर्थ मे णिच् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)।

उदाहरण- मुण्डं करोति= मुण्डयति। मिश्रयति। श्लक्ष्णयति। लवणयति। व्रतयति। संवस्त्रयति। हलिं= गृह्णाति हलयति। कलिं गृह्णाति= कलयति। तूस्तानि विहन्ति= वितूस्तयति केशान्।

---

[167] अष्टाध्यायी- 3.1.20

[168] अष्टाध्यायी- 3.1.21

हलिकलि शब्द का इकारान्तत्व विचार

प्रयोग में इकारान्त हलि, कलि शब्द भी मिलते हैं और अकारन्त हल, कल भी तो यहाँ पर कौन से ग्रहण करने उपयुक्त हैं। सन्वद्भाव का प्रतिषेध करने के लिये हलि, कलि इकारान्त शब्दों का ही ग्रहण करना चाहिये और उनको अत्व निपातन से कर देंगे। यदि अकारान्त हल, कल का ग्रहण करेंगे तो हल, कल से चङ् करने पर सूत्र से सन्वद्भाव[169] प्राप्त होता है जिससे अभ्यास को इत्व[170] होकर अजीहलत्, अचीकलत् अनिष्ट रूप बनने लगेंगे और इष्ट है कि सन्वद्भाव न होकर अजहलत्, अचकलत् रूप बनें। यदि हम सूत्र में केवल हलि, कलि इकारन्त ही पढते हैं और उनको अत्व निपातन नहीं करते हैं तो भी सन्वद्भाव का प्रतिषेध न होने से अजहलत्, अचकलत् रूप नहीं बन पायेगा सन्वद्भाव का प्रतिषेध न होने से। वैसे हलि, कलि के इकार का भी वार्तिक[171] से इष्ठवद्भाव होने से टि भाग 'इ' का लोप होने पर अग्लोपित्व हो जाता है लेकिन टि लोप होने से पहले ही अचो ञ्णिति सूत्र से इ को वृद्धि ऐ हो जायेगी और ऐ चूंकि अक् प्रत्याहार में नहीं आता है तो उसका लोप हो भी जायेगा तो भी वह अग्लोपी नहीं बन पायेगा। वृद्धि और टिलोप दोनों की सम्प्रधारणा में परत्व के हेतु से वृद्धि ही प्राप्त होती है। लोप नित्य है क्योंकि वह वृद्धि के करने पर भी प्राप्त होता है और न करने पर भी परन्तु वृद्धि करने पर लोप ऐ को प्राप्त होता है और न करने पर इ को। तो शब्दान्तर को प्राप्त विधि अनित्य[172] होती है। वृद्धि भी अनित्य है क्योंकि टिलोप करने पर उपधा[173] अकार को प्राप्त होती है और न करने पर इ[174] को, तो शब्दान्तर प्राप्ति होने के कारण वृद्धि भी अनित्य है। दोनों के अनित्य होने पर परत्व के हेतु से वृद्धि ही प्राप्त होगी टिलोप नहीं हो पायेगा इस कारण अग्लोपी न बन पाने से सन्वद्भाव प्राप्त होने लगता है तदर्थ अत्वनिपातन करना चाहिये। यद्यपि अत्व करने पर भी वृद्धि और टिलोप दोनों प्राप्त होते हैं। यहाँ भी परत्व से वृद्धि ही होती है लेकिन 'अ' को 'आ' वृद्धि होने पर जब 'आ' का लोप करेंगे तो भी वह अग्लोपी ही होगा और अग्लोपी होने से सन्वद्भाव का प्रतिषेध हो जायेगा। इसलिये हलि, कलि

---

[169] सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे- अष्टाध्यायी- 7.4.93

[170] सन्यतः - अष्टाध्यायी- 7.4.79

[171] णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य - वा.

[172] एकदेशविकृतस्यानन्यत्वान्न शब्दान्तरप्राप्तिरिति

[173] अतः उपधायाः- अष्टाध्यायी- 7.2.116

[174] अचो ञ्णिति- अष्टाध्यायी- 7.2.115

शब्द को अत्व निपातन कहना चाहिये।

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्[175]

अर्थ - सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि से णिच् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। सत्यमाचष्टे= सत्यापयति ।

वार्तिक- अर्थवेदसत्यानामापुग् वक्तव्यः

अर्थ, वेद और सत्य शब्दों से आपुगागम कहना चाहिये । इस वार्तिक से सत्य से आपुक् का आगम होकर ही सत्यापयति बना और इसी प्रकार अर्थापयति, देवापयति बनेगा । णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य से अर्थादि प्रातिपदिकों को इष्ठन्वद्भाव होने से टिलोप होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होने लगता है । परन्तु आपुक् वचन सामर्थ्य से टिलोप नहीं होगा ।

पाश शब्द से विमोचन अर्थ में पाशयति बनेगा । रूप शब्द से दर्शन अर्थ में रूपयति बनेगा । वीणया उपगायति= उपवीणयति । तूलेन अनुकृष्णाति= अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति= उपश्लोकयति । सेनया अभियाति= अभिषेणयति । लोमानि अनुमार्ष्टि= अनुलोमयति । त्वचं गृह्णाति= त्वचयति । यहाँ अकारन्त त्वच शब्द का ग्रहण किया गया है जो हलन्त त्वच् शब्द के समानार्थक है । जिससे त्वच के टिभाग 'अ' का लोप होने पर भी अतः उपधायाः से उपधा अकार को वृद्धि प्राप्त नहीं होगी क्योंकि पूर्वविधि (उपधा अकार को वृद्धि) में लोप आदेश स्थानिवत् हो जायेगा तो उपधा में अकार न मिलने से वृद्धि नहीं होगी ।

वर्मणा सन्नह्यति= संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति= वर्णयति । चूर्णैः अवध्वंसयति= अवचूर्णयति ।

चुरादि धातुओं से स्वार्थ मे णिच् प्रत्यय होगा । चोरयति । चिन्तयति । शब्दों के द्वारा अर्थ का अभिधान स्वाभाविक है न कि वाचनिक ऐसा हम पहले भी विचार कर चुके हैं । तो स्वभाव से जो जिस अर्थ का अभिधायक है उस-उस अर्थ में सूत्र से णिच् प्रत्यय हो जायेगा ।

हेतुमति च

अर्थ- कर्त्ता[176] के प्रयोजक[177] को हेतु कहते हैं ।उसप्रयोजक का जो व्यापार प्रेषण, अध्येषण इत्यादि

---

[175] - अष्टाध्यायी- 3.1.25

[176] स्वतन्त्रः कर्त्ता- अष्टाध्यायी-4.1.54

उसे हेतुमान् कहते हैं[178]। उस प्रेषणादि के अभिधेय होने पर धातुमात्र से णिच् प्रत्यय होता है । प्रेषण, अध्येषण इत्यादि व्यापार पाकादि मुख्य व्यापार के अन्तर्गत ही आते हैं । पुनरपि पाकादि मुख्य व्यापार की अपेक्षा उसका हेतुत्व नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह व्यापार तो णिच् की प्रकृति धातु के द्वारा ही कह दिया गया है । अब णिजन्त के द्वारा भी उस अर्थ को कहने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

हेतुमति पदका विशेषणत्व निर्धारण-

हेतुमति पद को वाक्य में दो प्रकार से अन्वित किया जा सकता है- 1. प्रकृत्यर्थ विशेषण के रूप में- हेतुमान् अर्थ में जो धातु वर्त्तमान है उससे णिच् प्रत्यय होता है । 2. प्रत्ययार्थ विशेषण के रूप में- हेतुमान् अभिधेय होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है । दोनो पक्षों पर विचार किया जाता है-

प्रकृत्यर्थ विशेषण स्वीकार करने पर निम्न दोष उपस्थित होते हैं- 1. उक्तः करोति, प्रेषितः करोति इत्यादि उदाहरणों में णिच् प्राप्त होता है । प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष में जैसे प्रकृति के द्वारा प्रयोजक का व्यापार हेतुमान् कह दिये जाने पर णिच् हो जाता है वैसे यहाँ पर भी उक्त प्रेषित इत्यादि शब्दों के द्वारा भी प्रयोजक का व्यापार हेतुमान् कह दिये जाने पर णिच् हो जायेगा । प्रत्ययार्थ पक्ष में तो दोष नहीं आयेगा क्योंकि हेतुमान् कहने के लिये णिच् आता है यदि वह व्यापार किसी अन्य के द्वारा कह दिया जायेगा तो पुनः उसे कहने के लिये णिच् नहीं आ सकता है[179] । समाधाता कहता है कि जिस अर्थ को द्योतित करने के लिये आप णिच् लाना चाह रहे हैं वह यदि किसी दूसरे शब्द के द्वारा बोधित हो जाये तो प्रयोजन का अभाव होने से णिच् नहीं होगा क्योंकि जहाँ शब्द के बिना अर्थ की गति नहीं हो रही है वहाँ उस अर्थ का बोध करवाने के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है । जहाँ शब्द के बिना भी अर्थ की गति हो रही है वहाँ शब्द का प्रयोग नहीं किया जायेगा । अतः उक्तः करोति, प्रेषितः करोति इत्यादि उदाहरणों में भी णिच् शब्द करे बिना भी प्रेषण आदि अर्थ की उक्तः इत्यादि के द्वारा हो रही थी तो णिच् का प्रयोग नहीं होगा ।

2. पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन इस उदाहरण में प्रयोजक कर्ता (देवदत्त) और प्रयोज्य कर्त्ता (यज्ञदत्त) दोनों का लकार के द्वारा अभिधान हो रहा है तो अभिहिते प्रथमा से दोनों में प्रथमा विभक्ति प्राप्त होने लगती है । प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष में धातु ही प्रयोजक कर्ता के व्यापार प्रेषण

---

[177] तत्प्रयोजको हेतुश्च- अष्टाध्यायी-4.1.55

[178] हेतुरस्यास्ति प्रेषणादेः हेतुमत्

[179] उक्तार्थानामप्रयोगः

आदि को और प्रयोज्य कर्त्ता के व्यापार पाकादि को कह रही है तो धातु से विहित लकार दोनों ही कर्ताओं को कहेंगे। प्रत्ययार्थ विशेषण पक्ष में पच् धातु प्रयोज्य कर्त्ता के व्यापार पाकादि को कहती है और णिजन्त पाचय धातु प्रयोजक कर्ता के व्यापार प्रेषण आदि को। और पाचय में णिजर्थ की प्रधानता होने के कारण तदभिहित प्रयोजक कर्ता भी प्रधान होगा। लादि प्रत्यय प्रधान कर्त्ता में ही होते हैं तो लकार के द्वारा प्रधान कर्त्ता का ही अभिधान होगा और अप्रधान कर्त्ता में कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया विभक्ति सिद्ध हो जायेगी। इस प्रकार प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष में यह दोष बना रहता है।

3. गमितो ग्रामं देवदत्तो यज्ञदत्तेन उदाहरण में प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष में गम् धातु के द्वारा अभिहित गत्यर्थ और प्रेषणादि अर्थ अलग नहीं हो पा रहे हैं क्योंकि प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष में प्रेषणादि अर्थ को भी धातु ही कहती है। गत्यर्थानां कर्तरि क्तः[180] सूत्र से गत्यर्थक धातुओं से क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है तो यहाँ पर भी प्रयोजक कर्त्ता में क्त प्रत्यय होने लगेगा। जिससे प्रयोजक कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति प्राप्त होने लगती है।

4. व्यतिभेदयन्ते, व्यतिच्छेदयन्ते इत्यादि उदाहरणों में हिंसार्थ के अलग न होने से न गतिहिंसार्थेभ्यः सूत्र से आत्मनेपद का प्रतिषेध प्राप्त होने लगता है।

यद्यपि प्रदीपकार ने इन सभी दोषों को समाहृत करके प्रकृत्यर्थ विशेषण पक्ष को भी सिद्धान्त रूप में स्थापित किया है परन्तु महाभाष्यकार ने इन सभी दोषों का समाधान नहीं दिया है। प्रदीप ने निम्न समाधान दिये हैं-

I. पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन उदाहरण में दोष का परिहार करते हुए प्रदीप कहता है कि पाचय प्रकृति के द्वारा ऐसे प्रयोजक व्यापार को कहा जाता है जिसके प्रति प्रयोज्य व्यापार गौण हो गया है अर्थात् धातु कहेगी तो दोनों ही व्यापारों को लेकिन प्रयोजक व्यापार के प्रति प्रयोज्य व्यापार गौण होगा और लादि प्रत्यय प्रधान कर्त्ता में होते हैं तो पाचयति में तिप् प्रत्यय प्रधान प्रयोजक कर्ता को ही कहेगा न कि अप्रधान प्रयोज्य कर्त्ता को। अतः कोई दोष नहीं आयेगा।

II. गमितो ग्रामं देवदत्तो यज्ञदत्तेन उदाहरण में भी णिच् के द्वारा अभिहित प्रेषणादि व्यापार ने प्रधानभूत गत्यर्थ को निवृत्त कर दिया है और णिजन्त गमि धातु गमन से रहित प्रेषणादि प्रधान व्यापार को कहती है तो णिजन्त गमि धातु से गत्यर्थक मानकर कर्त्ता में क्त प्रत्यय

[180] गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च-अष्टाध्यायी- 3.4.72

प्राप्त नहीं होगा । इसी प्रकार व्यतिभेदयन्ते, व्यतिच्छेदयन्ते इत्यादि उदाहरणों में भी समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं । यहाँ पर भी प्रधान धात्वर्थ णिजर्थ युक्त हिंसना है न कि हिंसा । तो हिंसा अर्थ का आश्रय करके न गतिहिंसार्थेभ्यः सूत्र से आत्मनेपद का प्रतिषेध नहीं होगा ।

प्रत्ययार्थ विशेषण स्वीकार करने पर प्राप्त दोष-

1. पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन यहाँ प्रयोज्य कर्त्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त होती है । जिससे प्रयोज्य कर्त्ता से तृतीया न होकर कर्मणि द्वितीया सूत्र से द्वितीया होने लगेगी । कर्तुरीप्सिततमं कर्म सूत्र से कर्त्ता क्रिया के द्वारा जिसको सबसे अधिक चाहता है उसकी कर्म सञ्ज्ञा होती है । यहाँ पर भी प्रयोजक कर्त्ता अपने प्रेषणादि व्यापार के द्वारा प्रयोज्य कर्त्ता को सबसे अधिक चाहता है । अतः उसकी कर्म संज्ञा प्राप्त होने लगती है ।

2. ग्रामं गमयति, ग्रामाय गमयति उदाहरणों में णिजर्थ ने गत्यर्थ को अलग कर दिया अर्थात् णिजन्त गमि धातु अब प्रेषणादि अर्थ को ही कहती है न कि गत्यर्थ को, तो गत्यर्थ को आश्रित करके गत्यर्थकर्मणि.. सूत्र से जो हम द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति चाहते हैं वे नहीं हो पायेंगी ।

3. एधोदकस्योपस्कारयति इत्यादि उदाहरणों में करोत्यर्थ व्यतिरिक्त होने से उस करोत्यर्थ को आश्रित करके कृजः प्रतियत्ने सूत्र से षष्ठी विभक्ति नहीं हो पायेगी ।

4. भेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठानाम् उदाहरण में कर्तृकर्मणोः कृति सूत्र से प्रयोज्य कर्त्ता से षष्ठी विभक्ति प्राप्त नहीं होती है । कर्तृकर्मणोः कृति सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्रधान कर्त्ता और कर्म में प्राप्त होती है और यहाँ पर णिजर्थ की प्रधानता होने से प्रयोजक कर्त्ता में ही षष्ठी विभक्ति प्राप्त हो सकती है प्रयोज्य कर्त्ता से नहीं ।

5. अभिषावयति, परिषावयति में णिजन्त के द्वारा सुनोति धातु का अर्थ अलग कर दिये जाने के कारण षत्व[181] प्राप्त नहीं हो पायेगा । उपसर्ग णिजन्त सावि धातु को ही विशेषित करेगा न कि सुनोति को ।

भाष्यकार इन सब दोषों के समाधान प्रस्तुत करते हुए कहता है कि पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन यहाँ प्रयोज्य कर्त्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त नहीं होगी क्योंकि प्रत्ययार्थ विशेषण पक्ष मानने पर

[181] उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्-अष्टाध्यायी-8.3.65

सभी ण्यन्त धातुओं के कर्त्ता की णि के परे रहते कर्म संज्ञा हो जायेगी तो गतिबुद्धि०... सूत्र पढना व्यर्थ हो जायेगा । तो प्रत्ययार्थ विशेषण पक्ष का आश्रय करने पर ही गतिबुद्धि०... सूत्र पठित धातुओं के कर्त्ता की णि के परे रहते कर्म संज्ञा सिद्ध हो रही है पुनरपि सूत्र का आरम्भ नियमार्थ हो जायेगा कि इन्ही धातुओं के कर्त्ता की णि के परे रहते कर्म संज्ञा हो अन्य की नहीं । अतः पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेन यहाँ प्रयोज्य कर्त्ता की कर्म सञ्ज्ञा प्राप्त नहीं होगी ।

ग्रामं गमयति, ग्रामाय गमयति इत्यादि उदाहरणों में भी दोष नहीं आयेगा क्योंकि यहाँ साधन रहित क्रिया को प्रेषित नहीं किया जा रहा है बल्कि साधनविशिष्ट क्रिया को । यदि साधन रहित क्रिया को प्रेषित किया जाता तो दोष आता । केवल गम् का प्रेषण करने पर णिजन्त गमि धातु बन जायेगी, अब उसका सम्बन्ध ग्राम से करेंगे तो गमि धातु गत्यर्थक न होने से गत्यर्थकर्मणि०.. सूत्र से जो हम द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति चाहते हैं वे नहीं हो पायेंगी । परन्तु यदि हम साधनविशिष्ट क्रिया को प्रेषित करेंगे तो ग्राम का सम्बन्ध गत्यर्थक गम् धातु से ही होगा तो गत्यर्थकर्मणि.. सूत्र से जो हम द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति चाहते हैं वे हो जायेगी । इसी प्रकार एधोदकस्योपस्कारयति इत्यादि में भी जानना चाहिये । यहाँ पर भी साधनविशिष्ट क्रिया को ही प्रेषित करेंगे ।

भेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठानाम् उदाहरण में कर्तृकर्मणोः कृति सूत्र से प्रयोज्य कर्त्ता से षष्ठी विभक्ति प्राप्त हो जायेगी क्योंकि कर्तृकर्मणोः कृति सूत्र में कृत ग्रहण का प्रयोजन कहा है कि भूतपूर्व कर्त्ता (गौण कर्त्ता- प्रयोज्य कर्त्ता) से भी षष्ठी विभक्ति प्राप्त हो जाये । तो यहाँ पर भी प्रयोज्य कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति प्राप्त हो जायेगी ।

अभिषावयति, परिषावयति में केवल सुनोति क्रिया को प्रेषित नहीं करते हैं बल्कि उपसर्ग विशिष्ट सुनोति को अभिषुणु इति । तो जब सुनोति का उपसर्ग से सम्बन्ध होगा तो उपसर्गात्सुनोतिसुवति..... सूत्र से षत्व प्राप्त हो जायेगा ।

अन्ततोगत्वा प्रकृत्यर्थ विशेषण और प्रत्ययार्थ विशेषण दोनों ही पक्ष स्थापित रहे । लेकिन भाष्यकार ने प्रत्यक्ष रूप से प्रत्ययार्थ विशेषण को ही स्थापित किया है ।

हेतु शब्द अर्थ निर्धारण

हेतु शब्द का अर्थ पारिभाषिक ही लेना चाहिये तत्प्रयोजको हेतुश्च इति । प्रेषण और अध्येषण इत्यादि चेतन में ही होता है ऐसा नहीं है । समर्थाचरण भी प्रयोजक का व्यापार होता है अर्थात् किसी कार्य को करवाने में समर्थ होना । तेन भिक्षा वासयति, कारीषोऽग्निर्ध्यापयति इत्यादि

उदाहरणों में भी पारिभाषिक हेत्वर्थ में णिच् प्रत्यय हो जायेगा । भिक्षा और कारीष अग्नि होने पर ही प्रयोज्य कर्त्ता की रहना और पढना क्रिया की सिद्धि हो पाती है । इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि इहोष्यताम् ऐसा कहने पर ही प्रयोजकत्व सम्भव हो बल्कि चुपचाप रहता हुआ भी कोई यदि रहने के हेतु के रूप में समर्थ किसी वस्तु को स्थित करता है तो वह वस्तु भी उस वास का प्रयोजक कहलायेगी । प्रश्नकर्त्ता पारिभाषिक हेतु ग्रहण पक्ष में दोष उपस्थापित करता है और समाधाता उनका समाधान प्रस्तुत करता है

कोई किसी को कहता है- पृच्छतु मा भवान्, अनुयुङ्क्तां मा भवान् यहाँ प्रेषण होने पर णिच् क्यों नहीं होता है? समाधाता कहता है कि कर्ता के प्रयोजक को हेतु कहा है । तो उसमें यदि कर्तृत्व होगा तभी णिच् हो पायेगा । यहाँ तो यह पूछ ही नहीं रहा है चुपचाप बैठा है । यदि कोई ऐसा कहे कि जब ये कर्त्ता नहीं है तो कर्तृप्रत्यय लोट् के द्वारा इसका अभिधान कैसे हो गया? ऐसा उचित नहीं है क्योंकि कर्तृत्वरहित द्रव्य मात्र के प्रेषण में पृच्छादि धातुओं से लोट् प्रत्यय होता है[182] अर्थात् जब लोट् प्रत्यय होगा तब उसमे कर्तृत्व नहीं है प्रेषण के द्वारा पृच्छादि क्रिया का कर्त्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है- कर्त्ता अस्या क्रियाया भव इति । जब प्रेषण सहित का प्रयोग किया जायेगा तब वह णिच् का विषय बनेगा । इसलिये पृच्छतु मा भवान्, अनुयुङ्क्तां मा भवान् में कर्तृत्व न होने से प्रयोजकत्व नहीं बनेगा और णिच् नहीं हो पायेगा ।

अथवा उक्तार्थानामप्रयोगः । यदि हम कर्तृत्व स्वीकार भी कर लें तो भी यहाँ पर णिच् प्रत्यय नहीं हो पायेगा क्योंकि जब लोट् ने ही प्रैष अर्थ को कह दिया तो अब पुनः प्रैष को कहने के लिये णिच् प्रत्यय नहीं होगा ।

2. कृष्यादिषु चानुत्पत्तिः - कोई व्यक्ति जो स्वयं कर्षण (खेती करना) नहीं कर रहा है एकान्त में चुपचाप बैठा है उसके लिये पञ्चभिर्हलैः कृषति ऐसा प्रयोग चाहते हैं । वो कोई भी व्यापार नहीं कर रहा है लेकिन कर्षण हो रहा है तो ऐसा समझा जायेगा कि वह किसी दूसरे से करवा रहा है । तो कृषति प्रयोग न होकर कर्षयति प्राप्त होगा । उसका निषेध कहना चाहिये । समाधाता कहता है कि कृष धातु केवल विलेखन (जोतना) अर्थ में वर्तमान नहीं है बल्कि प्रतिविधान (खाना, बीज और बैल इत्यादि के द्वारा कृषि की व्यवस्था करना) अर्थ में भी वर्तमान है । क्योंकि जिस दिन वो उनका प्रतिविधान नहीं करता है अर्थात् खाना, बीज और बैल इत्यादि के द्वारा कृषि की व्यवस्था नहीं

[182] द्रव्यमात्रस्य तु प्रैषे पृच्छादेर्लोड् विधीयते । सक्रियस्य प्रयोगस्तु यदा स विषयो णिच- वाक्यपदीयम्

करता है उस दिन कोई काम नहीं होता है। तो यहाँ पर कृष धातु प्रतिविधान अर्थ में ही वर्तमान है। अतः कोई दोष नहीं आयेगा।

3. यज्यादिषु चाविपर्यासः। यज् धातु प्रक्षेपविशेष अर्थ में विद्यमान है और प्रक्षेपण क्रिया के प्रति ऋत्विज और यजमान दोनों ही कर्त्ता हैं तो दोनो के प्रसङ्ग में णिच् होकर पुष्यमित्रो याजयते, याजका याजयन्ति ऐसा अनिष्ट प्राप्त होने लगता है। चाहते हैं कि पुष्यमित्रो यजते, याजका याजयन्ति ऐसा प्रयोग हो। समाधाता कहता है कि यज् धातु केवल हविप्रक्षेपण अर्थ में विद्यमान नहीं है बल्कि हवित्याग में भी वर्तमान है और उसी का यहाँ ग्रहण किया गया है। तो यजते उसी के लिये प्रयुक्त होगा जो हवि का त्याग करेगा और वह पुष्यमित्र कर रहा है और याजक करवा रहे हैं। अतः कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार हेतु शब्द का पारिभाषिक अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये और इस पक्ष में कोई भी दोष नहीं है।

उपसङ्ख्यान वार्तिक - तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम्

1. तत् करोति इस अर्थ में णिच् प्रत्यय कहना चाहिये। सूत्रं करोति सूत्रयति, मूत्रयति इत्यादि रूप बन सके।

2. आख्यानात्कस्तदाचष्टे, कृल्लुक्, प्रकृतिप्रत्यापत्तिः, प्रकृतिवच्च कारकम् -

आख्यान कृदन्त से णिच् कहना चाहिये तदाचष्टे इस अर्थ में और उस कृत्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, प्रकृति की पुनः अपने स्वरूप में प्राप्ति हो जाये और कारक प्रकृतिवत् हो जाये। कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति। बलिबन्धमाचष्टे बलिं बन्धयति। यहाँ हन् धातु से हनश्च वधः सूत्र से भाव में अप् प्रत्यय हुआ है और उसके सन्नियोग में वध आदेश हुआ है। कंसं घातयति में उस कृत् अप् का लुक्, वध की प्रकृति हन् की पुनः प्राप्ति, और कंस का कारकत्व भी प्रकृति के समान हो जाता है।

संज्ञाभूत आख्यानवाची शब्दों से णिच् न कहकर क्रियाख्यान मात्र शब्दों से णिच् कहना चाहिये। राजागमनमाचष्टे राजानमागमयति। ये केवल क्रिया का आख्यान है संज्ञाभूत नहीं है।

और आख्यान शब्द से णिच् का प्रतिषेध कहना चाहिये - आख्यानमाचष्टे। यहाँ पर णिच् न हो।

3. दृश्यर्थायां च प्रवृत्तौ -

देखने के प्रयोजन से प्रवृत्ति होने पर कृदन्त से णिच् कहना चाहिये तदाचष्टे इस अर्थ में और उस कृत्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, आदिष्ट शब्द की पुनः अपने स्वरूप में प्राप्ति हो जाये और कारक प्रकृतिवत् हो जाये । मृगरमणमाचष्टे मृगान् रमयति । यहाँ पूर्ववत् ही सभी कार्य जानने चाहिये । दृश्यर्थायाम् इसलिये कहा कि अरण्य स्थित रममाण मृग में ही ऐसा प्रयोग हो । यदि ग्राम के किसी मृगरमण को कहना चाहे तब तो मृगरमणमाचष्टे ऐसा ही बनेगा अर्थात् णिच् नहीं होगा ।

4. आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम्-

काल के अत्यन्त संयोग में मर्यादा होने पर कृदन्त से णिच् कहना चाहिये तदाचष्टे इस अर्थ में और आङ् का लोप और उस कृत्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, प्रकृति की पुनः अपने स्वरूप में प्राप्ति हो जाये और कारक प्रकृतिवत् हो जाये । आरात्रिविवासमाचष्टे रात्रिं विवासयति । जब तक रात्रि का विवास नहीं हो जाता तब तक कथा कहता है तो रात्रिकाल का कथा के साथ अत्यन्तसंयोग है और मर्यादा भी है- रात्रिविवास पर्यन्त कथा कहता है । यहाँ भी पूर्ववत् ही कार्य जानने चाहिये ।

5. चित्रीकरणे प्रापि -

आश्चर्य गम्यमान होने पर उसको प्राप्त करता है इस अर्थ में कृदन्त से णिच् कहना चाहिये तदाचष्टे इस अर्थ में और उस कृत्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, आदिष्ट शब्द की पुनः अपने स्वरूप में प्राप्ति हो जाये और कारक प्रकृतिवत् हो जाये । उज्जयिनी से प्रस्थितो सूर्य का माहिष्मती में उगना सम्भावित किया जा रहा है- सूर्यमुद्गमयति । यहाँ भी पूर्ववत् ही कार्य जानने चाहिये ।

6. नक्षत्रयोगे ज्ञि-

नक्षत्र का योग होने पर जानाति अर्थ में कृदन्त से णिच् कहना चाहिये तदाचष्टे इस अर्थ में और उस कृत्प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये, आदिष्ट शब्द की पुनः अपने स्वरूप में प्राप्ति हो जाये और कारक प्रकृतिवत् हो जाये । पुष्ययोगं जानाति पुष्येण योजयति । मघाभिर्योजयति । यहाँ पुष्य और मघा इत्यादि नक्षत्रों का योग होने पर जानाति अर्थ में णिच् प्रत्यय हो गया । बाकि सब पूर्ववत् जानना चाहिये ।

समाधाता कहता है कि इन सब वार्तिकों को कहने की आवश्यकता नहीं है । आदित्य और देवदत्त में प्रत्ययोत्पत्ति की हेतुता समान ही है । तो जैसे देवदत्त इत्यादि में हो जाता है वैसे ही आदित्य इत्यादि उदाहरणों में भी हो जायेगा । यद्यपि स्वतन्त्र कर्त्ता के प्रयोजक को हेतु कहा है और हेतु आदित्य को प्रयोजित नहीं करता है पर ये हेतु तो दोनों में समान ही है क्योंकि दोनों ही प्रसङ्गों में बिना अपेक्षा के ही कुछ प्रवृत्ति होती है अर्थात् बिना अपेक्षा के ही प्रवृत्ति हो ऐसा नहीं देखा जाता

है । कोई भी किसी दूसरे का उपकार करना है ऐसा सोचकर प्रवृत्त नहीं होता है, सब अपने ऐश्वर्य के लिये ही प्रवृत्त होते हैं । लोक में भी ऐसा देखा जाता है- लोक में भी जो लोग गुरु की सेवा करते हैं वे भी अपने ऐश्वर्य के लिये ही प्रवृत्त होते हैं कि पारलौकिक सुख की प्राप्ति होगी और सेवा से खुश होकर गुरु अध्यापन करेगा । तो अपनी भूति के लिये प्रयतमान व्यक्ति को प्रेषण करने मे प्रयोजक कर्त्ता अभिप्रेत है (कुर्वतः प्रयोजक इति)। यही अर्थ सभी उदाहरणों में जानना चाहिये ।

4. सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय (नामधातु)

अब क्रमानुसार सुबन्तों से लगने वाले प्रत्ययों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ये चार प्रत्यय हैं क्यच्, काम्यच्, क्यष्, क्यङ् ये चारों प्रत्यय विविध अर्थों में सुबन्तों से कहे गये हैं सुबन्तों से ये प्रत्यय लगने के बाद क्रिया रूप ही बनते है परन्तु सञ्ज्ञावाचक शब्दों से होने के कारण इन्हें नामधातु भी कहा जाता है इनकी विशद व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है

क्यच् प्रत्यय-

सुप आत्मनःक्यच्[183]

अर्थ- इच्छा करने वाले के आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)।

उदाहरण- आत्मनः पुत्रमिच्छति= पुत्रीयति ।

सूत्र स्थित प्रत्यय में चित्करण प्रयोजन चर्चा-

पाणिनि ने सूत्रों से प्रत्यय निर्माण में जितने भी अनुबन्ध किये हैं वे सभी अनुबन्ध किसी ना किसी अर्थ को कहते हैं अर्थात् उनका कुछ ना कुछ प्रयोजन अवश्य होता है इस बात को ध्यान में रखते हुए यहाँ हुए क्यच् प्रत्यय के चित्करण पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि चित् करण का क्या प्रयोजन है? उत्तरस्वरूप कहते है कि प्रथम दृष्ट्या चित् करण आते ही स्वरार्थ का स्मरण हो आता है कि चित्करण से अन्तोदात्त हो जाता है । प्रश्न कर्ता कहता है कि यह प्रयोजन नहीं है क्योंकि क्यच् प्रत्यय में केवल य ही शेष रहता है और चित्करण के द्वारा चितः सूत्र य के अ को ही उदात्त करेगा लेकिन वह उदात्त तो आद्युदात्तश्च सूत्र से ही सिद्ध हो जाता है तो तदर्थ चित्करण की आवश्यकता नहीं है जिस प्रत्यय में एक से अधिक स्वर हों वहाँ तो चित् करण सामर्थ्य से अन्तोदात्त कथन उचित

[183] अष्टाध्यायी- 3.1.8

प्रतीत होता है परन्तु यहाँ पर तो क्यच्प्रत्यय एक ही स्वर वाला है जिसका प्रत्यय स्वर से ही उदात्तत्व सिद्ध है। अतः चित्करण स्वरार्थ प्रतीत नहीं होता है।

उत्तरपक्षी कहता है कि- तो फिर यह चित्करण विशेषणार्थ है अगर यहाँ चित्करण नहीं करेंगें तो क्यचि च सूत्र को भी हमें चित्करण से रहित पढना पडेगा जिससे यह सूत्र केवल इस सूत्र के क्यच् का ग्रहण न करवाकर क्यङ् और क्यष् का भी ग्रहण करवाने लगेगा क्योंकि इत्संज्ञा होने के पश्चात् दोनों का 'क्य' ऐसा स्वरूप ही शेष रहता है जिस कारण 'अपि काकः श्येनायते' यहाँ पर 'क्यचि च' सूत्र से प्राप्त कार्य यानि ईत्व होने लगेगा। जिससे अनिष्टरूप की प्राप्ति होने लगेगी। ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि कहा गया है कि जिस अनुबन्ध के साथ जिसका ग्रहण किया गया है उसमें तदतिरिक्त अनुबन्ध वाले का ग्रहण नहीं होगा[184] अर्थात् क्य के द्वारा क् अनुबन्ध सहित क्य का ही ग्रहण हो सकता है क् और च् अनुबन्ध सहित क्यङ् और क्यष् का नहीं। अतः 'अपि श्येनायते काकः' में क्यङ् प्रत्यय का ग्रहण नहीं होने से चित्करण का यह भी प्रयोजन नहीं है।

समाधान- चित्करण इसलिये किया है जिससे सामान्य ग्रहण का विघात न हो। यदि यहाँ सूत्र का स्वरूप 'सुप आत्मनः क्य' ऐसा होता तो 'नः क्ये' सूत्र द्वारा केवल इस सूत्र पठित 'क्य' का ही ग्रहण होता तथा क्यङ् और क्यष् का ग्रहण नहीं होता और अभीष्ट है कि क्य सामान्य स्वरूप वाले तीनों का ग्रहण हो, चित्करण के अभाव में ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। इस कारण चित्करण सार्थक होता है।

आत्मनः पद विवेचनम्-

आत्मनः यह षष्ठ्यन्त पद है। यहाँ दो पक्ष सम्भव हो सकते हैं।

प्रथमपक्ष- आत्मनः पद में सम्बन्ध में षष्ठी है तो उस पक्ष में आत्मनः पद का सम्बन्ध सुबन्त के साथ होगा और इच्छा के साथ सम्बन्ध सुबन्त द्वारा होगा। तो अर्थ होगा कि आत्मसम्बन्धी सुबन्तार्थ को जब चाहता है तब क्यच् प्रत्यय होता है। इस पक्ष में आत्म ग्रहण सार्थक होता है क्योंकि आत्मसम्बन्धी सुबन्तार्थ की इच्छा में ही क्यच् प्रत्यय हो परसम्बन्धी सुबन्तार्थ की इच्छा में नहीं-

---

184 'तदनुबन्धकग्रहणे अतदनुबन्धकस्य ग्रहण न भवति'

राज्ञः पुत्रमिच्छति ।

द्वितीयपक्ष- आत्मनः पद में कर्त्ता में षष्ठी है । इस पक्ष में आत्मग्रहण व्यर्थ प्रतीत होता है क्योंकि इस पक्ष आत्मपद का कोई भी व्यावर्तक नहीं मिल पाता है । आत्म ग्रहण करने पर भी परेच्छा में क्यच् की प्राप्ति होती है । चाहे वह अपने पुत्र को चाहे या राजा के पुत्र को, इच्छा तो आत्मकर्तृक ही होगी । पर यह पक्ष संगत न होने से मान्य नहीं है क्योंकि सूत्र में इच्छा पद पढा है और बिना एषिता के इच्छा सम्भव ही नहीं है तो आत्मनः पढना व्यर्थ है । फ़िर भी पढा है इस सामर्थ्य से आत्मनः में सम्बन्ध षष्ठी ही मान्य है ।

परेच्छा के व्यावृत्त होने पर "मा त्वा वृका अघायवो विदन्" इस छान्दस् उदाहरण में परेच्छा होने से क्यच् प्रत्यय प्राप्त नहीं हो पाता है । एतदर्थ यदि आत्मग्रहण न करे तो राज्ञः पुत्रमिच्छति में दोष उत्पन्न होता है । समाधाता कहता है कि यहाँ पुत्र शब्द राजा की अपेक्षा के कारण सापेक्ष है और सापेक्ष शब्द असमर्थ[185] होता है अतः प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो पायेगी और यह सापेक्षत्व वाला हेतु "मा त्वा वृका अघायवो विदन्" इस उदाहरण में सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ किसी अन्य पद की अपेक्षा के बिना भी परेच्छा गम्यमान हो रही है । कोई भी अपना अघ (दुःख) नहीं चाहता है बल्कि दूसरों का ही चाहता है । परन्तु ऐसी स्थिति में लौकिक अघमिच्छति इत्यादि प्रयोगों में भी क्यच् की प्राप्ति होने लगती है । इसलिये आत्म तो ग्रहण करना ही पडेगा । तब "मा त्वा वृका अघायवो विदन्" इस छान्दस् उदाहरण में क्यच् प्रत्यय अश्वाघस्यात् सूत्र के पाणिनिय प्रयोग के सामर्थ्य से हो जायेगा । यह सूत्र क्यच् के परे रहते प्राप्त ईत्व को बाधकर आकार विधान करता है यदि अघायव में क्यच् प्रत्यय प्राप्त ही न हो तो ईत्वबाधनार्थ आकार विधान करना व्यर्थ हो जाता है । अतः प्रकृत सूत्र में आत्मनः पद पढना सार्थक है ।

सुपः पद विवेचन

---

[185] सापेक्षमसमर्थं भवति

सुप ग्रहण का प्रयोजन है कि सुबन्तों से ही क्यच् का विधान हो प्रातिपदिकों से नहीं हो। परन्तु यह समाधान उचित नहीं है क्योंकि क्यच् सुबन्त से हो अथवा प्रातिपदिक से इससे कोई अन्तर नहीं पडता है। दोनों से ही पदसंज्ञा सिद्ध हो जाती है केवल 'नः क्ये' सूत्र की प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है जब सुबन्त से क्यच् की उत्पत्ति होगी तब यह सूत्र नियमार्थ हो जायेगा और जब प्रातिपदिक से होगी तब यह सूत्र विध्यर्थक हो जायेगा।

और हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि सुबन्त नहीं कहेंगे तो धातु से भी क्यच् की उत्पत्ति होने लगेगी क्योंकि धातु वाले पक्ष में तो पूर्व सूत्र से सन् हो जायेगा। दोनों सूत्रों का समान विषयत्व है अर्थात् वहाँ समानकर्तृक पढा है तो वह भी आत्मेच्छा में ही लगेगा। तो धातु पक्ष में वह क्यच् को बाध लेगा और क्यच् प्रत्यय सुबन्त से ही होगा। समाधाता कहता है कि वाक्य से प्रत्ययोत्पत्ति न हो इसलिये सुपः पढा है- महान्तं पुत्रमिच्छति। यदि वाक्य से प्रत्ययोत्पत्ति होगी तो महान्तं और पुत्रं दोनों पद क्यच् प्रत्यय के अर्थ को कहने के लिए प्रवृत्त होंगे जिससे उन दोनों के गौण होने के कारण परस्पर समास नहीं हो पायेगा और समास आश्रित उतरपद व्यवहार न बनने से महत् शब्द को आत्व नहीं हो पायेगा (आन्महतः...)। महान् पुत्रो महापुत्रः , महापुत्रमिच्छति महापुत्रीयति ऐसा विग्रह करने पर ये रूप सिद्ध होता ही है पर महान्तं पुत्रमिच्छति इस स्थिति में नहीं बन पायेगा।

शंकाकर्त्ता कहता है कि सुप् ग्रहण करने पर भी महान्तं पुत्रमिच्छति यहाँ पर क्यच् प्राप्त होता है। समाधाता कहता है कि ऐसा नहीं है क्योंकि महान्तं पुत्रम् यह सुबन्त नहीं है। सुप् का जिससे विधान किया गया है उसी का सुबन्त पद से ग्रहण होता है। यहाँ सुबुत्पत्ति पुत्र शब्द से की थी तो सुबन्त से ग्रहण भी उसी का ही होगा न कि महान्तं पुत्रम् दो सुबन्तों का और महान्तं पुत्रमिच्छति इस विग्रहवाक्य में पुत्रम् सुबन्त से भी प्रत्ययोत्पत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि पुत्रम् शब्द असमर्थ है। इच्छति का सम्बन्ध महान्तं पुत्रम् दोनों के साथ है न कि केवल पुत्रम् के साथ। भाष्यकार ने कहा भी है कि विशेषण सहित शब्दों की वृत्ति नहीं होती है[186]। पुत्र शब्द महान्तं विशेषण से युक्त है इसलिये वृत्ति नहीं होगी। यद्यपि इस पक्ष में माणवकं मुण्डं करोति उदाहरण में मुण्ड शब्द माणवक विशेषण से युक्त है अतः उससे भी वृत्ति प्राप्त नहीं हो पाती है जिस कारण मुण्डयति रूप नहीं बन पायेगा। इसके लिये हम सविशेषणां वृत्तिर्न.. के साथ अमुण्डादीनाम् ऐसा

[186] सविशेषणां वृत्तिर्न....

कह सकते है तो कोई दोष नहीं आयेगा।

भाष्यकार इन सब समाधानों से अलग भी समाधान भी देते हैं। वे कहते हैं कि महान्तं पुत्रमिच्छति में अगमकत्व के कारण क्यच् प्रत्यय नहीं होगा। गमक का अर्थ होता है - कि वाक्य से जो अर्थ कहा जाता है प्रत्यय करने के पश्चात् उस प्रत्ययान्त से भी वही अर्थ कहा जाना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो उसे अगमक कहा जायेगा और वृत्ति नहीं हो पायेगी। अतः महान्तं पुत्रमिच्छति यह वाक्य जिस अर्थ को कहता है वही अर्थ महान्तं पुत्रीयति नहीं कहता है। जहाँ गमक सम्भव है वहाँ पर वृत्ति होती ही है यथा- मुण्डयति माणवकम्। अन्ततोगत्वा महान्तं पुत्रमिच्छति में वाक्य से क्यच् प्रत्यय न हो एतदर्थ सुप् पढना चाहिये यह स्थित रहा।
भाष्यकार माणवकं मुण्डं करोति= मुण्डयति माणवकम् उदाहरण को सिद्ध करने के लिये तीन समाधान और प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम समाधान- मुण्डादि शब्द गुणवचन हैं अर्थात् मुण्डादि शब्द गुण को कहकर अब उस गुणयुक्त पुरुष को कहते हैं और गुणवचन शब्द सापेक्ष होते हैं। वे बिना अपेक्षा किये अपने अर्थ को नहीं कह सकते हैं। अतः गुणवचन होने के सामर्थ्य से मुण्डादि शब्दों के सापेक्ष होने पर भी वृत्ति हो जायेगी।

द्वितीय समाधान- मुण्डादि शब्द सौत्र धातु है। इनको चुरादि मानकर स्वार्थिक णिच्[187] हो जायेगा और मुण्डयति रूप सिद्ध हो जायेगा।

तृतीय समाधान- व्याकरणशास्त्र में वाक्य और वृत्ति दोनों एक साथ नहीं होती है। जब वाक्य होता है तब प्रत्यय नहीं होगा और जब प्रत्यय होगा तब वाक्य न होकर सामान्य रूप से वृत्ति हो जायेगी। अभिप्राय यह है कि जब माणवकं मुण्डं करोति यह वाक्य होता है तब प्रत्यय नहीं होगा और जब प्रत्यय करने लगेंगे तब वाक्य नहीं होगा , सामान्य मुण्डं करोति ऐसी अपेक्षा में ही प्रत्यय हो जायेगा। विशेष अर्थ का प्रयोग करने की इच्छा वाला व्यक्ति विशेष का प्रयोग प्रत्यय की उत्पत्ति के बाद में ही करेगा- मुण्डयति कम्, माणवकम् इति। इस प्रकार करने से कोई दोष नहीं आयेगा।

क्यजन्त साधन विचार

---

[187] सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् अष्टाध्यायी 3.1.25

क्यजन्त पुत्रीय इत्यादि धातुएं अकर्मक हैं क्योंकि पुत्र कर्म तो उस क्यच् प्रत्यय के अर्थ में ही अन्तर्भूत होकर धात्वर्थ का ही अङ्ग बन गया है और उससे अन्य कोई दूसरा कर्म नहीं है जिसके आधार पर हम इसे सकर्मक कह सकें। तो अकर्मक होने से क्यजन्त धातु के साधन भाव और कर्त्ता ही बनेंगे।

वार्तिक - क्यचि मान्ताव्ययप्रतिषेधः

म् अन्त वाले प्रातिपदिकों और अव्ययों से क्यच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये। मान्त - इदमिच्छति। किमिच्छति।

अव्यय - उच्चैरिच्छति। नीचैरिच्छति। इत्यादि उदाहरणों में क्यच् प्रत्यय नहीं होता है।

वार्तिक – गोसमानाक्षरनान्तात्

गो, समानाक्षर और नान्त प्रातिपदिकों से क्यच् प्रत्यय होता है। गो- गामिच्छति गव्यति। समानाक्षर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ये दश समानाक्षर कहलाते हैं। इनमें बाद के तीन वर्ण अन्त वाले प्रातिपदिक न मिलने से यहाँ पर केवल सात का ही ग्रहण होता है) - घटीयति , दधीयति , मधूयति इत्यादि। नान्तात् - राजीयति , तक्षीयति इत्यादि। इस प्रकार का सूत्र बनाने पर अव्याप्ति दोष उपस्थित होने लगता है क्योंकि वाचमिच्छति वाच्यति इत्यादि उदाहरणों में वाच् प्रकारक शब्दों का गो, समानाक्षर और नान्त प्रातिपदिकों में ग्रहण न होने से उनसे क्यच् नहीं हो पाता है। इसलिये भाष्य में इस वार्तिक का उपन्यास केवल मतभेद को प्रदर्शित करने के लिये किया गया है। वास्तव में यह दोषयुक्त प्रतीत होता है।

उपमानादाचारे

अर्थ - उपमानवाची कर्म सुबन्त से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। पुत्रमिवाचरति= पुत्रीयति छात्रम्। प्रावारीयति कम्बलम्।

कर्मत्व क्रिया की अपेक्षा से ही होता है। तो यहाँ प्रत्ययार्थ रूप में उपस्थापित आचार क्रिया की अपेक्षा से ही पुत्र इत्यादि का कर्मत्व जानना चाहिये।

यहाँ पुत्र उपमान है क्योंकि उससे उपमा दी जा रही है और छात्र उपमेय क्योंकि उसके द्वारा उपमा दी जा रही है। आचरति क्रिया के द्वारा कोई व्यक्ति विशेष गुरु, अपाध्याय आदि अभिप्रेत है जो छात्र में भी अपने पुत्र के समान आचरण कर रहा है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में

भी जानना चाहिये।

वार्तिक - अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम्

सूत्र के माध्यम से केवल कर्मकारक में प्रयुक्त उपमानवाची शब्द से ही प्राप्ति थी परन्तु शब्द प्रयोगों में दृश्यमान होता है कि अधिकरण सुबन्त से भी क्यच् देखा जाता है इसलिए वार्तिककार ने इस हेतु से वार्तिक का उपनयन किया कि- उपमानवाची अधिकरण सुबन्त से भी आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय कहना चाहिये। प्रासादे एव आचरति कुड्ये- प्रासादयति कुड्ये। पर्यङ्कीयति मञ्चके।

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्

अर्थ- नमस्, वरिवस् और चित्रङ् से करोत्यर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है(विद्यावारिधि, 1997)।

प्रत्ययार्थ निर्देश विचार

प्रश्नकर्त्ता कहता है कि पूर्व सूत्र पठित वेदना प्रत्ययार्थ के द्वारा करण का व्यवधान होने से करणे की अनुवृत्ति प्रकृत सूत्र में नहीं आ पाती है तो क्यजादियों (इसमें और अगले सूत्र में) में प्रत्ययार्थ निर्देश करना चाहिये।

नमसः पूजायाम्- नमस्यति देवान्। वरिवसः परिचर्यायाम्- वरिवस्यति गुरून्। चित्रङः आश्चर्ये- चित्रीयते। भाण्डात् समाचयने- सम्भाण्डयते। चीवरादर्जने परिधाने च- सञ्चीवरयते भिक्षुः। पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च- उत्पुच्छयते, विपुच्छयते, परिपुच्छयते। प्रत्ययार्थ निर्देश करने से इनके द्वारा क्रिया का कथन सम्भव हो पायेगा। उत्तरदाता कहता है कि प्रत्ययार्थ निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि पाणिनि जी ने क्यजन्त जी सनाद्यन्ता धातवः सूत्र से धातु संज्ञा की है। धातु संज्ञा का यही प्रयोजन है कि तव्यदादि प्रत्ययों की उत्पत्ति हो जाये। पर तव्यदादि प्रत्यय तो साधन में विहित किये जाते हैं और साधनता क्रिया की ही हो सकती है। जिसके विना क्रियावचनता के सनाद्यन्ता धातवः सूत्र से धातु संज्ञा व्यर्थ होने लगती है। अतः ज्ञापक से क्रियावचनता सिद्ध हो जायेगी प्रत्ययार्थ निर्देश की आवश्यकता नहीं है।

अथवा क्यजादि को केवल धातु ही मान लो जिनके अर्थ का निर्देश नहीं किया गया है। फिर भी अभिधान शक्ति के स्वभाव से क्रियावचनता गम्यमान हो जायेगी जिस प्रकार पचादि धातुओं की होती है। धातुपाठ में पचादियों का विना अर्थ के ही 'सम्प्रति धातुपाठ में जो अर्थ उपलब्ध होता है

वह अर्वाचीन है'[188] पाठ किया गया है तो जैसे अभिधान शक्ति से उनके अर्थ का ज्ञान हो जाता है वैसे इनका भी हो जायेगा। ऐसा सम्भव होने पर भी समाधाता कहता है कि अबोध व्यक्तियों को अर्थों का सरलता से बोध हो सके इसलिये अर्थादेश करना चाहिये। अथवा व्यवधान होने पर भी करणे की अनुवृत्ति आ जायेगी और करोति क्रियासामान्य में वर्त्तमान है तो अर्थादेश की आवश्यकता नहीं है।

नमस्यति के योग में विभक्ति का निर्धारण

नमस्यति देवान् इस उदाहरण में नमस् शब्द का योग होने से सूत्र[189] से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त होती है। परन्तु इस सूत्र में अर्थवान् नमस् शब्द का ग्रहण है और नमस्यति में नमस् शब्द अनर्थक है पूरा समुदाय ही सार्थक है। तो नमस्यति के अनर्थक नमस् में नमःस्वस्तिस्वाहा... सूत्र कार्य नहीं करेगा[190] और सामान्य रूप से कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति हो जायेगी।
अथवा नमस् शब्द उपपद रहते हुए नमःस्वस्तिस्वाहा... सूत्र से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त होती है और कर्मणि द्वितीया से नमस्यति क्रिया के कर्म कारक में द्वितीया प्राप्त होती है तो दोनों की सम्प्रधारणा में कारक विभक्ति[191] हो जायेगी।

काम्यच् प्रत्यय

काम्यच्च[192]

अर्थ- आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से आत्मेच्छा में काम्यच् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। आत्मनः पुत्रमिच्छति= पुत्रकाम्यति। वस्त्रकाम्यति।

यद्यपि पूर्व सूत्र और इस सूत्र को मिलाकर एक ही सूत्र बना सकते थे लेकिन ऐसा करते तो अगले सूत्रों में दोनों प्रत्ययों की अनुवृत्ति जाती क्योंकि एक साथ प्रयुक्त शब्दों की प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ-साथ होती है[193] और हम चाहते हैं कि केवल क्यच् की प्रवृत्ति इस अर्थ को कहने में की जाये इसलिये योगविभाग किया है।

---

[188] पचादीनामर्थरहितानामेंव पाठात् - उद्योत

[189] नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च-अष्टाध्यायी- 2.3.16

[190] अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य - पारिभाषिक

[191] उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी - महा

[192] अष्टाध्यायी-3.1.9

[193] एकयोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिर्भवति सह वा निवृत्तिः - पारिभाषिक

चित् अनुबन्ध विचार

काम्यच् में चित्करण क्यों किया ? चितः सूत्र से अन्तोदात्त हो जाये ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि अन्तोदात्त होने से काम्य के य का अ उदात्त होगा लेकिन उसका उदात्तत्व तो धातोः सूत्र से भी सिद्ध है। काम्यच् प्रत्यय करने के पश्चात् जब पुत्रकाम्य की सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा हो जायेगी तब धातोः सूत्र से ही य का अ उदात्त हो जायेगा। काम्यच् के ककार की इत्संज्ञा न हो इसलिये इस च् अनुबन्ध को अन्त में न पढकर आदि में पढना चाहिये, ऐसा कहना भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि इत्करण का कोई न कोई प्रयोजन होना चाहिये और यहाँ कोई भी प्रयोजन न होने से नहीं हो पायेगी। लोप करना प्रयोजन नहीं हो सकता। ऐसा हो तो क् का उपदेश ही व्यर्थ हो जाये लेकिन पाणिनि का कोई भी वर्ण अनर्थक नहीं है। अग्निचित्काम्यति इत्यादि उदाहरणों में गुण का प्रतिषेध भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि काम्यच् प्रत्यय धातु से विहित न होने के कारण उसकी आर्धधातुक संज्ञा ही नहीं हो पायेगी। उत्तरदाता कहता है कि उपयट्काम्यति में सम्प्रसारण[194] करना ही कित्करण का प्रयोजन होगा। परन्तु महाभाष्यकार इसके भी तीन समाधान प्रस्तुत करता है –

प्रथम समाधान- वचिस्वपियजादीनां किति सूत्र में यजादि के द्वारा कित् को विशेषित करेंगे। जिससे यह अर्थ होगा कि- यजादि से विहित जो कित् है उसके परे रहते सम्प्रसारण होता है और यहाँ पर कित् उपयज् से विहित है न कि यज् से। इसलिये सम्प्रसारण प्राप्त नहीं होगा।

द्वितीय समाधान- जिस पक्ष में हम यजादि के द्वारा कित् को विशेषित नहीं करते हैं उस पक्ष में भी कोई दोष नहीं आयेगा क्योंकि सूत्र में द्विचकार निर्देश किया हुआ है - क्यच्च् काम्यच्। तो दूसरा चकार काम्यच् के ककार की इत्संज्ञा से रक्षा करेगा।

तृतीय समाधान- उपयट्काम्यति में यज् धातु से छन्द में विच्[195] प्रत्यय होता है। तो इसे छान्दस प्रयोग मान सकते हैं[196]।(जोशी, 2004)

क्यङ् प्रत्यय-

---

[194] वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15

[195] विजुपे छन्दसि 3.2.73

[196] दृष्टानुविधिश्छन्दसि भवति - महा.

कर्तुः क्यङ् सलोपश्च

अर्थ- उपमानवाची कर्ता सुबन्त से आचार अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है और सकार का भी लोप हो जाता है(विद्यावारिधि, 1997)।

सूत्र में प्रधान रूप से क्यङ् का विधान किया गया है और अन्वाचय रूप से सलोप का। तेन जिस सुबन्त से क्यङ् का विधान किया गया है यदि वह सकार अन्त वाला हो तो उस सकार का लोप भी हो जायेगा।

वार्तिक - सलोपो वा।

सूत्र में सकार का लोप होता है ऐसा अर्थ द्योतित होता है परन्तु शब्द प्रयोगों में दृष्ट है कि कुछ प्रयोगों में सकार सहित क्यङ् प्रत्यय का प्रयोग भी होता है अतः वार्तिक के माध्यम से इस विषय को उपस्थित किया गया है कि- सकार का विकल्प से लोप कहना चाहिये। पयायते , पयस्यते इत्यादि दोनों रूप बन सके।

वार्तिक- ओजसोप्सरसोर्नित्यम्

सलोपो वा वार्तिक के अनुसार सकार का लोप विकल्प से प्राप्त था परन्तु ओजस् और अप्सरस् के सकार का लोप नित्य लोप देखा जाता है इसलिए पुनः एक और वार्तिक पढना पडा जिसके अनुसार- ओजस् और अप्सरस् के सकार का नित्य ही लोप होता है। वास्तव में यहाँ अप्सरस् के ही सकार का नित्य लोप होता है ओजस् के नहीं - ओजस्यते, अप्सरायते। ओजायमानं योऽहिं जघान में ओजस् के सकार का लोप छान्दस है।

क्विप् प्रत्यय-

वार्तिक -आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब्वा

आचार अर्थ में अवगल्भ, क्लीब और होड से क्विप् प्रत्यय विकल्प करके होता है। अवगल्भते। अवगल्भायते। विक्लीबते। विक्लीबायते। विहोडते। विहोडायते। प्रश्नकर्त्ता कहता है कि इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है क्योंकि गल्भ धाष्ट्र्ये, क्लीबृ अधाष्ट्र्ये, होड़ अनादरे रूप में ये धातुएं धातुपाठ में अनुदात्तेत् पढी हुई है। तो जब इनसे लकार करेंगे तो अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपद होकर अवगल्भते इत्यादि रूप बन जायेंगे और अच् कृत् प्रत्यय के द्वारा उसे प्रातिपदिक बनाकर क्यङ् भी हो जायेगा- अवगल्भायते।

समाधाता कहता है कि क्विब्विधान का प्रयोजन यह है कि- अवगल्भाश्वक्रे में आम् प्रत्यय हो जाये अन्यथा प्रत्ययान्त न होने से प्रत्ययान्त को कहा गया आम् यहाँ नहीं हो पाता।

वार्तिककार अवगल्भ इत्यादि को प्रातिपदिक के रूप में ही देखता है और अन्य आचार्य के मत को प्रस्तुत करते हुए कहता है कि सभी प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में क्विप्[197] विकल्प करके कहना चाहिये जिससे अश्वति, गर्दभति इत्यादि रूप भी बन सके। प्रातिपदिक पक्ष में वार्तिक में ही अवगल्भ इत्यादि को अनुदात्त और अनुनासिक से युक्त पढेंगे जिससे उनसे आत्मनेपद होकर अश्वायते, गर्दभायते, अवगल्भते, अवगल्भायते इत्यादि रूप सिद्ध हो जायेंगे।

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः

अर्थ - भृशादि अच्व्यन्त प्रातिपदिकों से भवति के अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है और हलन्तों का लोप हो जाता है(विद्यावारिधि, 1997)। अभृशो भृशो भवति= भृशायते। शीघ्रायते। उन्मनायते। अभिमनायते। इत्यादि

यहाँ भी सूत्र में प्रधान रूप से क्यङ् का विधान किया गया है और अन्वाचय रूप से हल्लोप का। अतः जिस सुबन्त से क्यङ् का विधान किया गया है यदि वह हल् अन्त वाला हो तो उस हल् का लोप भी हो जायेगा।

अच्वेः में पर्युदास प्रतिषेध स्थापन

सूत्र में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं।

I. अभूततद्भाव ग्रहण करना चाहिये "क्व दिवा भृशा भवन्ति" यहाँ भवत्यर्थ में भृश से क्यङ् प्रत्यय न हो।

II. सूत्र में च्वि प्रतिषेध अनर्थक है क्योंकि च्वि प्रत्यय का भी भवत्यर्थ में विधान किया गया है तो जब उस भवत्यर्थ को च्वि ही कह देगा तो पुनः उसे कहने के लिये क्यङ् नहीं होगा क्योंकि कहे हुए को पुनः कहना अप्रयोग माना जाता है[198]। डाजन्त पटपटायते में क्यष् प्रत्यय तो लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् इस वचन सामर्थ्य से हो जायेगा पर यहाँ नहीं होगा अतः अच्वेः प्रतिषेध अनर्थक है।

समाधाता कहता है कि ये कोई दोष नहीं है क्योंकि अच्वेः में प्रसज्य प्रतिषेध न होकर पर्युदास प्रतिषेध है। जिसका अर्थ होता है - तद्भिन्न तद्सदृश। (नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः - महा.) जैसा लोक में भी देखा जाता है - अब्राह्मण को लाओ ऐसा कहने पर ब्राह्मणभिन्न

---

[197] सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वक्तव्यः।

[198] उक्तार्थानामप्रयोगः - महा.

और ब्राह्मणसदृश किसी क्षत्रिय को ही लाया जाता है न कि किसी पत्थर को। उसी प्रकार यहाँ भी अच्वेः कहने से च्विभिन्न और च्विसदृश में ही कार्य होगा और च्विभिन्न और च्विसदृश अभूततद्भाव से अन्य और क्या हो सकता है ? अतः कोई दोष नहीं है।

भृशादि पठित सोपसर्ग प्रकृतियों के उपसर्ग का विशेषणत्व निर्धारण

भृशादियों में अनेक प्रकृतियां सोपसर्ग पढी हुई हैं- अभिमनस्, सुमनस्, उन्मनस्, दुर्मनस्। क्या इन उपसर्गों को प्रकृत्यर्थ का विशेषण माने या प्रत्ययार्थ का इस तरह दो पक्ष उपस्थित होते हैं। यदि उन्हें प्रत्ययार्थ विशेषण मानते हैं सूत्र का अर्थ होगा - अभिभवति, सुभवति, उद्भवति इत्यादि अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है तो अभिमनायते में निघात[199] प्राप्त होता है क्योंकि प्रत्ययार्थ विशेषण पक्ष में मनस् शब्द से क्यङ् होगा न कि अभिमनस् शब्द से। तो उपसर्ग रहित मनायते ही तिङन्त रूप बनेगा। फिर इस तिङ् को अभि अतिङ् से उत्तर निघात प्राप्त होता है।

प्रकृत्यर्थ पक्ष में सूत्र का अर्थ होगा – अभिमनस्, सुमनस्, उन्मनस्, दुर्मनस् इत्यादि से भवति अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है। इस पक्ष में स्वमनायत में अडागम सुमनस् प्रकृति से पूर्व होगा, सुमनाय्य में समास का अभाव होने से ल्यप् नहीं हो पायेगा और अभिमिमनायिषते में उपसर्ग सहित प्रकृति को ही द्वित्व होगा इत्यादि दोष उपस्थित होते हैं।

उपर्युक्त शंकाओं का समाधान इस प्रकार है कि- धातुपाठ में संग्राम युद्धे धातु उपसर्ग सहित पढी हुई है और वहाँ पर हमें उपसर्ग सहित से प्रत्ययोत्पत्ति चाहिये- असंग्रामयत शूर में उपसर्ग से पूर्व अडागम हो। उपसर्ग सहित प्रकृति से प्रत्यय तो सिद्ध था ही फिर धातुपाठ में संग्राम युद्धे धातु को उपसर्ग सहित पढा है तो ये नियमार्थ बनेगा क्योंकि जो कार्य पहले से सिद्ध होता है उसी कार्य की सिद्धि हेतु पुनः दूसरा प्रयास अगर होता है तो वहाँ किसी न किसी नियम का निर्माण होता है[200] अतः यहाँ नियम होगा कि- सोपसर्ग से प्रत्यय हो तो संग्राम से ही हो अन्य से नहीं। तो अभिमनस् आदि से प्रत्ययोत्पत्ति उपसर्ग रहित से ही होगी जिस कारण दोष नहीं आयेगा। यद्यपि इस स्थिति में प्रत्ययार्थ विशेषण में कहा गया स्वर दोष यहाँ भी आने लगेगा पर उसके लिये हम स्वरविधि में पराङ्वद्भाव होता है ऐसा कह देंगे। तो स्वर विधि में अभि इत्यादि उपसर्ग पर के समान तिङ् ही माने जायेंगे।

---

[199] तिङ्ङतिङः-अष्टाध्यायी- 8.1.28

[200] सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थः

स्वरविधि में पराङ्वद्भाव होता है ऐसा कहने पर प्रत्ययार्थ विशेषण पक्ष में भी कोई दोष नहीं आता है । प्रश्नकर्त्ता यहाँ एक दूसरा दोष उपस्थित करता है कि जब क्यङ् ने ही उस भवत्यर्थ को कह दिया तो अब उस अर्थ को कहने के लिये उपसर्ग का प्रयोग नहीं हो सकता है । जैसे "अपि काकः श्येनायते" में क्यङ् के द्वारा ही आचार अर्थ को कह दिये जाने के कारण अब उसी अर्थ को कहने के लिये आङ् का प्रयोग नहीं होता है । समाधाता कहता है कि दोनों उदाहरणों में अन्तर है । "अपि काकः श्येनायते" में आचार अर्थ को केवल एक आङ् उपसर्ग ही विशेषित करता है लेकिन यहाँ अनेक उपसर्ग प्रत्ययार्थ को विशेषित करते हैं । तो मनायते मात्र कहने से संदेह होता कि यह अभिभवति, सुभवति, दुर्भवति, उद्भवति इत्यादि में से किस अर्थ को कहता है । अतः संदेह न हो इसलिये उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है ।

कष्टाय क्रमणे[201]

अर्थ- चतुर्थी समर्थ कष्ट शब्द से क्रमण अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है । क्रमण का अर्थ है अनार्जव अर्थात् पाप - कष्टाय क्रमणे= क्रामति, कष्टायते(विद्यावारिधि, 1997) ।

वार्तिक- सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायम्

केवल कष्ट शब्द से क्यङ् न कहकर इन सभी सत्रादि शब्दों से क्यङ् कहना चाहिये- सत्रायते । कक्षायते । कष्टायते । कृच्छ्रायते । गहनायते ।

सत्रादि शब्दों से ही इसलिये कहा कि कुटिलाय, अनुवाकाय, क्रामति में अनुवाक शब्द से न हो ।

कण्वचिकीर्षा इसलिये कहा कि अजः कष्टं क्रामति = गहन प्रदेश अर्थात् गहन जंगल में जाता है, यहाँ न हो । यहाँ क्रामति का अर्थ पादविहरण है ।

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः[202]

अर्थ - रोमन्थ और तपस् कर्म से यथासंख्य वर्ति और चर अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)।

भाष्य की व्याख्या करते हुए प्रदीप रोमन्थ का अर्थ लिखता है - निगले हुए का चबाना और उगले हुए का खाना अर्थात् जुगाली करना[203] । इस पर प्रदीप लिखता है - मन्थो मन्थनं तच्चोद्गीर्णस्य

---

[201] अष्टाध्यायी- 3.1.14

[202] अष्टाध्यायी- 3.1.15

[203] उद्गीर्णस्य वावगीर्णस्य वा मन्थो रोमन्थः महा. प्रदीप.

चर्वणम् । अन्यस्याशनरूपम् ।)

वार्तिक - हनुचलन इति वक्तव्यम्

यदि ठुड्डी चलने के साथ रोमन्थ की क्रिया होती है तभी क्यङ् प्रत्यय हो । कीटो रोमन्थं वर्तयति = कीट अपानप्रदेश से निकले हुए मल को गोल करता है । यहाँ हनुचलन नहीं है इसलिये क्यङ् प्रत्यय नहीं हुआ ।

वार्तिक-तपसः परस्मैपदं च

तपस् शब्द से परस्मैपद कहना चाहिये । क्यङ् के ङित् होने के कारण आत्मनेपद प्राप्त था परस्मैपद कर दिया – तपश्चरति= तपस्यति । तपस्यते लोकजिगीषुरग्रेः में छान्दस आत्मनेपद जानना चाहिये।

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने[204]अर्थ - बाष्प और ऊष्म कर्म से उद्वमन अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

बाष्पमुद्वमति बाष्पायते । ऊष्मायते (विद्यावारिधि, 1997)।

वार्तिक - फ़ेनाच्चेति वक्तव्यम्

फेन शब्द से भी क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये - फेनमुद्वमति फेनायते ।

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेंघेभ्यः करणे[205]

अर्थ - शब्द, वैर, कलह, कण्व और मेघ से करोत्यर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)।

शब्दं करोति= शब्दायते । वैरायते । कलहायते । कण्वायते । मेघायते ।

वार्तिक - सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्चेति वक्तव्यम्

सुदिन, दुर्दिन और नीहार से क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये । सुदिनायते । दुर्दिनायते । नीहारायते ।

अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाप्रुष्टाप्लुष्टाग्रहणम् - महा.

इन सब से भी क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये । अटायते । अट्टायते । शीकायते । कोटायते । पोटायते । सोटायते । प्रुष्टायते । प्लुष्टायते ।

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्[206]

अर्थ - सुखादि कर्म से वेदना = अनुभव अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। सुखं

---

[204] अष्टाध्यायी-3.1.16

[205] अष्टाध्यायी-3.1.17

[206] अष्टाध्यायी-3.1.18

वेदयते सुखायते । दुःखायते । सूत्रपठित कर्त्ता शब्द का सम्बन्ध सुखादियों से होता है न कि वेदना से क्योंकि यदि कर्ता का सम्बन्ध वेदना से करेंगे तो सुखं वेदयते प्रसाधको देवदत्तस्य में जब प्रसाधक स्वयं से अन्य देवदत्त का सुख अनुभव करेगा तब भी वेदना कर्तृसम्बन्धी होने के कारण क्यङ् प्रत्यय प्राप्त होने लगता है जो कि अनिष्ट है । अतः कर्त्ता शब्द का सम्बन्ध सुखादियों से करना चाहिये ।

क्यष् प्रत्यय-

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्[207]

अर्थ- लोहितादि और डाजन्त प्रातिपदिकों से भवत्यर्थ में क्यष् प्रत्यय होता है (विद्यावारिधि, 1997)। लोहितायति , लोहितायते । डाजन्त - पटपटायति , पटपटायते ।

लोहितादि गण में नील, हरित, पीत इत्यादि शब्दों का पढा गया है उन सब का पाठ भृशादि गण में मानना चाहिये । यहाँ पर उनका पाठ प्रमाद के कारण कर दिया गया है । अतः नीलादि शब्दों से क्यङ् ही होगा अर्थात् उनसे नित्य ही आत्मनेपद होगा और वर्मादि शब्दों का, जिनका लोहितादि गण में पाठ नहीं किया गया है लोहितादि में आदि ग्रहण से ग्रहण जानना चाहिये जिससे उनको क्यष् की प्राप्ति हो जायेगी । वर्मायति, वर्मायते । निद्रायति, निद्रायते । करुणायति, करुणायते । कृपायति, कृपायते । इसे आकृतिगण मानना चाहिये । अच्वेः की अनुवृत्ति के कारण क्यष् प्रत्यय अभूततद्भाव में होता है ।

कित् अनुबन्ध प्रयोजन विचार

क्यष् में कित्करण का सामान्य रूप से गुणवृद्धि प्रतिषेध प्रयोजन होगा ऐसा लग सकता है परन्तु सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते अङ्ग को गुण कहा गया है और आर्धधातुक संज्ञा तभी हो सकती है जब क्यष् का विधान धातु से किया गया हो । पर यहाँ क्यष् का विधान लोहितादि प्रातिपदिकों से किया गया है । जिससे यह प्रयोजन नहीं हो सकता है । नः क्ये, क्यस्य विभाषा, क्यच्व्योश्च इत्यादि में सामान्य ग्रहण के लिये भी नहीं हो सकता है क्योंकि क्यष् का विधान क्रमशः नान्त, हलन्त और आपत्य से नहीं किया गया है । तो उन सूत्रों की प्राप्ति की सम्भावना ही नहीं है । क्याच्छन्दसि सूत्र में सामान्य ग्रहण के लिये भी नहीं नहीं हो सकता है

---

[207] अष्टाध्यायी-3.1.13

क्योंकि इस सूत्र को हम याच्छन्दसि ऐसा पढेंगे । चुरण्युः, भुरण्युः इत्यादि में सूत्र[208] से यक् प्रत्यय होकर चुरण्य यान्त धातु से भी उ प्रत्यय हो जाये । यदि हम क्याच्छन्दसि सूत्र पढते हैं तो ऐसा सम्भव नहीं हो पाता है ।

उपर्युक्त प्रश्नों से अलग कित् का प्रयोजन देते हुए कहते हैं कि अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः सूत्र में कित् ङित् की अनुवृत्ति आती है तो क्यष् में कित् करने से लोहितायति में भी दीर्घ हो जाये इसलिये कित्करण किया है । कित् ङित् की अनुवृत्ति इसलिये लाते हैं कि उरुया, धृष्णुया में अकित् या के परे रहते दीर्घ न हो । असूया रूप असु से कण्ड्वादिभ्यो यक् से यक् प्रत्यय होकर बन जायेगा और वसूया रूप इच्छा अर्थ में वसु शब्द से क्यच् प्रत्यय होकर बन जायेगा या छान्दस प्रयोग मान लेंगे । इसलिये वहाँ कोई दोष नहीं आयेगा । समाधाता कहता है कि यदि छान्दसत्व ही हेतु है तो कित् ङित् की अनुवृत्ति की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उरुया, धृष्णुया को छान्दस प्रयोग मान लेंगे । अतः क्यष् में कित् अनुबन्ध करना व्यर्थ है ।

इसी प्रकार षित् करण भी व्यर्थ है । उसे क्याच्छन्दसि सूत्र में सामान्य ग्रहण के लिये भी नहीं मान सकते क्योंकि उस सूत्र को हम याच्छन्दसि ऐसा पढेंगे । चुरण्युः भुरण्युः इत्यादि में कण्ड्वादिभ्यो यक् सूत्र से यक् प्रत्यय होकर चुरण्य यान्त धातु से भी उ प्रत्यय हो जाये इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् जाननी चाहिये ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सनद्यन्त प्रकरण एक बड़ा प्रकरण है । साथ ही साथ महत्त्वपूर्ण भी है । निष्कर्ष स्वरूप इसको तालिका संख्या 2.1 से समझा जा सकता है ।

SR	Division	List of Suffixes
1	सभी धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय	सन्
2	चुनिन्दा धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्यय	यङ्, ईयङ्, आय, यक्
3	धातु तथा सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय	णिच्, णिङ्
4	सुबन्तों से लगने वाले सनादि प्रत्यय (नामधातु)	क्यच्, क्यङ्, काम्यच्, क्यष्, क्विप्

Table 1: सनद्यन्त प्रत्ययों का विभाजन

[208] कण्ड्वादिभ्यो यक् -अष्टाध्यायी-3.1.27

सनद्यन्त पर हुए शोधकार्यों का सर्वेक्षण

सनन्त प्रत्ययों को आधार बनाकर किये गये शोधकार्यों का संक्षिप्त सर्वेक्षण

संस्कृत वाङ्मय में आद्यन्त स्त्रोत एवं आधार वेद को माना जाता है क्योंकि सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय का आध्यात्मिक ज्ञान मन्त्रों तथा श्लोकों में ही सुरक्षित है । संस्कृत वाङ्मय के वैदिक और लौकिक दो रूप हैं प्रथम ग्रन्थ "ऋग्वेद" मन्त्रों में तथा महर्षि वाल्मीकिकृत "रामायण" श्लोकों में ही निबद्ध है । सम्पूर्ण साहित्य एवं उनके सम्यक् भावों को समझने के लिए व्याकरण शास्त्र का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है । क्योंकि शब्द के सही व सटीक ज्ञान के लिए उनकी प्रत्यय व प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है और उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक है व्याकरण का समुचित ज्ञान होना । सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र अनेक प्रकरण तथा उपप्रकरणों में विभक्त किया गया है । इन प्रकरणों में धातुओं के द्वारा बनने वाले क्रियारूपों की अपनी विशिष्टता है, क्योंकि क्रिया के विना वाक्यार्थ का सही ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है । इसलिए शोध का विषय धातुओं से बनने वाले गौण क्रियारूपों पर आधारित है । गौणक्रिया रूपों के ज्ञान हेतु आवश्यक है कि प्राथमिक क्रियाओं का पहले ज्ञान हो तभी गौण क्रियारूपों को सही प्रकार से समझा जा सकता है । धातुओं से सम्बन्धित अनेक विद्वानों एवं शोधार्थियों द्वारा परम्परागत रूप से बहुत से शोधकार्य किये गये हैं परन्तु गौण क्रियाओं यानी सनाद्यन्त क्रियारूपों पर अभी तक कोई शोधकार्य प्राप्त नहीं होता है । इसीके साथ आधुनिक काल में व्याकरण के समुचित ज्ञान तक आसानी से पहुंचाने के लिये ऑनलाइन टूल्स का निर्माण किया जा रहा है । पारम्परिक शिक्षण को और अधिक सशक्त बनाने के लिए ई-शिक्षण टूल्स का भी निर्माण एवं इसमें नवीनता लाने हेतु संगणकीय भाषाविज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न कार्य किए जा रहे हैं इसी श्रृखला में यह शोध-कार्य भी किया जा रहा है ।

5.1 धातु विषयक पारम्परिक अनुसन्धानों का परिचय

पारम्परिक कार्य में टीकाएं, सम्पादित ग्रन्थ, अनुसंधान पत्र, अनुसंधान कार्य आदि शामिल हैं । पृथा गाङ्गुली (गाङ्गुली, 2010) द्वारा "शाकटायन-धातुपाठ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" नामक शोध दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से किया गया है । प्रस्तुत शोधग्रन्थ में संस्कृत व्याकरण एवं उसके अङ्गों एवं धातु क्या स्वरूप है तथा धातुपाठ का क्या स्वरूप है पाणिनिय धातुपाठ व शाकटायन धातुपाठ का संस्कृत साहित्य में क्या महत्व है इत्यादि विषयों पर विचार

किया गया है। सम्पूर्ण शोधग्रन्थ चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में व्याकरण एवं धातुपाठ का सामान्य परिचय दिया गया है, साथ-साथ उपलब्ध सभी धातुपाठों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । द्वितीय अध्याय में आचार्य शाकटायन का परिचय दिया गया है जिसके अन्तर्गत दो शाकटायन आचार्यों का परिचय प्राप्त होता है। प्रथम प्राचीन शाकटायन आचार्य का परिचय व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय दिया गया, अनन्तर नवीन आचार्य शाकटायन के व्यक्तित्व व कर्तृत्व का परिचय दिया गया है। अन्य अध्यायों में शाकटायन धातुपाठ में प्राप्त धातुओं का वर्णन प्राप्त होता है।

इस क्षेत्र में बहुत ही सराहनीय कार्य सुषमा (सुषमा,2010) द्वारा 'चान्द्र धातुपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर किया गया है। सम्पूर्ण शोधग्रन्थ में पाँच अध्याय है जिसमें इन्होंने सबसे पहले आचार्य चन्द्रगोमी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके जन्मस्थान, समय एवं उनके द्वारा रचित ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय में चान्द्रव्याकरण का संक्षिप्त परिचय देते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है । तृतीय अध्याय में चान्द्र धातुपाठ का स्वरूप तथा कथन के इस विषय पर प्रकाश डाला गया है । चतुर्थ अध्याय में चान्द्र धातुपाठ में धात्वर्थनिर्देश शैली और उसकी समीक्षा की गयी है । पंचम अध्याय में चान्द्र धातुपाठ में पठित धातुओं के विशिष्ट अर्थ का विवेचन करते हुए गत्यर्थक, शब्दार्थक, व हिंसार्थक धातुओं का विवेचन किया गया है।

संस्कृतव्याकरणशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले सनन्त प्रत्ययों को आधार बनाकर कुलदीप आर्य (आर्य, 1980) द्वारा "पाणिनीय धातुपाठ में पठित गत्यर्थक धातुओं की अर्थवैज्ञानिक समीक्षा" नामक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है । इस सम्पूर्ण पुस्तक को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम धातु, धातुपाठ, पाणिनिय धातुपाठ का वैशिष्ट्य बताते हुए अर्थविज्ञान से क्या तात्पर्य है, संस्कृत धातु एवं अर्थ परिवर्तन तथा अर्थपरिवर्तन एवं अर्थविकास गत्यर्थक धातुओं से क्य तात्पर्य है इत्यादि विषयों का विवेचन किया गया है। पुस्तक के द्वितीय अध्याय में गत्यर्थक धातुओं का वर्गीकरण अर्थविस्तार तथा अर्थसंकोच इन दो रूपों में किया गया है । तदनन्तर धातुओं की मीमांसा पर विचार किया गया है । तृतीय अध्याय में विशिष्ट गत्यर्थक धातुएँ एवं गति सहित अन्य अर्थों में पठित गत्यर्थक धातुओं का वर्णन किया गया है ।

चतुर्थ एवं अन्तिम अध्याय में सामान्य गत्यर्थक धातुओं की समीक्षा इत्यादि विषयों पर चर्चा की गयी है।

'शिशुपालवधम् के प्रथम दो सर्गों में प्रयुक्त तिङन्तों का संरचनात्मक एवं अर्थमूलक विश्लेषण' (कुमारी,2007) प्रवीन कुमारी द्वारा प्रस्तुत शोधकार्य दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से किया गया है। इस शोध में शिशुपालवधम् महाकाव्य के प्रथम दो सर्ग के अन्तर्गत आये हुए तिङन्त पदों का सर्वप्रथम संरचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तदनन्तर द्वितीय पक्ष में सभी तिङन्त पदों अथवा क्रियात्मक पदों का अर्थमूलक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पाणिनि से कात्यायन तक का भाषागत विकास तिङन्त के सन्दर्भ में मिथिलेश शर्मा द्वारा (शर्मा, 1983) संस्कृत विभाग दिल्ली द्वारा किया गया। इस शोध-प्रबन्ध में शोधार्थी द्वारा तिङन्तों अर्थात् क्रियापदों का विकास पाणिनि से लेकर कात्यायन तक किन-किन चरणों से होकर हुआ है , इस विषय पर पर्याप्त चर्चा हुई है।

प्रबन्धचिंतामणि के तिङन्त पदों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (विनिता, 1999) द्वारा बहुत ही उत्तम कार्य संस्कृत विभाग द्वारा किया गया है। इन्होनें प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ में प्रयुक्त किये गये क्रियावाचक शब्दों का भाषावैज्ञानिक आधार पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सिद्धान्तकौमुदी के लकारार्थप्रकरण तथा परमलघुमंजुषा के लकारार्थनिर्णय का विवेचनात्मक अध्ययन (लाजवन्ती,1991) विषय पर शोध भी संस्कृत विभाग से किया गया है। जिसमें सिद्धान्तकौमुदी तथा परमलघुमंजुषा के लकारार्थ प्रकरण की तुलना करते हुए विवेचन किया गया है।

संस्कृतव्याकरणशास्त्र में सनन्त प्रत्ययों को आधार बनाकर अनेक कार्य हुए हैं सामान्य शोधकार्यों के साथ-साथ समीक्षात्मक अध्ययनरूपी शोधकार्य भी हुए है । जिनमें से "जैनेन्द्र धातुपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन" (अग्रवाल, 2012) निधि अग्रवाल नामक शोधकार्य दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में किया गया है। प्रस्तुत शोधग्रन्थ में पाँच अध्याय हैं जिनके अन्तर्गत सभी उपलब्ध धातुपाठों के साथ-साथ जैनेन्द्र के धातुपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अश्वघोष विरचित सौन्दरानन्द महाकाव्य में प्रयुक्त तिङन्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन मुकेश कुमार (कुमार, 2010) इस नाम से प्राप्त होता है। यह शोध-प्रबन्ध चार अध्यायों में विभक्त

है, तथा इस शोध का मुख्य प्रतिपाद्य तिङन्तों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन सौन्दरनन्द महाकाव्य को आधार बनाकर किया गया है।

लकारार्थ एक अध्ययन वैयाकरण भूषणसार के विशेष सन्दर्भ में (झा,1990) नामक विषय पर रवीन्द्र नाथ झा द्वारा किया गया है, सम्पूर्ण ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। इस शोध-प्रबन्ध का आधारग्रन्थ वैयाकरण भूषणसार को बनाकर लकारों का विवेचन किया गया है। मेघदूत के तिङन्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (सतनारायण, 2003) विषय पर किया गया है जिसमें मेघदूत के क्रियात्मक पदों का विश्लेषणात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त अन्य भी एक शोध "भट्टोजिदीक्षित के अनुसार णिजन्त विचार" दर्शन कुमार (सीकरी, 1994) द्वारा संस्कृत विभाग से किया गया है। प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में छ अध्याय हैं जिनमें प्रथम अध्याय में संस्कृत व्याकरण की प्रक्रिया पद्धति का विवेचन करते हुए भाषा तथा व्याकरण का महत्व व स्वरूप, व्याकरण शास्त्र की उत्पत्ति, व्याकरण सम्प्रदाय इत्यादि के विवेचन के साथ-साथ प्रक्रिया पद्धति का स्वरूप तथा प्रक्रिया ग्रन्थों का विवेचन किया गया है । द्वितीय अध्याय में भट्टोजिदीक्षित का व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके जन्मस्थान, समय, वंश इत्यादि का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में ण्यन्त का स्वरुप एवं विवेचन किया गया है तथा चतुर्थ अध्याय में णिजन्त के लिए कर्ता एवं हेतु का विवेचन किया गया है। पञ्चम अध्याय में सन् और यङ् की समीक्षा करते हुए सन् और यङ् के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम अध्याय में णिजन्त में आत्मनेपद तथा अन्य किये जाने वाले कार्यों की चर्चा प्राप्त होती है।

संस्कृत भाषा से सम्बन्धित बहुत ग्रन्थों की रचना प्राप्त होती है। इसी क्रम में उमाशंकर शर्मा ऋषि (ऋषि , 2014) ने संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखा है। जिसमें कुल 21 अध्याय प्राप्त होते हैं। जिसके अन्तिम अध्याय में व्याकरण एवं व्याकरण परम्परा का संक्षिप्त परिचय तथा व्याकरण से सम्बन्धित प्रमुख ग्रन्थों एवं प्रमुख आचार्यों का परिचय दिया है।

वैदिक संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित कपिलदेव द्विवेदी (2010) द्वारा यह कार्य किया गया। जिसका नाम वैदिकसाहित्य एवं संस्कृति है जिसमें कुल 13 अध्यायों में से छठवाँ अध्याय वेदाङ्ग नाम से प्राप्त होता हैं। इसमें छ: वेदाङ्गों का सामान्य परिचय दिया गया है। व्याकरण वेदाङ्ग में व्याकरण शब्द का अर्थ, व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थों का नाम, व्याकरण का महत्त्व, वैदिक

व्याकरण, व्याकरण से सम्बन्धित नियम, मुख्य व्याकरण ग्रन्थों का परिचय तथा मुख्य वैयाकरणों का परिचय भी दिया गया है।

उपाध्याय एवं पाण्डेय (1997) ने संस्कृत-वाङ्मय का बृहद इतिहास नामक एक पुस्तक की रचना की है जिसका द्वितीय खण्ड वेदाङ्ग है। इसमें प्रत्येक वेदाङ्ग का विस्तार से वर्णन किया गया है। व्याकरण वेदाङ्ग में व्याकरणशास्त्र के विभिन्न शास्त्रों के आधार पर सामान्य जानकारी दी है। वैदिक व्याकरण की आधार सामग्री, व्याकरण विज्ञान की सम्प्रेषण परम्परा, वैदिक व्याकरण की प्रमुख और सामान्य विशेषताएँ तथा वैदिक व्याकरण की अनेक प्रकार की विधियों का वर्णन किया है। वैदिक काल में प्राप्त व्याकरण का वर्गीकरण, ऋग्वेद-संहिता में विभिन्न वैयाकरणीय-प्रयोगों की स्थिति, व्याकरण में शब्दों की सिद्धि प्रक्रिया धातु तथा प्रत्यय इत्यादि का सम्यक् रूप में किया गया है। पाणिनिय व्याकरण का परिचय तथा पाणिनि के समय तथा नाम इत्यादि का तथा व्याकरण के विषय में पाश्चात्त्य विद्वानों के विचारों का उल्लेख किया गया है।

पाणिनीय धातुपाठ में पठित भोजनार्थक, पानार्थक एवं शब्द कर्मार्थक धातुओं के अर्थनिर्देश का विश्लेषणात्मक अध्ययन (धर्मेन्द्रकुमार, 2007) नामक शोधकार्य द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोध में धातुओं का त्रिविध वर्गीकरण करते हुए उनका अर्थनिर्देशन किया गया है।

अन्य शोधकार्य दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से कालिदास के नाटकों में सोपसर्ग क्रियाएँ नीरजा (कश्यप, 1987) द्वारा विषय पर किया गया है। इस शोध में कालिदास के सभी नाटको को आधार बनाया गया है तथा सभी उपसर्ग सहित क्रियाएँ एकत्रित करके उनका विवेचन किया गया है।

5.2 संगणकीय भाषाविज्ञान से सम्बन्धित शोधकार्यों का सर्वेक्षण

सूचना एवं संचार के इस युग में ऑनलाइन शिक्षण टूल्स की महत्ता तेजी से बढ़ रही है। तेजी से बढ़ते हुए इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों जैसे मोबाइल, कम्प्यूटर, टेबलेट के प्रयोग तथा बहुत सारे सरकारी, निजी, शैक्षिक, व्यापारिक आदि कार्यों को आसान करने तथा जन सामान्य तक सभी सुविधाओं को पहुंचाने के लिये भारत सरकार द्वारा भारत को 'डिजिटल इंडिया' बनाने का संकल्प

लिया गया है। जिस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश के प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा संस्थानों तक संचार एवं प्रौद्योगिकी को बढावा दिया जा रहा है। जिसमें संगणकीय भाषाविज्ञान की अहम् भूमिका हो सकती है। संस्कृत भाषा को जनसाधारण तक पहुँचाने हेतु व इसके विकास के लिए आईटी क्षेत्र के विद्वानों ने पिछले कुछ वर्षों से कम्प्यूटर की सहायता से इस क्षेत्र में काफी कार्य किया है। संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान-विज्ञान को सूचना एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से संगणकीय टूल्स बनाकर अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिये आईटी क्षेत्र के विद्वानों के द्वारा पिछले कुछ वर्षों से बहुत सारे अनुसंधान एवं विकास के कार्य किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र को शोध के माध्यम से आगे बढाने में आईआईटी मुम्बई (http://www.iitb.ac.in/), आईआईआईटी हैदराबाद (http://sanskrit.uohyd.ernet.in/), सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ हैदराबाद (http://www.iith.ac.in/), जेएनयू, दिल्ली (http://sanskrit.jnu.ac.in/) आदि प्रमुख संस्थान हैं। भारतीय भाषा प्रसरण एवं विस्तारण केन्द्र (TDIL), इलेक्ट्रानिकी और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग (DeitY), संचार एवं सूचना मन्त्रालय, भारत सरकार भारतीय भाषाओं से सम्बन्धित अनुसंधान एवं विकास के लिये वित्तपोषण प्रदान करता है जिसके तहत संस्कृत भाषा के लिये बहुत सारे टूल्स बनाये गये हैं (http://tdil-dc.in/san)।

भारतीय भाषाओं विशेष रूप से संस्कृत भाषा से सम्बन्धित कार्यों के लिये जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र ने डॉ. गिरीश नाथ झा (http://www.jnu.ac.in/faculty/gngha) के निर्देशन में संस्कृत भाषा से सम्बन्धित बहुत सारे कार्य किये हैं जिनमें से संस्कृत व्याकरण के विभिन्न प्रकरण मुख्य हैं।

सुबन्त विश्लेषक (Chandra, 2006; Jha et al, 2006; Bhadra et al, 2009; Jha et al, 2009; Chandra & Jha, 2011 and Chandra, 2012), यह सिस्टम नियम एवं उदाहरण आधारित है। सुबन्त विश्लेषक सिस्टम बहुत ही उपयोगी सिस्टम है जो किसी वाक्य में सुबन्त की पहचान नियम एवं डेटा के आधार पर करता है अन्तिम पदों जैसे अव्यय एवं क्रिया पद को भी टैग करने के साथ पहचान करके इसका विश्लेषण (प्रकृति प्रत्यय का विभाग) करता है (Chandra, 2006; Jha et al, 2006; Bhadra et al, 2009; Jha et al, 2009; Chandra & Jha, 2011 and Chandra, 2012)।

तिङन्त विश्लेषक (Agrawal, 2007; Jha et al, 2006; Bhadra et al, 2009 and Jha et al, 2009) यह सिस्टम भी नियम उदाहरण आधारित है (Agrawal, 2007 and Bhadra et al, 2009)। यह एक एमफिल शोधकार्य का परिणाम है जिसमें भ्वादिगण की सभी धातुयें शामिल की गई है । भ्वादिगण में आने वाली सभी धातुओं के किसी भी रूप की सबसे पहले पहचान फिर उसका विश्लेषण इस सिस्टम द्वारा किया जाता है।

जे एन यू का कृदन्त विश्लेषक (Singh, 2008 and Murali et al, 2014) भी नियम उदाहरण आधारित सिस्टम है । जो प्रदत्त पदों में कृत् प्रत्ययों की पहचान एवं उसका विश्लेषण करता है। यह सिस्टम भी एमफिल शोधकार्य का परिणाम है।

अन्य कार्य जैसे सन्धि विच्छेदक (Kumar, 2007), कारक विश्लेषक (Mishra, 2007), स्त्रीप्रत्ययान्त विश्लेषक (Bhadra, 2007) तथा सुबन्त निर्मापक सन्धि निर्मापक (Kumar, 2008), तिङन्त निर्मापक (Mishra & Jha, 2007) भी उल्लेखनीय हैं। संस्कृत के लिये स्कूल स्तर पर ऑनलाइन शिक्षण हेतु मल्टीमीडिया आधारित कार्य भी उल्लेखनीय है (Bhaumik, 2009)।

संस्कृत व्याकरण के अतिरिक्त भी इस विभाग ने अन्य कार्यों पर बल दिया है जिसमें संस्कृत ग्रन्थों की ऑनलाइन अनुक्रमणिका (Tiwari, 2011) तथा अमरकोश एवं महाभारत (Tripathi, 2008) सर्च आदि मुख्य हैं। 2006 में इस केन्द्र द्वारा संस्कृत भाषा के लिये एक टैगर विकसित किया गया (Chadrashekar, 2006)। इस केन्द्र का मुख्य उद्देश्य संस्कृत से भारतीय भाषाओं में मशीनी अनुवाद करना है।

संस्कृत भाषा के संरचनात्मक विज्ञान को समझने के लिए *Statistical POS Tagger for Sanskrit: Methods, Modality & Challenge* (तिवारी, 2015) द्वारा एक तंत्र का विकास किया गया है, जिसमें संस्कृत भाषा के क्या अंग होते हैं, उनके विकसित करने की क्या विधि विद्वानों द्वारा अपनायी गयी है, तथा वर्तमान समय में उनकी क्या प्रासंगिकता है तथा इस सन्दर्भ में कौन कौन सी चुनौतियों का सामना करना पड रहा है इत्यादि पक्षों को बडी ही सरलता से इस शोध प्रबन्ध में विश्लेषित किया गया है, इसीके साथ एक तंत्र भी विकसित किया गया है जो इन सभी पक्षों पर कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य शोधकार्य संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं की क्रिया की पहचान को लेकर हुआ है (पाठक, 2015) इस शोध कार्य के द्वारा दोनों भाषाओं के क्रिया पदों के संरचनात्मक एवं आर्थिक पक्ष पर विचार करते हुए अनुवाद करने के लिए यह सिस्टम विकसित किया है। शोध में विषय को स्पष्ट किया गया है तथा एक संगणकीय तंत्र का भी विकास किया गया है जो इन सभी पक्षों पर कार्य करता है तथा साथ ही साथ परिणाम भी दिखाता है। यह शोध-कार्य दोनों भाषाओं में अनुवाद कार्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह शोधकार्य भी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से किया गया है।

संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार समास प्रकरण को आधार बनाकर भी एक शोध कार्य प्राप्त होता है (अग्रवाल, 2015)। इस शोध कार्य में समासों की पहचान एवं प्रसंस्करण करने के लिए मुख्यतः पाणिनि के नियमों को आधार बनाया गया है। शोध कार्य में इस विषय पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया है कि किन-किन नियमों के माध्यम से समासप्रक्रिया सिद्ध होती है तथा कम्प्यूटर उन नियमों तथा उस प्रक्रिया को कैसे समझने में समर्थ होगा। शोधकर्ता ने प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि के नियमों का अनुसरण किया है तथा कम्प्यूटर के लिए एक तंत्र का विकास किया है जिसमें इन्होंने नियम आधारित प्रविधि का प्रयोग किया है जो समास को पहचानने एवं उसकी निर्माण प्रक्रिया किस –प्रकार की यह बताता है। यह सिस्टम 60% से 70% तक शुद्ध परिणाम देने में समर्थ है।

अन्य शोध कार्य संस्कृत व्याकरण के कर्म कारक को आधार बनाकर किया गया है (Bhadra, 2012)। इस शोध प्रबन्ध में शोधार्थी ने एक ऐसे सिस्टम का विकास किया है जो कर्म-कारक वाले वाक्यों की पहचान करता है तथा उनका विश्लेषण करता है।

एक अन्य कार्य संस्कृत भाषा के वाक्य के अंगों को आधार बनाकर किया गया है (Chandrashekhar,2007) यह एक ऐसा सिस्टम है जिसके माध्यम से एक वाक्य में आने वाले सभी भाषा के अंगो को पहचाना जा सकता है, अर्थात् प्रयुक्त वाक्य में क्या कर्ता है, क्या कर्म है, कौन सी क्रिया है तथा क्या विशेषण है क्या विशेष्य है इत्यादि को बडे ही स्पष्ट तरीके से पहचानाता है। एक और शोध-कार्य कारक प्रकरण को आधार बनाकर किया गया है (Mishra,2007)। इस शोध के माध्यम से ऐसे सिस्टम का विकास किया गया है जो सभी कारकों

की पहचान करता है अनुवाद करने में सहायता प्रदान करता है। एक लघुशोध कार्य व्यञ्जन सन्धि को आधार बनाकर किया गया है (Mishra,2009)। इनके द्वारा व्यञ्जन सन्धि को पहचानने के लिए एक सिस्टम का विकास किया गया है जो दिये गये पदों में यह पहचानता है कि इसमें व्यञ्जन संधि है अथवा नहीं। अन्य लघुशोध संस्कृत व्याकरण के कृदन्त प्रकरण को अधार बनाकर किया गया है (Singh,2008) इस शोध के माध्यम से कृदन्त प्रत्ययों की पहचान करने में सरलता होती है। अन्य लघुशोधप्रबन्ध सुबन्त प्रत्ययों को आधार बनाकर किया गया है (Chandra,2006)। प्रस्तुत शोधकार्य के माध्यम से सुबन्तों को पहचानने वाले तथा उनका विश्लेषण करने वाले एक तन्त्र का विकास किया है। यह तंत्र अन्य बनाये गये तंत्रों के लिए भी उपयोगी है।

इस क्षेत्र में हैदराबाद विश्वविद्यालय (http://sanskrit.uohyd.ernet.in/), प्रगत संगणन विकास केन्द्र (cdac.in), आईआईआईटी हैदराबाद, तिरूपति विद्यापीठ, केन्द्रीय भाषा संस्थान, मैसूर का योगदान भी सराहनीय रहा है। हैदराबाद विश्वविद्यालय (http://sanskrit.uohyd.ernet.in/) में संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में बहुत सारे कार्य किये जा रहे हैं। जिनमें संस्कृत समासकर्ता (Kumar et al, 2010 and Kumar et al, 2009) संस्कृत पार्सर (Kulkarni et al, 2010 and Kulkarni et al, 2013) संस्कृत पदविश्लेषक (Bharati et al, 2006) ऑनलाइन अमरकोष (Nair and Kulkarni, 2010) आदि प्रमुख हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने भी इस क्षेत्र में 2014 से शोधकार्य प्रारम्भ किया है। इस विभाग में छन्दों पर आधारित एक प्रोग्राम विकसित किया है (Meena, 2015) जो छन्दों की पहचान करता है तथा विश्लेषण करता है। ऋग्वैदिक अनुक्रमणी (Kumar, 2015) जिसके द्वारा ऋग्वैदिक मन्त्रों एवं ऋषियों छन्द व स्वर इत्यादि की जानकारी अत्यन्त सरलता से प्राप्त की जा सकती है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित बाइसवें वेदान्त कांग्रेस (SCSS, 2015) में इस विभाग द्वारा बहुत से शोधपत्र प्रस्तुत किए गये जिनमें से ई-शिक्षण हेतु छन्द विश्लेषक (Chandra, 2015), सुबन्त रूपसिद्धि (Chandra, Kumar, Kumar & Sakshi, 2015), तिङन्त रूपसिद्धि (Kumar & Chandra, 2015), सनाद्यन्त विश्लेषक (Kumar &

Chandra, 2015), तद्धितान्त विश्लेषक (Sakshi, 2015) आदि प्रमुख हैं (Department of Sanskrit, DU) । ये सभी अनुसंधान पत्र इसी सम्मेलन में प्रस्तुत किये गये हैं तथा सभी पत्र प्रकाशाधीन हैं । इस विभाग का मुख्य उद्देश्य संस्कृत भाषा के ऑनलाईन शिक्षण हेतु टूल्स बनाना है । इस क्षेत्र में संस्कृत ही नहीं अपितु अन्य भाषाओं के लिये छन्द से सम्बन्धित बहुत सारे कार्य प्राप्त होते हैं जिनमें से प्रमुख हैं । संगणीय भाषाविज्ञान के क्षेत्र में समय-समय पर अनेक कार्य हुए है तथा निरन्तर हो भी रहे हैं । वर्तमान समय में पाण्डुलिपियों के डिजिटाइजेशन का कार्य भी अत्यन्त तीव्रता से किया जा रहा है, जिनके द्वारा न केवल संस्कृत की पाण्डुलिपियाँ डिजिटल की जा रही है अपितु अन्य विषयों की भी पाण्डुलिपियाँ डिजिटल की जा रही है जो अन्तर्विषयी शोधकार्य व अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है । यद्यपि इस क्षेत्र में कई कार्य किये गये हैं तथापि स्वतंत्र रूप से तद्धित प्रकरणों को आधार बनाकर कोई कार्य इस क्षेत्र में प्रकाश में नहीं आता है, तथापि तद्धित-प्रत्ययों के कई उपप्रकरणों को आधार बनाकर कार्य किये गये हैं यथा- अपत्याधिकार, मत्वर्थीय इत्यादि प्रकरणों पर अलग अलग कार्य जवाहरलाल विश्वविद्यालय तथा अन्य विश्वविद्यालयों में किया गया है ।

तृतीय अध्याय

संस्कृत सनाद्यन्तों की रूपसिद्धि प्रक्रिया

इस अध्याय में सनादि बारह प्रत्ययों से बनने वाली रूपसिद्धि प्रक्रिया के कुछ महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया गया है। जैसाकि पिछले अध्याय में इसके तीन विभागों का वर्णन किया गया है प्रथम धातुओं से लगने वाले प्रत्यय, द्वितीय धातुओं तथा सुबन्तों दोनों से लगने वाले प्रत्यय तथा केवल सुबन्तों से लगने वाले प्रत्यय। सन्, यङ्, ईयङ्, आय, यक् ये प्रत्यय धातुओं से लगते हैं णिच्, णिङ् ये दोनों प्रत्यय धातु तथा सुबन्त दोनों से होते हैं शेष क्यच्, क्यङ्, काम्यच्, क्यष् तथा क्विप् ये पाचों प्रत्यय सुबन्तों से होते हैं। सर्वप्रथम धातु से लगने वाले प्रत्ययों का क्रमशः वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

धातुओं से लगने वाले सनादि प्रत्ययों की सिद्धि प्रक्रिया

1.1 सन् प्रत्यय

सन् प्रत्यय धातुपाठ में पठित किसी भी धातु से लग सकता है। पाणिनि सूत्रानुसार 'जो इच्छार्थक इष् धातु का कर्म हो और इष् धातु के साथ समानकर्तृक भी हो ऐसी किसी भी धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय विकल्प से होता है[209] । यथा- 'पठितुम् इच्छति' यहाँ पर पठितुम् इच्छार्थक इष् धातु का कर्म है और समानकर्तृक भी है अतः यहाँ पर पठ् धातु से सन् प्रत्यय हो जाता है इस प्रकार सभी धातुओं में जानना चाहिये। सन्प्रत्यय लगने के बाद धातु से कुछ विशेष कार्य होते हैं जैसे- द्वित्व, अभ्यास कार्य, इट्, इट्विकल्प, ये सभी कार्य होने के बाद इच्छार्थ को द्योतित करने वाली सनन्त धातु अस्तित्व में आती है जिससे वाक्यानुसार कर्तृवाच्य में परस्मैपद, आत्मनेपद, या उभयपद, कर्मवाच्य और भाववाच्य में आत्मनेपद के क्रियारूप निष्पन्न होते हैं।

1.1.1 द्वित्वकार्य

[209] धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायाम् वा- अष्टाध्यायी- 3.1.7

सर्वप्रथम सन् प्रत्यय लगने के बाद मुख्य कार्य द्वित्व होता है- यथा=पठ्+सन् = पठ् पठ् + सन् । द्वित्व करते समय जब धातु परे सन्, यङ्, लिट्, चङ् और श्लु प्रत्यय परे होते हैं तो धातुओं को द्वित्व होता है । सामान्यतया द्वित्व प्रकरण में दो प्रकार की धातु होती है हलादि धातु जैसे पठ्, भू, लिख्, जागृ आदि । तथा अजादि धातु- जैसे एध्, इष् आदि ।

i. हलादि धातुओं के प्रथम एकाच्[210] को द्वित्व होता है एक अच् हो जिसमें ऐसे वर्ण समूह को यहाँ एकाच् के नाम से जाना जाता है यथा- पठ् पठ्+सन्, भू भू+सन्, जा जागृ+ सन् ।

ii. अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच्[211] को द्वित्व होता है यथा- ए धि धि +सन्, इ षिषि+सन् आदि । परन्तु अजादि धातुओं में जहाँ कुछ संयोग हल् आ जाते है वहाँ पर कुछ भिन्न व्यवस्था है ऐसे द्वितीय एकाच् के अवयवभूत संयोग हलों में नकार, दकार तथा रेफ को द्वित्व निषेध[212] कहा गया है –

- नकार- उन्दि धातु से उत्तर सन् रहते 'उन्दि+स' इस स्थिति में नकार सहित दकार द्वितीय एकाच् में आता है परन्तु नकार के द्वित्व का निषेध होने के कारण से 'उन् दि दि+स' ऐसा द्वित्व होता है ।
- दकार-'अद्ड अभियोगे' धातु से सन् प्रत्यय करने पर 'अद्ड+स' यहाँ यह धातु दकारोपध है अतः द्वितीय एकाच् द्ड को द्वित्व की प्राप्ति में दकार निषेध होने के कारण से 'अद् डि डि+स' ऐसा द्वित्व होता है ।
- रेफ- ऊर्णुञ् आच्छादने धातु से सन् प्रत्यय करने पर 'ऊर्णु+स' इस स्थिति में द्वितीय एकाच् में र्णु द्वित्व होना चाहिये परन्तु रेफ को द्वित्व निषेध होने के कारण से 'ऊर् णु णु+स' ऐसा द्वित्व होता है ।
- ईर्ष्य धातु से एकाच् के तृतीय को द्वित्व कहा है यहाँ पर कुछ विद्वानों का मानना है कि एकाच् के तृतीय व्यञ्जन को द्वित्व होता है तथा कुछ का मत है कि तृतीय एकाच् को द्वित्व होता है । तृतीय व्यञ्जन के रूप में 'यकार' को द्वित्व की प्राप्ति होती है ईर्ष्य् यि यि +स= ईर्ष्यियिष । तथा तृतीय एकाच् को द्वित्व पक्ष में 'सकार को द्वित्व होता है ईर्ष्यि ष ष=ईर्ष्यिष ।

धातु अवयव के द्वित्व हो जाने पर जिनका द्वित्व होता है उसमें प्रथम वाले भाग को अभ्यास[213] सञ्ज्ञा के नाम से जाना जाता है तथा द्वित्व समुदाय की अभ्यस्त[214] सञ्ज्ञा होती है । अभ्यास सञ्ज्ञा होने के पश्चात् कुछ सामान्य अभ्यास कार्य भी होते हैं जो निम्न प्रकार हैं ।

---

[210] एकाचो द्वे प्रथमस्य- अष्टाध्यायी- 6.1.1

[211] अजादेर्द्वितीयस्य-अष्टाध्यायी- 6.1.2

[212] नन्द्राः संयोगादयः –अष्टाध्यायी- 6.1.3

[213] पूर्वोभ्यासः- अष्टाध्यायी- 6.1.4

[214] उभे अभ्यस्तम्- अष्टाध्यायी- 6.1.5

1.1.2 अभ्यास कार्य

- अनादिहल् लोप
- अभ्यास में खय् शेष
- अभ्यास को ह्रस्व
- अभ्यास को चवर्गादेश
- अभ्यास में चरादेश तथा जशादेश

1.1.2.1 अनादिहल् लोप[215]

द्वित्व करने के पश्चात् अभ्यास संज्ञक का आदि हल् शेष रहता है तथा जितने भी अनादि हल् होते हैं उनका लोप हो जाता है। यथा- पठ् पठ् में प्रथम पकार हल् शेष रहा करता है और जो अनादि हल् ठकार है उसका लोप हो जाता है।

निज् निज्= नि निज्

खाद् खाद्= खा खाद्

जन् जन्= ज जन्

1.1.2.2 अभ्यास में खय् शेष[216]

अभ्यास में विद्यमान धातु यदि शर् प्रत्याहार पूर्व वाली हो तथा उसके अनन्तर खय् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो इस स्थिति में अभ्यास में खय् प्रत्याहार का वर्ण शेष रहता है इस प्रकार यह हलादि शेष का अपवाद होता है। यथा-

स्पर्ध् स्पर्ध्= पस्पर्ध्

स्फूर्ज् स्फूर्ज्= फूस्फूर्ज्

स्तिघ् स्तिघ्= तिस्तिघ्

1.1.2.3 अभ्यास को ह्रस्व[217]

द्वित्व होने के पश्चात् जिसकी अभ्यास संज्ञा होती है उसको ह्रस्व होता है तथा अभ्यास को ह्रस्व करते समय एच् के स्थान पर इक् ही ह्रस्व होता[218] है यथा-

---

[215] हलादि शेषः- अष्टाध्यायी- 7.4.60

[216] शर्पूर्वा खयः –अष्टाध्यायी- 7.4.61

[217] ह्रस्वः- अष्टाध्यायी- 7.4.59

खा खाद्= खखाद्

नी नी= नि नी

लू लू= लु लू

1.1.2.4 अभ्यास को चवर्गदिश[219]

अभ्यास के कवर्ग तथा हकार को चवर्गादेश होता है यह आदेश यथासंख्य करके होता है। क>च, ख>छ, ग> ज, घ>झ, ङ>ञ, ह>झ इस प्रकार अभ्यास में वर्ण परिवर्तन होता है-

गम् गम्= ज गम्

हृ हृ= जहृ

कृ कृ= चकृ

1.1.2.5 अभ्यास में चरादेश तथा जशादेश [220]

अभ्यास में वर्तमान वर्ग के चतुर्थ वर्ण को उसी वर्ग का तृतीय वर्ण हो जाता है जिसे सूत्र में जश् प्रत्याहार के नाम से कहा गया है तथा वर्ग के द्वितीय वर्ण के स्थान पर उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है जिसे सूत्र में चर प्रत्याहार के नाम से कहा गया है यथा-

छ खन्= चखन्

भु भू=बुभू

फ फण्= पफण्

झ झर्झ= जझर्झ

1.1.3 सेट्/ अनिट्

इसी प्रकार धातु से जब सन् प्रत्यय आता है तो सन् के आर्धधातुक[221] संज्ञक होने के कारण से उपदेश में पठित सेट् धातुओं को इडागम होता है तथा अनिट् धातुओं को इडागम नहीं होता है। यथा पिपठिष, लिलेखिष, बुभूष, सुषुप्स आदि सनन्त धातुएँ बनती हैं इस प्रकार सनन्त होने के बाद

---

[218] एच् इग्घ्रस्वादेशे- अष्टाध्यायी-1.1.48

[219] कुहोश्चु- अष्टाध्यायी-7.4.62

[220] अभ्यासे चर्च- अष्टाध्यायी-8.4.54

[221] आर्धधातुकं शेषः- अष्टाध्यायी-3.4.114

इनकी धातु संज्ञा होती है। धातु संज्ञा होने के बाद कालक्रमानुसार लकारों में क्रियारूपों का निर्माण होता है।

भू सत्तायाम्	भूवादयो धातवः सूत्र से भू से लेकर चुरादिगण पर्यन्त धातुपाठ में जितने भी क्रियावाची शब्द पढे हैं उनकी धातु संज्ञा होती है
भू	धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायाम् वा सूत्र से सन् प्रत्यय होता है प्रत्ययः परश्च प्रत्यय जिससे (धातु या प्रातिपदिक) विधान किया जाता है उससे परे होता है
भू+सन्	हलन्त्यम् सूत्र के द्वारा अन्तिम् हल् नकार की इत्सञ्ज्ञा हुई, तत्पश्चात् तस्य लोपः सूत्र के द्वारा इत्सञ्ज्ञक नकार का लोप होता है। अदर्शनं लोपः सूत्र ने बताया कि अदर्शन की लोप सञ्ज्ञा होती है।
भू+ स	आर्धधातुकं शेषः सूत्र के द्वारा सन् प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा हुई, आर्धधातुकस्येड वलादेः सूत्र से सन् के वल प्रत्याहार के अन्तर्गत आने के कारण से इट् आगम की प्राप्ति हुई, परन्तु सनिग्रहगुहोश्च सूत्र के द्वारा इट् का निषेध
भू+ स	सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र के द्वारा गुण की प्राप्ति होती है तथा- इको झल् सूत्र के द्वारा झलादि सन् को कित्वत् कर दिया जाता है जिस कारण क्ङिति च सूत्र इस अवस्था में गुण का निषेध कर देता है
भू+ स	सन्यङो सूत्र के द्वारा द्वित्व की प्राप्ति होती है एकाचोद्वेप्रथमस्य सूत्र के द्वारा धातु के एकाच् अवयव भू को द्वित्व हुआ
भू+भू+ स	पूर्वोभ्यासः सूत्र के द्वारा प्रथम भू की अभ्यास सञ्ज्ञा होकर, हलादि शेषः सूत्र के द्वारा अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है तथा अनादि हल् का लोप् हो जाता है ह्रस्वः सूत्र के द्वारा दीर्घ ऊकार को ह्रस्व उकार हुआ
भु+ भू+ स	अभ्यासे चर्च सूत्र के द्वारा अभ्यास झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले भकार के स्थान पर जश्त्व यानी बकारादेश हुआ
बुभू+स	आदेश प्रत्यययोः सूत्र के द्वारा प्रत्यय सन् के सकार के स्थान पर षकारादेश हुआ

बुभूष	सनाद्यन्ता धातवः सूत्र के द्वारा सनन्त बुभूष शब्द की धातु सञ्ज्ञा होकर
बुभूष	शेष प्रक्रिया कुछ विशेष नही है।

1.1.4 लिट् लकार में होने वाले प्रमुख कार्य

सनन्त रूप बनने के बाद सभी लकारों की रूपसिद्धि प्रक्रिया सामान्य लकारों के समान ही चलती है परन्तु लिट् लकार की प्रक्रिया में विशेष प्रक्रिया के दर्शन होते हैं लिट् लकार परोक्षभूतकाल के लिए प्रयुक्त होता है[222] जिसमें सन्नन्तरूप प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् एक विशेष प्रकार का परिवर्तन देखने में आता है जिसमें सनन्त रूप के बाद आम[223] प्रत्यय आता है तथा कृ, भू तथा अस् धातु का प्रयोग होता है[224] अतः इस लकार में सामान्यतः बनने वाले 9 रूपों के स्थान पर कम से कम 9x3=27 रूप बनते हैं इस प्रक्रिया के अन्तर्गत बनने वाले रूपों का प्रारुप निम्न प्रकार हैं- बुभूषाम्बभूव, बुभूषाञ्चकार, बुभूषामास। इसी क्रम में लिट् लकार की एक प्रक्रिया उदाहरण स्वरूप निम्नवत् है-

बुभूषाञ्चकार

बुभूष	सनाद्यन्ता धातवः सूत्र से धातु सञ्ज्ञा होने के पश्चात् परोक्षे लिट् सूत्र से अनद्यतन परोक्षभूतार्थ में वर्तमान बुभूष धातु से लिट् प्रत्यय हुआ, प्रत्ययः परश्च।
बुभूष+ लिट्	अनुबन्ध लोप, तत्पश्चात् कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि सूत्र से सन्प्रत्ययान्त बुभूष धातु से लिट् परे रहते आम् प्रत्यय हुआ।
बुभूष+आम्+ल्	आर्धधातुकं शेषः3.4.113 से 'आम्' प्रत्यय की आर्धधातुक सञ्ज्ञा होती है। आर्धधातुक सञ्ज्ञा के फलस्वरूप 'आर्धधातुके' 6.4.46 सूत्र के अधिकार में, अतो लोपः सूत्र से सन् के अकार का लोप होता है
बुभूष्+आम्+ल्	आमः 2.4.81 सूत्र से आम् से उत्तर लकार का लुक् होता है
बुभूषाम्	प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः सूत्र से प्रत्यय के अदर्शन की लुक्, श्लु तथा लुप ये तीन

[222] परोक्षे लिट्- अष्टाध्यायी-3.2.115

[223] कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि- अष्टाध्यायी-3.1.35

[224] कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि-अष्टाध्यायी-3.1.40

	सञ्ज्ञाएँ होती हैं। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् सूत्र से लुक् प्रत्यय को प्रत्यय के समान मानकर, कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होकर, ङ्याप्प्रातिपदिकात् सूत्र के अधिकार में, स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् सूत्र से २१ प्रत्यय प्राप्त हुए जोकि प्रत्ययः परश्च से बुभूषाम् से परे होते हैं।
बुभूषाम्+ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्	सुपः १-४-१०२ सूत्र से तीन-तीन के समुदाय की क्रमशः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन संज्ञा होती है। विभक्तिश्च १-४-१०३ सूत्र से सु, औ, जस्/ अम्, औट्, शस्/ टा, भ्याम्, भिस् इस प्रकार २१ प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा हुई प्रातिपदिकार्थलिङ्परिमाणवचनमात्रे प्रथमा २-३-४६ सूत्र से प्रथमाविभक्ति की विवक्षा में सु, औ, जस् ये तीन प्रत्यय प्राप्त हुए
बुभूषाम्+ सु, औ, जस्	द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १.४.२२ सूत्र से एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय हुआ। प्रत्ययः परश्च।
बुभूषाम्+ सु	कृन्मेजन्तः सूत्र से 'बुभूषाम्' इस मकारान्त शब्द की अव्यय सञ्ज्ञा होकर, तत्पश्चात् अव्ययादाप्सुपः सूत्र से सु प्रत्यय का भी लुक् हो गया।
बुभूषाम्	परोक्षे लिट्, कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि सूत्र से कृ धातु का अनुप्रयोग[225] हुआ। तथा लिट् च सूत्र से लिट् आर्धधातुक सञ्ज्ञक हुआ।
बुभूषाम्+कृ+लिट्	कृ का अनुप्रयोग करने से बुभूषाञ्चकार रूप बनता है।

1.1.5 अन्य विशेष कार्य

इस प्रकार से सभी धातुओं से सन् प्रत्यय लगने के बाद सनन्त धातु बनने तक की प्रक्रिया बुभूष के समान चलती परन्तु कुछ विशेष स्थानों पर कुछ परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं अतः इन परिवर्तनों पर भी थोडा सा ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है-

[225] यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि कृञ् से प्रत्याहार का ग्रहण किया गया है जोकि 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' सूत्र से लेकर 'कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ' तक का ग्रहण किया जाता है जिससे क्रमानुसार कृ, भू तथा अस् धातु का अनुप्रयोग होता है।

यथा- अत्तुम् इच्छति, अद भक्षणे> धातु से सन् प्रत्यय लगने के पश्चात् अदिदिषति ऐसा रूप बनना चाहिये था परन्तु बनता जिघत्सति है। इसकी प्रक्रिया निम्नवत् है-

अद	धातु से बुभूष के समान ही सन् प्रत्यय आता है तत्पश्चात् सन् प्रत्यय के आर्धधातुक होने के कारण से लुङ्सनोर्घस्लृ सूत्र से घस्लृ आदेश होता है
घस्लृ+सन्=घस्+स	वलादि आर्धधातुक सन् के परे प्राप्त इट् का निषेध[226], सः स्यार्धधातुके सूत्र से आर्धधातुक सकार के परे रहते घस् के सकार को तकारादेश होता है
घत्+स	पूर्ववत् द्वित्वादि, अभ्यासादि कार्य होकर।
जिघत्स	सनाद्यन्ता धातवः से धातु सञ्ज्ञा होकर शेष तिबादिकार्य बुभूषति के समान ही होंगे।

इसी प्रकार अभ्यास को द्वित्व करते समय एक विशेष रूप सामने आता है सामान्यतया सन् प्रत्यय परे रहते धातु के प्रथम एकाच को या अजादि होने पर द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है परन्तु ईर्ष्य धातु से सन् करने पर-

ईर्ष्य+इट्+सन्	इस स्थिति में ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवतः इति वक्तव्यम्[227] इस वार्तिक द्वारा तृतीय को द्वित्व होता है यहाँ कुछ विद्वान् तृतीय व्यञ्जन को तो कुछ तृतीय स्वर का द्वित्व करते हैं।
ईर्ष्यियिष+तिप्	तृतीय व्यञ्जन पक्ष में यह धातु होगी तथा
ईर्ष्यिषिष+तिप्	तृतीय स्वर पक्ष में यह धातु होती है शेष प्रक्रिया पूर्ववत् रहेगी।

1.1.5.1 सेट् वा अनिट् सन् का कित्व

- कुछ सेट् धातुओं से परे सन् को कित् कहा है जिससे इट् को प्राप्त गुण का निषेध एवं सम्प्रसारण आदि कार्य किया जा सके।

  रुद्+सन्=रुरुदिष

[226] एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् –अष्टाध्यायी-7.2.10

[227] काशिका- 6.1.3

विद्+सन्=विविदिष

मुष्+सन्=मुमुषिष

इन तीनों धातुओं से सन् होने पर कित्[228] हो जाने से गुण[229] नहीं होता है ।

- ग्रह उपादाने> जिघृक्षति[230]

ग्रह्+सन्	आर्धधातुक सन् के परे रहते इडागम् की प्राप्ति का निषेध[231] होता है । कित्सन् परे रहते ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च सूत्र द्वारा सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च,
गृह्+स	हो ढः सूत्र से हकार के स्थान पर ढकारादेश[232] होकर,
गृढ्+स	षढो कः सि से ढकार को कवर्गादेश, भष्भाव[233] होकर, द्वित्व, अभ्यास कार्य होकर
जिघृक्+स	आदेश प्रत्ययों से सकार को षकारादेश होकर
जिघृक्ष	सनाद्यन्त धातु निष्पन्न होती है पश्चात् तिबाद्युत्पत्ति होकर

- ञिष्वप शये[234]> सुषुप्सति, स्वपि=सन् वचिस्वपियजादीनां किति सूत्र से सम्प्रसारण, वकार को उकारादेश होकर सुप्+स द्वित्वादि कार्य होकर, मूर्धन्यादेश 'सुषुप्स' ऐसी सनन्त धातु बनती हैं
- प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्[235]> पिपृच्छिषति

प्रच्छ्+सन्	धातु से सन् प्रत्यय के बाद सन् का किद्वद्भाव होकर, कित्कारण से रेफ को सम्प्रसारण ऋकार होता है ।
पृच्छ्+स	धातुपाठ में अनिट् पाठ के कारण इट् की अप्राप्ति में किरश्च पञ्चभ्यः सूत्र

---

228 रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च– अष्टाध्यायी- 1.2.8

229 पुगन्तलघूपधस्य च –अष्टाध्यायी- 7

230 क्र्यादिगण

231 सनिग्रहगुहोश्च- अष्टाध्यायी- 7.2.12

232 ढकार के पश्चात् यहाँ पर भष्भाव की एकचो बशो० से होती है परन्तु षढोः कः सि से ढकार को ककारादेश हो जायेगा और आदेश प्रत्यययोः सूत्र से षत्व हो जाने पर झषन्त के अभाव में भष्भाव नहीं हो पायेगा । इसका समाधान यह है कि सनःषत्वस्यासिद्धत्वाद्भष्भावः वार्तिक से षत्व असिद्ध होने से भष्भाव हो जायेगा ।

233 एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः- अष्टाध्यायी-8.2.37

234 अदादि गण

235 तुदादिगण

	से इडागम् होता है।
पृच्छ+इट्+सन्	द्वित्व, अभ्यास आदि कार्य होकर
पिपृच्छिष	यह सनाद्यन्त धातु निष्पन्न होती है, शेष प्रक्रिया पूर्ववत् होकर
पिपृच्छिषति	

1.1.5.2 इट् विधान-

कुछ अनिट् धातुओं को सन् परे रहते इट्[236] का विधान भी प्राप्त होता है जिससे प्रच्छ>पिपृच्छिषति । कृ विक्षेपे> चिकरिषति । गृ निगरणे>जिगरिषति, जिगलिषति । दृङ् आदरे>दिदरिषते। धृङ् अनवस्थाने[237]> दिधरिषते। इत्यादि रूप निष्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार इगन्त धातुओं से परे झलादि सन् को कित्[238] कहा गया है जिससे इगन्त धातु से इक् के स्थान पर गुणादि कार्य नहीं होते है- बुभूषति, चिचीषति, तुष्टूषति इत्यादि।

कुछ धातुओं के हलन्त[239] होते हुए भी अगर वे धातु इक् की समीपवर्ती है उनसे भी झलादि सन् को कित् कहा है– भिदिर् विदारणे[240]>बिभित्सति, बुभुत्सते, गुहू संवरणे[241]>जुघुक्षति इत्यादि।

1.1.5.3 अभ्यास से उत्तर्वर्ती वर्ण का परिवर्तन-

सन् प्रत्यय के अभ्यास से उत्तरवर्ती वर्णों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

हन् हिंसागत्योः[242] > जिघांसति[243]।

हि> प्रजिघीषति[244], प्रजिघिषते।

जि जये[245]> जिगीषति[246]। विजिगीषते, पराजिगीषते[247]।

---

[236] किरश्च पञ्चभ्यः- अष्टाध्यायी- 7.2.75

[237] तुदादिगण

[238] इकोझल्- अष्टाध्यायी- 1.2.9

[239] हलन्ताच्च- अष्टाध्यायी- 1.2.10

[240] रुधादिगण

[241] भ्वादिगण

[242] अदादिगण

[243] अभ्यासाच्च- अष्टाध्यायी-7.3.55

[244] हेरचङि- अष्टाध्यायी-7.3.56

[245] भ्वादिगण

चिञ् चयने[248]> चिचीषति[249], चिकीषति ।

1.1.5.4 धात्वादेश

सन् प्रत्यय परे रहते कुछ धातुएँ अपने पूर्ण स्वरूप को ही परिवर्तित कर देती हैं ये धातुएँ जब विशेष अर्थों को प्रदर्शित करती हैं तो अर्थ के साथ – साथ इनके स्वरूप में भी परिवर्तन देखा जाता है यथा-

इण् गतौ[250]+सन्= गम्> जिगमिषति[251] ।

इक् +सन्= गम्> अधिजिगमिषति[252] ।

इङ् अध्ययने[253]+सन्=गम्> अधिजिगांसते[254] ।

1.1.5.5 वैकल्पिक कित्व विधान-

अब धातुपाठ में पठित सेट धातुओं को भी विकल्प से कित्व[255] कहा गया है उन धातुओं में निम्न योग्यता होनी चाहिए-

- धातु की उपधा में उकार या इकार हो ।
- धातु हलादि होनी चाहिए ।
- धातु के अन्त में रल् प्रत्याहार का कोई वर्ण विद्यमान होना चाहिए ।
- सन् परे रहते धातु को इट् हो चुका हो यानी धातुपाठ में सेट् धातुओं में परिगणना हो ।

इस प्रकार की धातुओं से सन्परक इट् परे रहने पर कित् विकल्प से होता है अतः कित्व पक्ष में गुणनिषेध होता है और कित्व विकल्प में गुण हो जाता है जिस कारण से प्रत्येक धातु के दो-दो सनन्त धातुओं का निर्माण सम्भव होता है यथा-

द्योतितुमिच्छति= द्युत् दीप्तौ[256]>दिद्युतिषते, दिद्योतिषते ।

---

[246] सन्लिटोर्जेः- अष्टाध्यायी-7.3.57

[247] विपराभ्यां जेः, अष्टाध्यायी-1.3.19

[248] स्वादिगण

[249] विभाषा चेः- अष्टाध्यायी-7.3.58

[250] अदादिगण

[251] सनि च – अष्टाध्यायी-2.4.47

[252] इण्वदिकः (वार्तिक)

[253] अदादिगण

[254] इङश्च- अष्टाध्यायी-2.4.48

[255] रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च- अष्टाध्यायी- 1.2.26

[256] भ्वादिगण

द्युत्+इट्+सन्	द्वित्व, अभ्यास आदि कार्य होकर
द्युत् द्युत्+इ+स	इस अवस्था में हलादि शेषः की प्राप्ति में द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् सूत्र से अभ्यास में यकार को सम्प्रसारण होकर इकार होता है
दित् द्युत्+इ+स	पुनः हलादि शेषः से आदि हल् के शेष रहने पर
दिद्युतिष	यह सनन्त धातु प्राप्त होती है कित्व पक्ष में
दिद्योतिष	यह रूप कित्विकल्प पक्ष में बनता है

लेखितुमिच्छति= लिख अक्षरविन्यासे[257]> इट्+सन्= लिलिखिषति, लिलेखिषति ।

रोचितुमिच्छति= रुच दीप्तावभिप्रीतौ[258] च>इट्+सन्= रुरुचिषते, रुरोचिषते ।

1.1.5.6 सन् को विकल्प इडागम

कुछ धातुएँ ऐसी प्राप्त होती हैं जिनको धातुपाठ में अनिट् पढा गया है परन्तु उनको सन् परे रहते इडागम किया जाता है उनके कुछ रूप प्रदर्शित किये जा रहे हैं-

इवन्त, ऋध्, भ्रस्ज्, दम्भ्, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञप्, सन् इन से परे यदि सन् हो तो इट् विकल्प से होता है[259] । अतः दो-दो रूप यहाँ भी देखने को मिलते हैं-

धातु	इट् पक्ष	अनिट् पक्ष
इवन्त धातु = देवितुमिच्छति = दिव्[260] + सन्, सेवितुमिच्छति=षिव्+सन्	दिदेविष सिसेविष	दुद्यूष[261] सुस्यूष

1.1.5.7 अभ्यासलोप विधान-

---

[257] तुदादिगण

[258] भ्वादिगण

[259] सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयुर्णुभरज्ञपिसनाम्- अष्टाध्यायी-7.2.49

[260] दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु, दिवादिगण-7.2.49

[261] अनिट् पक्ष में 'दिव्+स' इस स्थिति में धातु के वकार को च्छ्वोः शूडनिनासिके च सूत्र से ऊठ् आदेश होकर 'दि उ+स' इकोयणऽचि से यणादेश होकर द्यूस बनता है।

आप्तुमिच्छति=आप्लृ व्याप्तौ[262]> ईप्सति

आप्+सन्	आप्ज्ञप्यृधामीत् सूत्र से सकारादि सन् परे रहते आकार के स्थान पर दीर्घ ईकारादेश होकर
ईप्+स	इस स्थिति में सन्यङो से द्वित्व करते समय अजादेर्द्वितीयस्य से द्वितीय एकाच् प्स को द्वित्व होगा
ई प्स प्स	शेष अभ्यासादि कार्य होकर
ई प प्स	इस स्थिति में अत्र लोपोऽभ्यासस्य सूत्र से अभ्याससञ्ज्ञक पकार का लोप होता है
ईप्स	इस प्रकार ये सनन्त धातु प्राप्त होता है

अर्धितुमिच्छति= ऋधु वृद्धौ[263] अर्दिधिषति, ईर्त्सति

ऋध्+इट्+सन्	इट् परे रहते गुण होकर,
अर्ध्+इ+स	द्वित्व करते समय अजादेर्द्वितीयस्य से द्वितीय एकाच् 'र्धिस्' को द्वित्व की प्राप्ति होती है परन्तु नन्द्राः संयोगादयः से रेफ को छोडकर 'धिस्' ऐसा द्वित्व होता है
अ धिस्+धिस=अर्दिधिष	शेष अभ्यासादि कार्य होकर 'अर्दिधिष' ऐसी सनन्त धातु प्राप्त होती है

ऋध् +सन्	अनिट् पक्ष में आप्ज्ञप्यृधामीत् सूत्र से सकारादि सन् परे रहते आकार के स्थान पर दीर्घ ईकारादेश उरण रपरः से ईकार रपर वाला होकर, तथा खरि च से धकार को तकारादेश
ईर्त्+स	द्वित्व करते समय अजादेर्द्वितीयस्य से द्वितीय एकाच् 'र्त्स' को द्वित्व की प्राप्ति होती है परन्तु नन्द्राः संयोगादयः से रेफ को छोडकर 'त्स' ऐसा द्वित्व होता है
ईर् त्स त्स	अभ्यासादि कार्य होने पर अत्र लोपोऽभ्यासस्य सूत्र से अभ्याससञ्ज्ञक तकार का लोप होता है

[262] स्वादिगण

[263] दिवादिगण तथा स्वादिगण

ईर्त्स	इस प्रकार ये सनन्त धातु प्राप्त होता है

1.1.5.7 रमागम

भ्रष्टुमिच्छति= भ्रस्ज पाके[264] बिभ्रज्जिषति/ते, बिभर्जिषति/ते, बिभ्रक्षति/ते, बिभर्क्षति/ते

भ्रस्ज+स	विकल्प से इट् होकर
भ्रस्ज+इस	भ्रस्जो रोपधेयो रमन्यतरस्याम् सूत्र से रमागम होता है यह रमागम रेफ और उपधा दोनों के स्थान पर होता है रेफ में अकार उच्चारणार्थ है
भ रम् ज+इस=भर्जिस्	अभ्यासादि कार्य होने पर
बिभर्जिष	इस प्रकार ये सनन्त धातु प्राप्त होता है

इसी प्रकार अनिट् पक्ष में भी बिभर्क्ष ऐसी सनन्त धातु प्राप्त होती है तथा रमागम नहीं होने पर बिभ्रज्जिष, बिभ्रक्ष ऐसा रूप बनता है। यह धातु स्वरितेत् पठित होने के कारण से उभयपदी है इट्, तदभाव तथा दोनों अवस्थाओं में भ्रस्जो रोपधेयो रमन्यतरस्याम् सूत्र से रमागम होने के कारण से चार रूप परस्मैपद के और चार रूप आत्मनेपद के बनते हैं इस प्रकार एक धातु के आठ रूप प्राप्त होते हैं

दम्भितुमिच्छति= दम्भु दम्भे[265] दिदम्भिषति, धिप्सति, धीप्सति

- दम्भ+इट्+सन्= दिदम्भिष, ऐसी सनन्त धातु इट् पक्ष में सामान्य प्रक्रिया से प्राप्त होती है। परन्तु अनिट् पक्ष में दम्भ+सन् दम्भ इच्च[266] सूत्र से दकारोत्तर्वर्ति ह्रस्व अकार के स्थान पर ह्रस्व इकारादेश होता है 'दिम्भ्+स' इस स्थिति में किद्वद्भाव[267] होकर तथा मकार का लोप[268] होता है

[264] तुदादिगण

[265] स्वादिगण

[266] अष्टाध्यायी-7.4.56

[267] हलन्ताच्च- अष्टाध्यायी-1.2.10

[268] अनिदितां हल उपधाया क्ङिति- अष्टाध्यायी-6.4.24

'दिभ्+स'> दिभ्+दिभ्+स, अभ्यासलोप[269] होकर दिभ्+स ऐसा रहा अब भष्भाव[270] होकर धिभ्+स तथा चर्त्व[271] होकर धिप्+स= धिप्स, ऐसा सनन्त रूप प्राप्त होता है।

- अनिट् पक्ष में ही दूसरा पक्ष में 'दम्भ+स' को दम्भ इच्च से ह्रस्व अकार के स्थान पर दीर्घ ईकारादेश होता है धीप्स ऐसी सनन्त धातु प्राप्त होती है शेष प्रक्रिया धिप्स के समान ही है।

श्रयितुमिच्छति=श्रिञ् सेवायाम्[272] शिश्रयिषति/ शिश्रीषति

- इट् पक्ष में इकारान्त होने के कारण गुण तथा अयादेश होकर शिश्रयिष सनन्त धातु बनती है तथा अनिट् पक्ष में कित्[273] होने से गुण निषेध[274] तथा दीर्घत्व[275] होकर शिश्रीष सनन्त धातु बनती है यह धातुपाठ में स्वरितेत् पढी होने के कारण उभयपदी है अतः सेट्, अनिट् पक्ष में तथा अत्मनेपद एवं परस्मैपद में कुल चार क्रियारूप बनते हैं।

स्वरितुमिच्छति= स्वृ शब्दोपतापयोः[276] >सिस्वरिषति, सुस्वूर्षति

- यहाँ स्वृ+सन् स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा सूत्र से वैकल्पिक इट् की प्राप्ति होती है परन्तु सनिग्रहगुहोश्च सूत्र से प्राप्त इट् का निषेध होता है इस स्थिति में पुनः सनीवन्तर्ध० सूत्र से विकल्प से इट् होता है 'स्वृ+इट्+स' =सिस्वरिष,
- अनिट् पक्ष में 'स्वृ+स' सन् परे रहते दीर्घ[277] तथा दीर्घ ऋकार के स्थान पर उदोष्ठ्य पूर्वस्य सूत्र से ह्रस्व उकारादेश रपर होकर 'स्वुर्+स= सुस्वूर्ष, शेष प्रकिया सामान्य है।

यवितुमिच्छति=यु मिश्रणेऽमिश्रणे च[278]>यियविषति, युयूषति

---

[269] अत्रलोपोऽभ्यासस्य- अष्टाध्यायी-7.4.58

[270] एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः- अष्टाध्यायी-8.2.37

[271] खरि च- अष्टाध्यायी-8.4.44

[272] भ्वादिगण

[273] इको झल्-अष्टाध्यायी- 1.2.9

[274] क्ङिति च-अष्टाध्यायी- 1.1.5

[275] अज्झन्गमां सनि –अष्टाध्यायी-6.4.16

[276] भ्वादिगण

[277] अज्झन्गमां सनि –अष्टाध्यायी-6.4.16

- इट् पक्ष में 'यु+इ+स' इस अवस्था में गुण प्राप्ति का द्विर्वचनेऽचि से द्वित्व की कर्तव्यता में गुण निषेध होकर 'यु यु+इस' द्विवचन होने के पश्चात् ओः पुयण्ज्यपरे सूत्र से अभ्यास के उकार के स्थान पर इकारादेश होता है। यियु+इस' पश्चात् गुणादि कार्य होकर 'यियविष' ऐसा सनन्त धातु बनता है।

ऊर्णवितुमिच्छति= ऊर्णुञ् आच्छादने[279]> ऊर्णुनविषति, ऊर्णुनुविषति ऊर्णुनूषति । प्रोर्णुनविषति, प्रोर्णुनूषति।

- इट् पक्ष में 'ऊर्णु+इ+स' इस अवस्था में अजादि होने से द्वितीय एकाच् को द्वित्व करने में नन्द्राः संयोगादय सूत्र से रेफ का द्वित्व नहीं होता है इस कारण द्वित्व करते समय णत्व के निमित्तक रेफ के पृथक् हो जाने के कारण नैमित्तिक णकार भी अपने मूल नकाररूप में आ जायेगा[280] । इस प्रकार 'ऊर् नु नु इस= ऊर्णुनविष' विभाषोर्णोः[281] सूत्र से ङिद्वद्भाव नहीं होने के कारण गुण होकर ऐसा सनन्त धातु प्राप्त होता है।
- इट् पक्ष में ही 'ऊर्णुनु+इस' इस अवस्था में विभाषोर्णोः से वैकल्पिक ङिद्वद्भाव होकर उवङ् आदेश होकर ऊर्णुनुविष' ऐसा सनन्त रूप प्राप्त होगा। अनिट् पक्ष में कुछ भी विशेष नहीं है।
- ञित् होने के कारण से यह धातु उभयपदी है जिस कारण सनन्त में भी इन तीन के छ रूप चलेंगे।

भर्तुमिच्छति= भृञ् भरणे> बिभरिषति, बुभूर्षति

- सम्पूर्ण प्रक्रिया स्वृ के समान ही चलेगी। केवल ञित् होने के कारण से उभयपद होगा जिससे दो के स्थान पर चार सनन्त धातु प्राप्त होती है।

मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा[282]= ज्ञप् जिज्ञपयिषति, ज्ञीप्सति

ज्ञा	हेतुमति च सूत्र से हेतुमत् णिच् प्रत्यय परे होकर
ज्ञा+णिच्	अनुबन्ध लोप होने के पश्चात्

[278] अदादिगण

[279] अदादिगण

[280] निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापिऽपायो भवति। परिभाषिक

[281] अष्टाध्यायी-1.2.3

[282] भ्वादिगण

	णिच् परे रहते पुक्[283] आगम् होकर
ज्ञा+पुक्+इ	यह धातुपाठ में घटादिगण में पठित होने के कारण से घटादयों मितः सूत्र से मित्सञ्ज्ञक हुआ । अतः मितां ह्रस्वः से ह्रस्व होता है । ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घलुतः से ह्रस्व सञ्ज्ञा ।
ज्ञप्+इ+इट्+सन्= ज्ञपयिष	यह सेट् विकल्प[284] पक्ष में बनता है द्वित्व होकर
जिज्ञपयिष	
ज्ञप्+इ+सन्	इस अनिट् पक्ष में, णेरनिटि से णिच् वाले इकार का लोप होकर
ज्ञप्+स	आप्ज्ञप्यृधामीत् से ज्ञप में विद्यमान अकार के स्थान पर ईकारादेश होने पर
ज्ञीप्स	अब द्वित्वादि कार्य होकर,
ज्ञिप् ज्ञीप्स	अभ्यासलोप आदि कार्य होकर
ज्ञीप्स	ऐसा सनन्त धातुरूप प्राप्त होता है

सनितुमिच्छति>षण् सम्भक्तौ, षणु दाने= सिसनिषति, सिषासति

- यहाँ पर ये दोनों धातुओं के रूप हैं धात्वादेः षः सः से षकार को सकारादेश होता है । और निमित्तिआपाये नैमित्तिकस्याप्यपायः के नियम से णकार भी नकार रूप में आ जाता है । इट् पक्ष में सिसनिष बनता है तथा अनिट् पक्ष में जनसनखनां सञ्झलोः सूत्र से धातु के नकार के स्थान पर आकारादेश होता है 'स+आ+स' अब द्वित्वादि कार्य होकर 'सिषास' सनन्त धातु प्राप्त होती है ।
- इसी प्रकार तन्, पत्, दरिद्रा धातुओं से भी सन् को विकल्प से इडागम होता है[285] ।

तनितुमिच्छति> तनु विस्तारे= तितांसति, तितंसति, तितनिषति ।

- सेट् पक्ष में सामान्य प्रक्रिया होती है परन्तु अनिट् पक्ष में 'तन्+सन्' इस अवस्था में तनोतेर्विभाषा सूत्र से उपधाभूत अकार को वैकल्पिक दीर्घ होता है 'तान्+स' तत्पश्चात् द्वित्वादि कार्य होने पर

[283] अर्तिह्रीव्ली० –अष्टाध्यायी- 7.3.36

[284] सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्–अष्टाध्यायी- 7.2.49

[285] तनिपतिदरिद्रादिभ्यः सनो वा इड् वाच्यः वार्तिक

तथा नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से नकार को अनुस्वार होकर 'तितांस' एवं वैकल्पिक दीर्घ न होने पर तितंस ऐसा सनन्त धातु प्राप्त होता है ।

दरिद्रातुमिच्छति> दरिद्रा दुर्गतौ[286]= दिदरिद्रिषति, दिदरिद्रासति,

- यहाँ इट् पक्ष में केवल दरिद्रा+सन् इस स्थिति में आकार का लोप[287] होता है । तथा अनिट् पक्ष में इट् प्राप्त नहीं होने से आकार का लोप भी नहीं होता है ।

अभ्यास लोप वाली कुछ धातुएँ है जिनको इस् आदेश भी होता है[288] ।

- पततुमिच्छति>पत्लृ पतने= पिपतिषति, पित्सति ।
- मातुमिच्छति>मा माने=मा+सन् > म् +इस्+सन्>मिस्सते>मित्सति[289] ।
- मातुमिच्छति> मीञ् हिंसायाम्, डुमिञ् प्रक्षेपणे= मि/मी+सन्> म्/म्+इस्+सन्>मिस्सते>मित्सते ।
- दातुमिच्छति[290]> डुदाञ् दाने, देङ् रक्षणे, दाण् दाने=दित्सति ।
- धातुमिच्छति> डु धाञ् धारणपोषणयोः= धित्सति ।
- रब्धुमिच्छति> रभ राभस्ये= रभ्+स> र्+इस्+भ्+स>रिस्भ्+स>रिप्[291]+स> रिप्सते ।
- लब्धुमिच्छति> डु लभष् प्राप्तौ= लिप्सते ।
- शक्तुमिच्छति> शक्लृ शक्तौ= शिक्षते ।
- पत्तुमिच्छति> पद गतौ= पित्सते ।
- राधितुमिच्छति> राध संसिद्धौ= रित्सति[292] ।

मोक्तुमिच्छति स्वयमेव > मुच्लृ मोक्षणे= मोक्षते, मुमुक्षते ।

यहाँ अकर्मक मुच् धातु के इक को विकल्प से इट् होता है अस्कारादि सन् प्रत्यय के परे रहते । यहाँ हलन्ताच्च से कित् होने के कारण से गुणनिषेध प्राप्त था जिसको विकल्प से पुनः प्राप्ति कराई गयी है । सिद्धि प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी ।

इसी प्रकरण में वृतादि[293] धातुओं से परे इट् का आगम का निषेध होता है[294] । केवल परस्मैपद का विषय होने पर अन्यथा आत्मनेपद में तो इडागम होता ही है । ये चारों धातुएँ उपदेश में आत्मनेपद पठित है परन्तु सन् का विषय होने पर इसके परस्मैपद में भी क्रियारूप बनते हैं ।

---

[286] अदादिगण

[287] आतो लोप इटि च- अष्टाध्यायी-6.4.64

[288] सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्- अष्टाध्यायी-7.4.54

[289] सः स्यार्धधातुके- अष्टाध्यायी-7.4.49

[290] दा धातु से तीनों प्रकार की धातुओं का ग्रहण किया जाता है ।

[291] खरि च से चर्त्व तथा स्कोः संयोगास्योरन्ते च से सकार का लोप होने पर रिप्स सनन्त धातु बनती है ।

[292] राधो हिंसायां सनीस् वाच्यः । वार्तिक ।

वृतु वर्तने= विवृत्सति । विवर्तिषते ।

वृधु =विवृत्सति । विवर्धिषते ।

शृधु= शिशृत्सति । शिशर्धिषते ।

स्यन्दू= सिस्यन्त्सति । सिस्यन्दिषते ।

कुछ अन्य धातुओं से भी वेट् प्रसङ्ग देखा जाता है ।

कृती> चिकृत्सति[295] । चिकर्तिषति ।

चृती> चिचृत्सति । चिचर्त्तिषति ।

छृद> चिच्छृत्सति । चिच्छर्दिषति ।

तृद> तितृत्सति । तितर्दिषति ।

नृत्> निनृत्सति । निनर्तिषति ।

वृ तथा ऋकारान्त धातुओं को वैकल्पिक इट् प्रसङ्ग[296]-

तरितुम्, तरीतुम् इच्छति=तॄ > तितरिषति ।तितरीषति । तितीर्षति ।

इट् पक्ष में 'तॄ+इट्+सन्' ऋत इद्धातोः सूत्र से इकारादेश रपर वाला होने पर 'तिर्+इस' द्वित्वादि कार्य होने पर 'तितरिष' अब वृतो वा सूत्र से वैकल्पिक दीर्घ होता है तब 'तितरीष' ऐसा सनन्त धातु प्राप्त होता है ।

वरितुमिच्छति, वृङ् सम्भक्तौ= वृ> विवरिषति । विवरीषति । वुवूर्षति ।

वरितुमिच्छति, वृञ् वरणे= वृ> विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते[297] ।

स्मि, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अश् धातुओं से सन् परे रहते भी इट् प्रत्यय होता है ।

स्मेतुमिच्छति, ष्मिङ् ईषद्धसने=स्मि> सिस्मयिषते ।

पवितुमिच्छति, पूङ् पवने[298]=पूङ्> पिपविषते ।

अर्तुमिच्छति, ऋ गतौ[299]= ऋ> अरिरिषति ।

अङ्क्तुम् अञ्जितुम् वा इच्छति, अञ्जू गतिम्रक्षणकान्तिगतिषु[300]= अञ्ज्> अञ्जिजिषति ।

---

[293] भ्वादिगण के अन्दर चार धातुओं का परिगण ।

[294] न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः –अष्टाध्यायी-7.2.59

[295] सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः- अष्टाध्यायी- 7.2.57

[296] इट् सनि वा- अष्टाध्यायी- 7.2.41

[297] उदोष्ठ्यपूर्वस्य - अष्टाध्यायी- 7.1.102

[298] भ्वादिगण

[299] जुहोत्यादिगण

1.2 यङ् प्रत्यय

धातुओं से लगने वाले 12 प्रत्ययों में से सन् के बाद यङ् प्रत्यय का वर्णन करते हैं। किसी भी क्रिया के बार-बार करने या क्रिया के अतिशय होने के अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है[301]। यङ् प्रत्यय के अन्त में होने के कारण से यङ्न्त प्रक्रिया कहा जाता है सनन्त के समान ही यङ्न्त समुदाय की भी धातु संज्ञा होती है। तथा यङ् के लुक् हो जाने पर यङ्लुक् प्रक्रिया कहा जाता है इस प्रकार यङ् की दो प्रक्रिया बन जाती है यङन्त तथा यङ्लुगन्त। यङ् के ङित् होने के कारण से इसकी रूप प्रक्रिया आत्मनेपद में ही चलती है। तथा यङ्लुक् में आत्मनेपद निमित्तक ङित्प्रत्यय के लोप हो जाने पर परस्मैपद में प्रक्रिया का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के लिये तीन बातें आवश्यक हैं-

I. धातु एकाच् होनी चाहिए।
II. धातु हलादि होनी चाहिए। अजादि धातुओं से यङ् प्रत्यय नहीं होता है।
III. क्रियासमभिहार अर्थ द्योतित होना चाहिए।

सनन्त के समान यहाँ पर भी द्वित्व होता है तथा उसी प्रकार से अभ्यासादि कार्य निष्पन्न होते हैं। कुछ अन्य अर्थों में भी अन्यान्य धातुओं से सन् प्रत्यय देखा जाता है। यथा गति अर्थ वाली धातुओं से केवल कुटिल गति अर्थ में ही यङ् प्रत्यय होता है। कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते। इसके साथ-साथ भावगर्हा अर्थ में भी यङ् होता है गर्हितं लुम्पति- लोलुप्यते। अभ्यास को यङ् परे रहते या यङ्लुक् होने पर गुण होता है[302] बोभूयते, बेभिद्यते। तथा अकित् अभ्यास को भी यङ् परे रहते या यङ्लुक् होने पर दीर्घ होता है[303] अटाट्यते। यहाँ अभ्यास में कुछ कार्य विशेषरूप से होते हैं।

1.2.1 नीकागम[304]

कुछ धातुओं के अभ्यास को नीकागम् होता है यङ् और यङ्लुक् में, यथा-

वञ्चु> व वच् य> व नीक् वच्य=वनीवच्यते, वनीवच्चीति (यङ्लुक्)।

स्रंसु> स स्रंस् य> स नीक् स्रंस् य= सनीस्रस्यते, सनीस्रसीति (यङ्लुक्)।

---

[300] रुधादिगण

[301] धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्- अष्टाध्यायी- 3.1.22

[302][302] गुणो यङ्लुकोः- अष्टाध्यायी- 7.4.82

[303] दीर्घोऽकितः- अष्टाध्यायी- 7.4.83

[304] नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम्- अष्टाध्यायी-7.4.84

ध्वंसु>द ध्वस् य> द नीक् ध्वस् य =दनीध्वस्यते, दनीध्वंसीति (यङ्लुक्)।

भ्रंसु> ब भ्रंस् य> ब नीक् भ्रंस् य = बनीभ्रस्यते, बनीभ्रंसीति (यङ्लुक्)।

कस्>च कस् य>च नीक् कस् य= चनीकस्यते, चनीकंसीति (यङ्लुक्)।

पत्> प पत् य> प नीक् पत् य = पनीपत्यते, पनीपतीति (यङ्लुक्)।

पद्>= प पद् य > प नीक् पद् य पनीपद्यते, पनीपदीति (यङ्लुक्)।

स्कन्द>च स्कन्द् य> च नीक् स्कन्द् य = चनीस्कद्यते, चनीस्कन्दीति (यङ्लुक्)।

1.2.2 नुकागम

अनुनासिकान्त[305] अकारान्त अभ्यास के अकार को नुकागम होता है।

तनु>त तन् य> त नुक् तन् य = तन्तन्यते, तन्तनीति (यङ्लुक्)।

गम्>ज गम् य> ज नुक् गम् य = जङ्गम्यते, जङ्गमीति (यङ्लुक्)।

कुछ धातुओं के अनुनासिकान्त नहीं होने पर भी नुकागम होता है[306]

जप्> ज जप् य> ज नुक् जप् य= जञ्जप्यते, जञ्जपीति। (यङ्लुक्)।

जभ> ज जभ् य >ज नुक् जभ् य =जञ्जभ्यते, जञ्जभीति (यङ्लुक्)।

दह्>द दह् य> द नुक् दह् य= दन्दह्यते, दन्दहीति (यङ्लुक्)।

दंश>द दंश् य> द नुक् दंश् य= दन्दश्यते, दन्दशीति (यङ्लुक्)।

भञ्ज> ब भञ्ज् य>ब नुक् भञ्ज् य= बम्भज्यते, बम्भञ्जीति (यङ्लुक्)।

पश- प पश् य>प नुक् पश् य= पम्पश्यते, पम्पशीति (यङ्लुक्)।

1.2.3 चर और फल धातु से भी नुकागम[307]

चर>च चर् य> च नुक् चूर् य= चञ्चूर्यते[308], चञ्चूरीति (यङ्लुक्)।

---

[305] नुगतोऽनुनासिकान्तस्य- अष्टाध्यायी-7.4.85

[306] जपजभदहदशभञ्जपशां च-- अष्टाध्यायी-7.4.86

[307] चरफलोश्च-- अष्टाध्यायी-7.4.87

फल्>प फल् य> प नुक् फूल् य= पम्फूल्यते, पम्फूलीति (यङ्लुक्) ।

1.2.4 रीक् आगम

ऋकारोपध धातुओं से यङ् तथा यङ्लुक् में अभ्यास को रीक् का आगम होता है[309]।

वृतु वर्तने > व वृत् य> व रीक् वृत् य= वरीवृत्यते ।

नृति गात्रविक्षेपे>न नृत् य> न रीक् नृत् य= नरीनृत्यते

कृपू सामर्थ्ये> च कृप् य> च रीक् कृप् य> च ली क्लृप् य= चलीक्लृप्यते[310] ।

1.2.5 सम्प्रसारण कार्य

यङ् परे रहते धातुओं से सम्प्रसारण कार्य भी होता है[311]

पुनः पुनरतिशयेन वा स्वपीति-ञिष्वप शये> स्वप्+य> सुप्+य=सोषुप्यते ।

पुनः पुनरतिशयेन वा स्यमति-स्यमु शब्दे> स्यम्+य> सिम्+य= सेसिम्यते ।

पुनः पुनरतिशयेन वा व्ययति, व्ययते वा- व्येञ्संवरणे > व्ये+य> वि+य=वेवीयते ।

की आदेश

चाय धातु के स्थान पर की आदेश होता है यङ् परे रहते[312] ।

पुनः पुनरतिशयेन वा चायति- चायृ पूजानिशामनयोः> चाय्+य> की+य=चेकीयते ।

घ्रा और ध्मा धातु के अन्त्य आकार के स्थान पर ईकारादेश होता है[313] ।

पुनः पुनरतिशयेन वा जिघ्रति- घ्रा गन्धोपादाने> घ्रा+य> घ्री+य=जेघ्रीयते ।

पुनः पुनरतिशयेन वा धमति- ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः> ध्मा+य> ध्मी+य=देध्मीयते ।

उदाहरण स्वरूप भू धातु से यङ् प्रत्यय की रूपसिद्धि प्रक्रिया को प्रदर्शित किया जा रहा है।

भू सत्तायाम्	भूवादयो धातवः सूत्र से भू से लेकर चुरादिगण पर्यन्त धातुपाठ में जितने भी क्रियावाची शब्द पढे हैं उनकी धातु संज्ञा होती है

---

[308] उत् परस्यातः-- अष्टाध्यायी-7.4.88

[309] रीगृदुपधस्य च- अष्टाध्यायी-7.4.90

[310] कृपो रो लः से अभ्यास वाले रेफ को लकार तथा धातु के द्वितीयखण्ड में विद्यमान ऋकार सदृश लृकार आदेश होता है ।

[311] स्वपिस्यमिव्येयां यङि-अष्टाध्यायी- 6..1.19

[312] चयः की-अष्टाध्यायी- 6.1.21

[313] ई घ्राध्मोः-अष्टाध्यायी- 6.1.31

भू	धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् सूत्र से यङ् प्रत्यय होता है प्रत्ययः परश्च प्रत्यय जिससे (धातु या प्रातिपदिक) विधान किया जाता है उससे परे होता है
भू+यङ्	हलन्त्यम् सूत्र के द्वारा अन्तिम हल् ङ्कार की इत्सञ्ज्ञा हुई, तत्पश्चात् तस्य लोपः सूत्र के द्वारा इत्सञ्ज्ञक ङ्कार का लोप होता है । अदर्शनं लोपः सूत्र ने बताया कि अदर्शन की लोप सञ्ज्ञा होती है।
भू+ य	आर्धधातुकं शेषः सूत्र के द्वारा यङ् प्रत्यय की आर्धधातुक सञ्ज्ञा हुई,
भू+ य	सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र के द्वारा गुण की प्राप्ति होती है तथा- यङ् के ङित् होने के कारण से- क्ङिति च सूत्र इस अवस्था में गुण का निषेध कर देता है
भू+ य	सन्यङो सूत्र के द्वारा द्वित्व की प्राप्ति होती है एकाचोद्वेप्रथमस्य सूत्र के द्वारा धातु के एकाच् अवयव भू को द्वित्व हुआ
भू+भू+ य	पूर्वोभ्यासः सूत्र के द्वारा प्रथम भू की अभ्यास सञ्ज्ञा होकर, हलादि शेषः सूत्र के द्वारा अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है तथा अनादि हल् का लोप् हो जाता है ह्रस्वः सूत्र के द्वारा दीर्घ ऊकार को ह्रस्व उकार हुआ
भु+ भू+ य	अभ्यासे चर्च सूत्र के द्वारा अभ्यास झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले भकार के स्थान पर जश्त्व यानी बकारादेश हुआ
बुभू+य	गुणो यङ्लुकोः सूत्र से अभ्यास के इक् के स्थान पर गुण होता है,

	इकोगुणवृद्धी, सूत्र से गुण इक् के स्थान पर होता है। अदेङ्गुणः सूत्र से अभ्यास उकार के स्थान पर ओकारादेश होता है
बोभूय	सनाद्यन्ता धातवः सूत्र के द्वारा यङन्त बोभूय शब्द की धातु सञ्ज्ञा होकर तिबादि उत्पत्ति आदि होकर रूप सिद्ध होते हैं।
बोभूयते	इस प्रकार से लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन की बोभूयते रूपसिद्धि प्रक्रिया पूर्ण हुई।

1.3 यङ्लुक

क्रिया के बार-बार करने या क्रिया के अतिशय होने के अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है तथा यङ् प्रत्यय होने बाद उसका लुक्[314] किया जाता है। ऐसे धातुओं को यङ्लुगन्त धातु और इस प्रक्रिया को यङ्लुगन्तप्रक्रिया कहा जाता है। यङन्त में जो अर्थ होता है वही अर्थ यङ्लुगन्त में भी विद्यमान रहता है। यङ्न्तप्रक्रिया तथा यङ्लुगन्त प्रक्रिया में यही अन्तर होता है कि उसमें यङ्प्रत्यय विद्यामान रहता है और इसमें उसका लुक् हो जाता है। अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता है। इसके बाद इसकी रूपसिद्धि प्रक्रिया जुहोत्यादिगण में पठित धातुओं के समान चलती है। यङ्लुगन्त के प्रयोग के विषय में विद्वानों में मतभेद है कुछ आचार्य इसे केवल वेद का विषय मानते है लौकिक प्रयोग का नहीं तथा कुछ आचार्यों के मत में लोक में भी यङ्लुगन्त के प्रयोग देखे जाते हैं भट्टोजिदीक्षित ने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में मध्यम मार्ग अपना कर यङ्लुगन्त के प्रयोगों को स्वीकार किया है।

इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया यङन्त के समान होती है यङ् के लुक् हो जाने के कारण से इसकी रूपसिद्धि प्रक्रिया परस्मैपद में चलती है। केवल कुछ स्थानों पर विशेष प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है उस विशेष प्रक्रिया को प्रदर्शित किया जा रहा है-

[314] यङोऽचि च- अष्टाध्यायी- 2.4.74

भू भू=यङ> बोभू+य इस स्थिति में यङ्लुक् हो जाने पर 'बोभू' ऐसी यङ्लुगन्त धातु प्राप्त होती है तिबाद्युत्पत्ति होने के बाद पित् सार्वधातुक लकारों के परे रहते विकल्प से ईडागम प्राप्त होता है जिस कारण से पित्सार्वधातुक लकारों में दो-दो रूप देखने को मिलते हैं-यथा-

धातु	लकार	प्रत्यय	ईट्पक्ष	अनीट्पक्ष
भू	लट्	तिप्	बोभवीति	बोभोति
स्पर्ध	लट्	सिप्	पास्पर्धीसि	पास्पर्त्सि
वञ्च्	लट्	तिप्	वनीवञ्चीति	वनीवङ्क्ति
चर्	लट्	तिप्	चञ्चूरीति	चञ्चूर्ति

1.3.1 रुक्, रिक्, रीक् आगम

जिस प्रकार यङन्त में ऋकारोपध धातुओं के अभ्यास को रीकागम् होता है उसी प्रकार उन्हीं धातुओं से रुक्, रिक् आगम भी होते है[315] । ऋकारोपध धातुओं के साथ-साथ ऋदन्तों[316] धातुओं के अभ्यास को भी ये आगम होते हैं। इस प्रकार ऋदुपध तथा ऋदन्त धातुओं से तीन –तीन रूप देखने को मिलते है तथा पित्सार्वधातुक लकारों में ईट् पक्ष तथा ईडाभाव पक्ष **3x2=6** होने से छ प्रकार के रूप बनते हैं-

धातु	प्रत्यय	ईडागम्			ईडाभाव		
वृत्	तिप्	रुक्	रिक्	रीक्	रुक्	रिक्	रीक्
		वर्वृतीति	वरिवृतीति	वरीवृतीति	वर्वर्ति	वरिवर्ति	वरीवर्ति
कृ	मिप्	चर्करीमि	चरिकरीमि	चरीकरीमि	चर्कर्मि	चरिकर्मि	चरीकर्मि

इस प्रकार एक अच् वाली हलादि धातुओं से यङ् तथा यङ्लुगन्त प्रक्रिया के क्रियारूपों का निर्माण होता है।

---

[315] रुग्रिकौ च लुकि- अष्टाध्यायी- 7.4.91

[316] ऋतश्च- अष्टाध्यायी- 7.4.92

1.4 ईयङ् प्रत्यय

धातुओं से होने वाले प्रत्ययों में ईयङ् प्रत्यय भी आता है ऋति यह सौत्र धातु है जिसका अर्थ घृणा करना है इस धातु से ईयङ् प्रत्यय कहा गया है[317] ङित्करण से रूपप्रक्रिया आत्मनेपद में होती है। ऋति+ईयङ्=ऋतीयते।

1.5 आय प्रत्यय

गुपादि धातुओं से आय प्रत्यय कहा गया है[318]। गुप्+आय=गोपायति।धूप+आय= धूपायति। विच्छ+आय=विच्छायति। पण्+आय=पणायति। पन्+आय= पनायति।

1.6 यक् प्रत्यय

गणपाठ में कण्ड्वादिगण पठित है इसके अन्तर्गत आने वाले शब्दों को धातु और प्रातिपदिक दोनों रूप में मान्यता प्राप्त है यहाँ पर हम धातु मान कर प्रत्यय कर रहे हैं। कण्डू आदि धातुओं से स्वार्थ में नित्य यक् प्रत्यय होता है। कण्डू+यक् = कण्डूयति। मन्तू+यक्= मन्तूयति। इत्यादि इस प्रकार सभी शब्दों से यक् प्रत्यय होने पर सनाद्यन्ता धातवः से धातुसंज्ञा होकर सभी लकारों में रूप चलते हैं।

2.धातुओं तथा सुबन्तों से लगने वाले प्रत्ययों की सिद्धि प्रक्रिया

2.1 णिच्

पाणिनि व्याकरण में णिच् प्रत्यय धातुओं तथा सुबन्तों दोनों से लगते हैं। धातुओं से लगने वाला णिच् भी दो प्रकार का है प्रथम चुरादिगण पठित धातुओं से लगने वाला णिच्[319], द्वितीय सभी धातुओं से लगने वाला णिच् प्रत्यय, सभी धातुओं से लगने वाला णिच् विशेष हेतुमद् अर्थ में होता है[320]। यह द्वितीय णिच् प्रयोजक- प्रेरक कर्ता के व्यापार प्रेषणादि वाच्य होने पर होता है।

---

[317] ऋतेरियङ्- अष्टाध्यायी-3.1.29

[318] गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः- अष्टाध्यायी- 3.1.28

[319] सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्- अष्टाध्यायी- 3.1.25

[320] हेतुमति च्- अष्टाध्यायी- 3.1.26

क्रियाओं की बात की जाये तो भ्वादिगण से लेकर चुरादिगण पर्यन्त यह णिच् होता है उन सभी धातुओं से प्रेरणा अर्थात् कराना अर्थ में णिच् किया जाता है जैसे हिन्दी भाषा में पढने से पढाना, लिखने से लिखाना, देखने से दिखाना आदि क्रियाएँ बनती हैं उसी प्रकार संस्कृत में भी सभी धातुओं से ऐसे ही अर्थों के लिए णिच् प्रत्यय करके पठति से पाठयति, लिखति से लेखयति, पस्यति से दर्शयति आदि क्रियारूपों का निर्माण होता है।

वाक्य में कर्ता कर्म क्रिया आदि शब्दों से बना होता है और वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि के लिए जिसकी नितान्त आवश्यकता होती है, जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके बिना क्रिया हो ही नहीं पाती है तथा क्रिया में स्वतन्त्ररूप से विवक्षित कारक होता है ऐसे कारक की कर्तृसंज्ञा[321] होती है। तथा कर्ता के प्रयोजक की हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा होती है[322]। इस प्रकार णिच् में दो प्रकार के कर्ता होते हैं प्रयोजक कर्ता तथा प्रयोज्य कर्ता।

हेतुमद् अर्थ में धातु से णिच् प्रत्यय करने पर 'पठ्+णिच्= पाठि' ऐसा णिजन्त रूप बनता है जिससे सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा होने पर णिजन्त धातु बन जाती है। लकारोत्पत्ति होने के बाद तिबाद्युपत्ति होकर सामान्य प्रक्रिया के अनुसार दसों लकारों में रूप बनते है=पाठि+शप् +तिप्= पाठयति। हेतुमद् अर्थ में णिजन्त धातु बनने के बाद णिचश्च[323] से धातु उभयपदी हो जाती है। इस प्रकार कर्तृगामी क्रियाफल होने पर णिजन्त धातुओं से आत्मनेपद होता है। अकर्तृगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद[324] हो जाता है।

2.1.1 घटादि धातु

धातुपाठ के अन्दर कुछ मुख्य दस गणों के अतिरिक्त कुछ अवान्तर गण भी है जो किसी कार्य विशेष के कारण समान कार्य के हेतु से एक स्थान पर पठित हैं ऐसा ही एक गण है घटादिगण जिसमें घट चेष्टायाम् धातु से लेकर फण गतौ तक की धातुओं को मित्संज्ञक[325] किया गया है मित्संज्ञा का फल है ह्रस्व करना[326]। यथा- घट धातु से णिच् करने पर उसे आदि वृद्धि होती है तो

---

[321] स्वतन्त्रः कर्ता-अष्टाध्यायी-1.4.24

[322] तत्प्रयोजको हेतुश्च- अष्टाध्यायी-1.4.55

[323] अष्टाध्यायी-1.3.74

[324] शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्-1.3.78

[325] घटादयो मितः, भ्वादिगण।

[326] मितां ह्रस्वः- अष्टाध्यायी-6.4.92

घाटि धातु णिजन्त धातु बनता है परन्तु मित्करण होने के कारण से उसे ह्रस्व होकर घटि ही शेष रहता है-

घट्+णिच्= घाटि> घटि> घटयति ।

जन्+णिच्=जानि> जनि>जनयति[327] ।

2.1.2 णि परक आगम

णिच् प्रत्यय के परे रहते कुछ आगम भी होते हैं यथा, पुक्,युक्, जुक्, नुक्, लुक्,षुक् आदि ।

पुक्- आकारान्त धातुओं से, ऋ, ह्वी, व्ली, री, क्रूयी, क्ष्मायी धातुओं से णिच् परे रहते पुगागम् होता है[328] ।

ऋ+पुक्+णिच्=अर्पि>अर्पयति ।

ह्वी+पुक्+णिच्+ह्वेपि< ह्वेपयति ।

व्ली+पुक्+णिच्=च्लेपि> व्लेपयति ।

री+पुक्+णिच्=रेपि> रेपयति ।

क्रूयी+पुक्+णिच्=क्रोपि> क्रोपयति ।

क्ष्मायी+पुक्+णिच्= क्ष्मापि> क्ष्मापयति ।

दा+पुक्+णिच्=दापि>दापयति ।

युक्- शो, छो, षो, ह्वेञ्, व्येञ्, वेञ् तथा पा धातुओं से णिच् परे रहते युकागम होता है[329] ।

शो+युक्+णिच्=शायि> शाययति ।

छो+युक्+णिच्= छायि> छाययति ।

षो+युक्+णिच्=सायि> साययति ।

ह्वेञ्+युक्+णिच्= ह्वायि> ह्वाययति ।

---

[327] कुछ धातुएँ घटादिगण में पठित नहीं है परन्तु इन्हें 'जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च सूत्र से मिद्वद्भाव किया गया है।

[328] अर्त्तिह्वीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ-अष्टाध्यायी-7.3.36

[329] शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्-अष्टाध्यायी-7.3.37

व्येञ्+युक्+णिच्=व्यायि> व्याययति ।

वेञ् +युक्+णिच्= वायि> वाययति ।

पा+युक्+णिच्=पायि> पाययति ।

जुक्- कांपना अर्थ में वर्तमान वा धातु से जुकागम होता है णिच् परे रहते [330]।

वा+जुक्+णिच्=वाजि> वाजयति ।

नुक्- लुक्- ली तथा ला धातु से णिच् परे रहते स्नेहविपान अर्थ में विकल्प से नुक् तथा लुक् आगम होते हैं[331] ।

ली+नुक्+णिच्=लीनि> लीनयति ।

ला+नुक्+णिच्=लानि> लानयति ।

षुक्-ईकारान्त अवस्था में विद्यमान भी धातु से षुक् आगम होता है णिच् के परे रहते[332] ।

भी+षुक्+णिच्=भीषि> भीषयति ।

2.1.3 चुरादिगणीय धातुओं से स्वार्थिक णिच्

चुरादिगणीय धातुओं से जब स्वार्थिक णिच् का आता है तो वह णिच् प्रत्यय केवल उस में पठित धातुओं के अपने अर्थों को द्योतित करने के लिये आता है क्योंकि चुरादिगण से णिच् प्रत्यय किसी अर्थविशेष में विधान नहीं किया गया है अपितु स्वार्थ में किया गया है और स्वार्थ में आने वाले प्रत्ययों से प्रकृति के अर्थ[333] में कुछ अन्तर नहीं आया करता वे केवल रूपसिद्धि की परिनिष्ठता को बढाने वाले होते हैं । इस प्रकार चुरादिगणीय धातुओं से स्वार्थिक णिच् होने पर 'चुर्+णिच्= चोरी' ऐसा स्वरूप बनता है जिससे लकारों में क्रियारूपों का निर्माण करने के लिये तिबादि प्रत्यय होकर चोरयति आदि क्रियारूप बनते हैं ।

2.1.4 चुरादि धातुओं से हेतुमत् णिच्

---

[330] वो विधूनने जुक्- अष्टाध्यायी-7.3.38

[331] लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने- अष्टाध्यायी- 7.3.39

[332] भियो हेतुभये षुक्- अष्टाध्यायी- 7.3.40

[333] अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति ।

जब भी चुरादिगणीय धातुओं का विषय आता है तो उसके साथ में स्वार्थिक णिच् स्वतः आ जाता है जिस कारण से कोई भी कार्य करने से पूर्व णिच् सहित धातु आता है। स्वार्थिक णिच् में चोरयति क्रियारूप बनता है जिसका अर्थ है कि चुराता है, चोरी करता है। इस वाक्य में प्रयोजक अर्थ विद्यमान नहीं है अब चोरी करवाता है इस अर्थ स्वार्थिक णिजन्त चोरि धातु से हेतुमान् णिच् किया जाता है इस प्रकार चोरयन्तं प्रेरयति अर्थ में णिच् प्रत्यय करने पर 'चोरि+णिच् = चोरि+इ' इस अवस्था में स्वार्थिक णि के इकार को वृद्धि[334] प्राप्त होती है ऐसी स्थिति में वृद्धि को रोक कर णि लोप करने के लिये महाभाष्य में पूर्वविप्रतिषेध वार्तिक द्वारा कहा गया कि इयङ्, यण्, गुण, वृद्धि, और दीर्घ की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से णिलोप तथा अल्लोप बलवान होते हैं अतः यहाँ वृद्धि को बांधकर णिलोप[335] हो जाता है। इस तरह दो णिच् होते हुए भी अब एक ही णिच् शेष रहा। जिसकी सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा होकर वाच्यानुसार क्रियारूपों का निर्माण होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि एक ही धातु की तीन बार धातु संज्ञा हो जाती है प्रथम अण्यन्त अवस्था में चुर् की भूवादयो धातवः से, द्वितीय स्वार्थिक णिच् होने के बाद चोरि की सनाद्यन्ता धातवः से एवं तृतीय भी हेतुमान् णिच् होने के बाद पुनः सनाद्यन्ता धातवः से।

2.1.5 सुबन्तों से णिच् प्रत्यय

सुबन्त प्रातिपदिकों को जब धातु की तरह प्रयोग करना इष्ट होता है तब सुबन्तों से णिच् प्रत्यय किया जाता है जिससे उनका क्रियारूपों की तरह व्यवहार किया जा सके। ऐसे ही कुछ सुबन्तों का परिगणन पाणिनी ने अष्टाध्यायी में किया है जिनसे णिच् प्रत्यय किया जाता है।

मुण्डं करोतीति मुण्डयति[336]। मुण्ड+अम् +णिच् इस स्थिति में सुब्लुक् होने पर प्रातिपदिकों से धात्वर्थ में बहुल करके इष्ठवद्भाव किया जाता है[337] जिससे प्रातिपदिकों के टि भाग

---

[334] अचोऽञ्णिति- अष्टाध्यायी-7.2.115

[335] णेरनिटि- अष्टाध्यायी-6.4.51

[336] मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो- अष्टाध्यायी-3.1.21

का लोप करने से णिजन्त इकारान्त धातु का निर्माण किया जा सके। इस प्रकार मुण्ड शब्द से मुण्डि ऐसी णिजन्त धातु प्राप्त होती है जिससे सभी लकारों में क्रियारूपों का निर्माण किया जाता है। ऐसे प्रातिपदिकों को प्रदर्शित किया जा रहा है-

मुण्डं करोति	मुण्ड	मुण्डि	मुण्डयति
मिश्रं करोति	मिश्र	व्मिश्रि	मिश्रयति
श्लक्ष्णं करोति	श्लक्ष्ण	श्लक्ष्णि	श्लक्ष्णयति
लवणं करोति	लवण	लवणि	लवणयति
पयो व्रतयति	व्रत	व्रति	व्रतयति
वस्त्रं समाच्छादयति	वस्त्र	वस्त्रि	वस्त्रयति[338]
हलिं गृह्णाति	हल[339]	हलि	हलयति
तूस्तानि विहन्ति	तूस्त	तूस्ति	तूस्तयति
सत्यं करोत्याचष्टे वा	सत्य	सत्यापि	सत्यापयति[340]
पाशं विमुञ्चति	पाश	पाशि	पाशयति

रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम्, त्वच्, वर्म, वर्ण, चूर्ण आदि शब्दों से भी यही प्रक्रिया जाननी चाहिये।

2.2 णिङ्

अब क्रमानुसार णिङ् प्रत्यय का विवेचन प्रस्तुत करते हैं यह प्रत्यय कुछ शब्दों तथा केवल एक धातु से होता है णित्करण सामर्थ से इस प्रत्यय के परे रहते भी सभी कार्य णिच् के सामान ही होते हैं

2.2.1 धातु से लगने वाले णिङ्

---

[337] प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिठ्वच्च

[338] वस्त्रात्समाच्छादने- वार्तिक

[339] हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते- वार्तिक

[340] अर्थवेदसत्यानामापुक् वक्तव्यः- वार्तिक

कमु कान्तौ धातु से णिङ् प्रत्यय होता है ~इत्करण सामर्थ्य से आत्मने पद में रूप प्रक्रिया चलती है- कम्+णिङ्=कामि> कामयते, कामयेते, कामयन्ते।

2.2.2 सुबन्तों से लगने वाले णिङ्

पुच्छ, भाण्ड तथा चीवर शब्दों से विशेष अर्थों में णिङ् प्रत्यय कहा गया है। पुच्छ- शब्द से व्यसन= विविध प्रकार से अथवा विपरीत तरीके से ऊपर उठाना, और पर्यसन=चारों ओर घुमाना अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है[341]। पुच्छ+णिङ्=पुच्छि> पुच्छयते, उत्पुच्छयते, परिपुच्छयते। भाण्ड- शब्द से समाचयन=एकत्रीकरण अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है[342]- सम्-भाण्ड+णिङ्=सम्भाण्डि> सम्भाण्डयते। चीवर- शब्द से अर्जित करना और पहनना अर्थ में णिङ् प्रत्यय होता है[343]। सम्+चीवर+ णिङ्=सम्चीवरि> संचीवरयते। इस प्रकार से ये दोनों णिच् तथा णिङ् प्रत्यय धातु तथा सुबन्तों से होते हैं।

3. केवल सुबन्तों से लगने वाले प्रत्यय

नाम अर्थात् सुबन्त प्रातिपदिक को धातु बनाने की प्रक्रिया से निष्पन्न धातु को सनाद्यन्त धातु या नामधातु के नाम से भी जाना जाता है। शब्द से धातु बनाने की रीति हिन्दी भाषा में भी देखने को मिलती है यथा- अपना से अपनाना, धिक्कार शब्द से धिक्कारना, चक्कर से चकराना आदि इसी प्रकार संस्कृत भाषा में भी पुत्र शब्द से पुत्रीयति, शिला शब्द से शिलायति, शब्द से शब्दायते आदि क्रियारूप बनाये जाते हैं उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है- क्यच्, क्यङ्, काम्यच्, क्यष् तथा क्विप् ये सभी प्रत्यय सुबन्तों से लगते है तथा इनसे नामधातुओं का निर्माण होता है अब इनकी रूपसिद्धि प्रक्रिया का वर्णन किया जा रहा है-

3.1 क्यच् प्रत्यय

इच्छार्थक इष धातु के कर्म तथा इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से इच्छा करना, चाहना अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है[344]। तात्पर्य यह है कि चाहने वाला व्यक्ति अपने लिये कोई वस्तु

---

[341] पुच्छादुदवसने व्यसने पर्यसने च -वार्तिक

[342] भाण्डात्समाचयने- वार्तिक।

[343] चीवरादर्जने परिधाने च- वर्तिक।

[344] सुप आत्मनः क्यच्-- अष्टाध्यायी-3.1.8

चाहता है इस अर्थ को प्रकट करने के लिए अभीष्ट वस्तु के वाचक सुबन्त से वैकल्पिक क्यच् प्रत्यय होता है पक्ष में वृत्ति भी होती है। यथा –अपने पुत्र को चाहता है इस वाक्य में इच्छुक का सम्बन्धी तथा कर्म दोनों पुत्र शब्द को कहते है तो पुत्र शब्द से क्यच् प्रत्यय होता है। आत्मनः पुत्रमिच्छति= पुत्र अम् क्यच् यहाँ सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा होने से अम् विभक्ति का लुक् होता है[345]। पुत्र+य इस स्थिति में क्यच् के परे रहते पूर्व अकार को दीर्घ ईकारादेश होता है। पुत्री+य सनन्त धातु होने के कारण से लकारोत्पत्ति होती है तथा पुत्रीयति रूप सिद्ध होता है।

आत्मनो राजानमिच्छति= राजीयति।

आत्मानं गार्ग्यमिच्छति= गार्गीयति।

3.1.1 असुकागम

क्यच् प्रत्यय के परे रहते अश्व, क्षीर, वृष, लवण शब्दों से असुक् आगम होता है[346]। अश्व+असुक्+क्यच्= अश्वस्यति[347]। वृष+असुक्+क्यच्=वृषस्यति। क्षीर+असुक्+क्यच्=क्षीरस्यति[348] बालः। लवण+असुक्+क्यच्=लवणस्यति उष्ट्रः।

3.1.2 उपमानरूप कर्म से क्यच्

उपमानरूप कर्म सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय विकल्प से होता है[349]। पुत्रमिवाचरति छात्रम्= पुत्रीयति। विष्णुम् इव् आचरति= विष्णूयति। प्रासादमिव आचरति कुट्यां= प्रासादीयति[350] भिक्षुः।

3.2 काम्यच् प्रत्यय

इच्छार्थक इष धातु के कर्म तथ इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से इच्छा करना, चाहना अर्थ में विकल्प से काम्यच् प्रत्यय होता है यहाँ केवल प्रत्यय का अन्तर है शेष सम्पूर्ण प्रक्रिया क्यच् के

---

345 सुपो धातुप्रातिपदिकयोः-अष्टाध्यायी-2.4.71

346 अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि-अष्टाध्यायी-7.1.51

347 अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम्-वार्तिक

348 क्षीरलवणयोर्लालसायाम्-वार्तिक

349 उपमानादाचारे- अष्टाध्यायी- 3.1.10

350 अधिकरनाच्चेति वक्तव्यम्- वार्तिक

समान ही होगी । आत्मनः पुत्रमिच्छति= पुत्रकाम्यति । आत्मनो यश इच्छति= यशस्काम्यति । आत्मनःसर्पिः इच्छति= सर्पिष्काम्यति ।

3.3 क्यङ् प्रत्यय

क्यङ् प्रत्यय निम्नलिखित शर्तों में हो सकता है-

- उपमान सुबन्त कर्ता से आचार अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है यदि कर्ता सकारान्त हो तो उसके सकार का विकल्प से लोप होता है[351] । कृष्ण इव आचरति= कृष्णायते । ओजस् इव आचरति= ओजायते[352] । यश इव आचरति= यशस्यते, यशायते । सकार का वैकल्पिक लोप होने से दो दो रूप बनते हैं केवल ओजस् तथा अप्सरस् के सकार का नित्य लोप होता है । सिद्धि में कृष्ण+क्यङ् इस स्थिति में केवल दीर्घ[353] करना विशेष है यहाँ णकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ आकार होता है । प्रत्यय के ङित् होने के कारण से आत्मनेपद में क्रियारूप बनते हैं।
- अभूततद्भाव के विषयभूत च्विप्रत्यय रहित भृशादियों से भी भुवि= होना अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है और हलन्त भृशादियों के अन्त्य हल् का लोप भी होता है । अभृशो भृशो भवति= भृशायते । असुमनाः सुमना भवति= सुमनायते । यहाँ सुमनस् के अन्त्य हल् सकार का लोप होता है।

3.4 क्विप् प्रत्यय

क्विप् प्रत्यय निम्नलिखित शर्तों में हो सकता है-

- उपमानभूत अवगल्भ, क्लीब तथा होड शब्दों से आचार अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है[354] । क्विप् प्रत्यय की विशेषता यह है कि इसका सर्वापहारी लोप हो जाता है यानी हलन्त्यम् से पकार की इत्संज्ञा, लशक्वतद्धिते से ककार की इत्संज्ञा, शेष वकार का वेरपृक्तस्य से लोप हो

[351] कर्तुः क्यङ् सलोपश्च- अष्टाध्यायी- 3.1.11

[352] ओजसोऽप्सरसोर्नित्यमितरेषां विभाषया

[353] अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः- अष्टाध्यायी-7.4.25

[354] आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः- वार्तिक

जाता है इस प्रकार सम्पूर्ण क्विप् प्रत्यय का अदर्शन हो जाता है तथा धातु अथवा प्रातिपदिक अपने मूलस्वरूप में रहता है । अवगल्भ्+क्विप्= अवगल्भ्> अवगल्भते । क्लीबते । होडते ।

- सभी प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में विकल्प से क्विप् प्रत्यय होता है[355] । अब यहाँ सभी से क्विप् प्रत्यय कहा है यथा- कृष्ण इव आचरति- कृष्णाति ।अश्व इव आचरति= अश्वति ।

3.5 क्यष् प्रत्यय

अभूततद्भाव विषय में च्विप्रत्यय भिन्न लोहितादि प्रातिपदिकों तथा डाच् प्रत्ययान्त शब्दों से होना अर्थ में क्यष् प्रत्यय होता है[356]। अलोहितो लोहितो भवति= लोहितायते, लोहितायति[357] । पटपटायति, पटपटायते । यहाँ क्यषन्त होने से उभयपद में रूप प्रक्रिया चलती है ।

[355] सर्वप्रातिपदिकेभ्योः क्विब्वा वक्तव्यः- वार्तिक

[356] लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-अष्टाध्यायी-3.1.13

[357] वा क्यषः--अष्टाध्यायी-1.3.90

चतुर्थ अध्याय

सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु संगणकीय नियम

प्रस्तुत अध्याय में सनाद्यन्त क्रियापदों का प्रायोगिक क्रियान्वयन किस प्रकार किया गया है इस विषय को उपस्थापित किया गया है । भाषाविज्ञान से सम्बन्धित कार्य होने के कारण से भाषावैज्ञानिक नियमों के साथ साथ संगणक हेतु भाषावैज्ञानिक नियमों का विकास किस प्रकार किया गया है जिनके सही प्रयोग के कारण से भाषा वैज्ञानिक नियम तथा कम्प्यूटर मिलकर एक क्षेत्रविशेष का निर्माण कर सकते है तथा जिससे अध्ययन अध्यापन को रुचिपूर्ण बनाते हुए किसी विषय को कम समय में ज्यादा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है । जिस प्रकार भाषाविज्ञान हेतु भाषावैज्ञानिकों ने नियमों का निर्माण किया है उसी प्रकार से संगणकीय भाषावैज्ञानिकों ने भी इस क्षेत्र के लिये कुछ नियमों, विधियों का निर्माण किया है जिनकों अपनाकर अपने मस्तिष्क से कुछ नयापन लिये हुए तथ्यों एवं डेटा के आधार पर नियमों का निर्माण करके वेव आधारित एक सिस्टम का विकास किया गया है ।

प्रस्तुत शोध का चरम लक्ष्य किसी भी संस्कृत वाक्य से सनाद्यन्त की पहचान करके उसका विश्लेषण करना है । अतः वाक्य से सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु नियम एवं उदाहरण (Hybrid Approach) आधारित विधि का प्रयोग किया गया है । यह सिस्टम पाणिनीय नियमों अनुसार निर्मित किया गया है । सर्वप्रथम सनाद्यन्त पदों की पहचान के लिये एक डेटाबेस का निर्माण किया गया इसके बाद सफलतापूर्वक पहचान करने के बाद इसके विश्लेषण के लिये भी नियमों का एक डेटाबेस बनाया गया जिसके आधार पर यह सिस्टम कार्य करता है तथा प्रदत्त वाक्य में सनाद्यन्त की पहचान करके उसका विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस शोध में सूचना की प्राप्ति हेतु सूचना पुनर्प्राप्ति (Information Retrieval) संगणकीय भाषावैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया गया है (Baeza, 2003 and Jurafsky, 2013) । सनाद्यन्त क्रियापदों के संगणकीय प्रारूप प्रोग्राम के लिये पाइथॉन (Python 25) प्रोगामिंग (Bill, 2014; Dawson, 2010 and Knowlton, 2004) भाषा का प्रयोग किया गया है । जिसके माध्यम से सनाद्यन्त की पहचान एवं विश्लेषण प्रयोक्ता को प्रस्तुत किया जाता है ।

1. सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु संगणकीय नियम

जैसाकि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि संस्कृत क्रियापदों की कोई सीमा नहीं है। एक धातु से अनेकों रूप बनते हैं । एक ओर संस्कृत जहाँ सनाद्यन्तों पर बहुत ही कम कार्य हुए हैं वहीं दूसरी ओर संस्कृत साहित्य में भी सनाद्यन्तों के प्रयोग भी कम प्राप्त होते हैं । इसके लिये शोधार्थी का अधिकतम समय डेटा संग्रहण में गया तथा तथा व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों जैसे काशिका(विद्यावारिधि, 1997), अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति (जिज्ञासु, 2003), सिद्धान्तकौमुदी (पाण्डेय, 2014), माधवीयधातुवृत्ति (विद्यावारिधि, 2000) आदि ग्रंथों की सहायता ली गयी है जिससे सनाद्यन्तों के कुछ क्रियापद प्राप्त हुए जिसके आधार पर संगणकीय नियमों का विकास किया गया । इन सभी नियमों के लिये अलग-अलग टेबल का प्रयोग किया गया जिसमें सन्, यङ्, यङ्लुङ्, णिच्, णिङ्, आय्, ईयङ्, णिङ् आदि शामिल हैं । जिसमें से सनादि रूपों की पहचान के लिये नियमों का प्रारूप तालिका संख्या 5.1 में दिखाया गया है ।

SR	start	Dhatu	End	lakar	purush	vacana	Example
1	0		ति	लट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषति
2	0		तः	लट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषतः
3	0		न्ति	लट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषन्ति
4	0		सि	लट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषसि
5	0		थः	लट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषथः
6	0		थ	लट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषथ
7	0		ामि	लट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषामि
8	0		ावः	लट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषावः
9	0		ामः	लट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषामः
10	0		াश्चकार	लिट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाश्चकार
11	0		াश्चक्रतुः	लिट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाश्चक्रतुः
12	0		াश्चक्रुः	लिट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाश्चक्रुः
13	0		াश्चकर्थ	लिट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाश्चकर्थ
14	0		াश्चक्रथुः	लिट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाश्चक्रथुः
15	0		াश्चक्र	लिट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाश्चक्र

16	0		◌ाञ्चकार	लिट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाञ्चकार
17	0		◌ाञ्चकर	लिट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाञ्चकर
18	0		◌ाञ्चकृवः	लिट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाञ्चकृव
19	0		◌ाञ्चकृम	लिट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाञ्चकृम
20	0		◌ाम्बभूव	लिट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाम्बभूव
21	0		◌ाम्बभूवतुः	लिट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाम्बभूवतुः
22	0		◌ाम्बभूवुः	लिट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाम्बभूवुः
23	0		◌ाम्बभूविथ	लिट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाम्बभूविथ
24	0		◌ाम्बभूवथुः	लिट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाम्बभूवथुः
25	0		◌ाम्बभूव	लिट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाम्बभूव
26	0		◌ाम्बभूव	लिट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाम्बभूव
27	0		◌ाम्बभूविव	लिट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाम्बभूविव
28	0		◌ाम्बभूविम	लिट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाम्बभूविम
29	0		◌ामास	लिट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषामास
30	0		◌ामासतुः	लिट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषामासतुः
31	0		◌ामासुः	लिट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषामासुः
32	0		◌ामासिथ	लिट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषामासिथ
33	0		◌ामासथुः	लिट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषामासथुः
34	0		◌ामास	लिट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषामास
35	0		◌ामास	लिट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषामास
36	0		◌ामासिव	लिट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषामासिव
37	0		◌ामासिम	लिट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषामासिम
38	0		◌िता	लुट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषिता
39	0		◌ितारौ	लुट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषितारौ
40	0		◌ितारः	लुट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषितारः
41	0		◌ितासि	लुट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषितासि
42	0		◌ितास्थः	लुट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषितास्थः
43	0		◌ितास्थ	लुट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषितास्थ

44	0		ितास्मि	लुट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषितास्मि
45	0		ितास्वः	लुट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषितास्वः
46	0		ितास्मः	लुट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषितास्मः
47	0		िष्यति	लृट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषिष्यति
48	0		िष्यतः	लृट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषिष्यतः
49	0		िष्यन्ति	लृट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषिष्यन्ति
50	0		िष्यसि	लृट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषिष्यसि
51	0		िष्यथः	लृट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषिष्यथः
52	0		िष्यथ	लृट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषिष्यथ
53	0		िष्यामि	लृट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषिष्यामि
54	0		िष्यावः	लृट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषिष्यावः
55	0		िष्यामः	लृट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषिष्यामः
56	0		तु	लोट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषतु
57	0		तात्	लोट्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषतात्
58	0		ताम्	लोट्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषताम्
59	0		न्तु	लोट्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषन्तु
60	0			लोट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिष
61	0		तात्	लोट्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषतात्
62	0		तम्	लोट्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषतम्
63	0		त	लोट्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषत
64	0		ाणि	लोट्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषाणि
65	0		ाव	लोट्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषाव
66	0		ाम	लोट्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषाम
67	अ		त्	लङ्	प्रथमपुरुष	एकवचन	अपिपठिषत्
68	अ		ताम्	लङ्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	अपिपठिषताम्
69	अ		न्	लङ्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	अपिपठिषन्
70	अ		ः	लङ्	मध्यमपुरुष	एकवचन	अपिपठिषः
71	अ		तम्	लङ्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	अपिपठिषतम्
72	अ		त	लङ्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	अपिपठिषत
73	अ		म्	लङ्	उत्तमपुरुष	एकवचन	अपिपठिषम्

74	अ		ाव	लङ्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	अपिपठिषाव
75	अ		ामः	लङ्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	अपिपठिषाम
76	0		ेत्	विधिलिङ्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिषेत्
77	0		ेताम्	विधिलिङ्	प्रथमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषेताम्
78	0		ेयुः	विधिलिङ्	प्रथमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषेयुः
79	0		ेः	विधिलिङ्	मध्यमपुरुष	एकवचन	पिपठिषेः
80	0		ेतम्	विधिलिङ्	मध्यमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषेतम्
81	0		ेत	विधिलिङ्	मध्यमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषेत
82	0		ेयम्	विधिलिङ्	उत्तमपुरुष	एकवचन	पिपठिषेयम्
83	0		ेव	विधिलिङ्	उत्तमपुरुष	द्विवचन	पिपठिषेव
84	0		ेतम	विधिलिङ्	उत्तमपुरुष	बहुवचन	पिपठिषेतम
85	0		्यात्	आशीर्लिङ्	प्रथमपुरुष	एकवचन	पिपठिष्यात्

Table 5.2: सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु नियम डेटाबेस

1.1. सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण हेतु संगणकीयनियम डेटाबेस का परिचय

प्रस्तुत डेटाबेस में कुछ आठ फ़ील्ड (कॉलम) हैं जिनके नाम SR, start, Dhatu, end, lakar, purush, vacana and example हैं । इनमें से पहला कॉलम क्रम संख्या के लिए है जिसके आधार पर नियमों को रखा गया है । इसका कार्य सिस्टम के असफल होने पर सिस्टम के मूल्यांकन के लिए किया जाता है । दूसरे कॉलम में प्रदत्त पद के प्रारम्भ में आने वाली स्ट्रिंग का मिलान किया जाता है । अगर यह डेटाबेस से मेल खाता है तो आगे प्रक्रिया के लिये भेजता है नही तो इसे वापस कर देता है । तीसरा कॉलम धातु का कॉलम है इस कॉलम को इस डेटाबेस में रिक्त रखा गया इसकी सूचना एक अन्य टेबल से आती है जिसका विवरण टेबल संख्या 5.2 में किया गया

है । चौथा कॉलम प्रदत्त पद के अन्त में प्राप्त वर्णो के लिये है जिसके आधार पर सनाद्यन्त पदों की पहचान की जाती है । अन्य कॉलम विश्लेषण के लिये प्रयिक्त किये जाते हैं यदि पहचान सही हो जाती है तो अन्य कॉलम की सूचना भी आगे की प्रक्रिया के लिये भेजी जाती है ।

SR	VR	S_VR	Y_VR	YL_VR	N_VR	Set/Anit	P	G
1	भू	बुभूष	बोभूय	बोभू	भावी/ भावय	सेट्	PP	1
2	एध्	एदिधिष	-	-	एधि	सेट्	AT	1
3	स्पद्र्ध्	पिस्पर्द्धिष	पास्प द्ध्र्य	पास्पद्र्ध्	स्पर्द्धि	सेट्	AT	1
4	गाध्	जिगाधिष	जागाध्य	जागाध्	गाधि	सेट्	AT	1
	बाध्	बिबाधिष	बाबाध्य	बाबाध्	बाधि	सेट्		1
5	नाथ्	निनाथिष	नानाथ्य	नानाथ्	नाथि	सेट्	PP	1
6	नाध्	निनाधिष	नानाध्य	नानाध्	नाधि	सेट्	AT	1
7	दध्	दिदधिष	दादध्य	दादध्	दाधि	सेट्	AT	1
8	स्कुन्द्	चुस्कुन्दिष	चोस्कुन्द्य	चोस्कुन्द्	स्कुन्दि	सेट्	AT	1
9	श्विन्द्	शिश्विन्दिष	शेश्विन्द्य	शेश्विन्द्	श्विन्दि	सेट्	AT	1
10	वन्द्	विवन्दिष	वावन्द्य	वावन्द्	वन्दि	सेट्	AT	1
11	भन्द्	बिभन्दिष	बाभन्द्य	बाभन्द्	भन्दि	सेट्	AT	1
12	मन्द्	मिमन्दिष	मामन्द्य	मामन्द्	मन्दि	सेट्	AT	1
13	स्पन्द्	पिस्पन्दिष	पास्पन्द्य	पास्पन्द्	स्पन्दि	सेट्	AT	1
14	क्लिन्द्	चिक्लिन्दिष	चेक्लि न्द्य	चेक्लिन्द्	क्लिन्दि	सेट्	AT	1
15	मुद्	मुमोदिष	मोमुद्य	मोमुद्	मोदि	सेट्	AT	1
16	मुद्	मुमुदिष	-	-	-	सेट्	AT	1
17	दद्	दिददिष	दादद्य	दादद्	दादि	सेट्	AT	1
18	स्वद्	सिस्वदिष	सास्वद्य	सास्वद्	स्वादि	सेट्	AT	1
19	स्वर्द्	सिस्वर्दिष	सास्वर्द्य	सास्वर्द्	स्वर्दि	सेट्	AT	1
20	उर्द्	ऊर्दिदिष	-	-	ऊर्दि	सेट्	AT	1
21	कुर्द्	चुकूर्दिष	चोकूर्द्य	चोकूर्द्	कूर्दि	सेट्	AT	1
22	खुर्द्	चुखूर्दिष	चोखूर्द्य	चोखूर्द्	खूर्दि	सेट्	AT	1

23	गुर्द्	जुगूर्दिष	जोगुर्द्य	जोगुर्द्	गूर्दि	सेट्	AT	1
24	गुद्	जुगुदिष	जोगुद्य	जोगुद्	गोदि	सेट्	AT	1
25	षूद्	सुसूदिष	सोसूद्य	सोसूद्	सूदि	सेट्	AT	1
26	ह्लाद्	जिह्लादिष	जाह्लाद्य	जाह्लाद्	ह्लादि	सेट्	AT	1
27	ह्लाद्	जिह्लादिष	जाह्लाद्य	जाह्लाद्	ह्लादि	सेट्	AT	1
28	स्वाद्	सिस्वादिष	सास्वाद्य	सास्वाद्	स्वादि	सेट्	AT	1
29	पर्द्	पिपर्दिष	पापर्द्य	पापर्द्	पर्दि	सेट्	AT	1
30	यत्	यियतिष	यायत्य	यायत्	याति	सेट्	AT	1
31	युत्	युयुतिष	योयुत्य	योयुत्	योति	सेट्	AT	1
32	युत्	युयोतिष	-	-	-	सेट्	AT	1
33	जुत्	जुजुतिष	जोजुत्य	जोजुत्	जोति	सेट्	AT	1
34	जुत्	जुजोतिष	-	-	-	सेट्	AT	1
35	वित्थ्	विविथिष	वेवित्थ्य	वेवेत्थ्	वेत्थि	सेट्	AT	1
36	वेत्थ्	विवेथिष्	वेवेत्थ्य	वेवेत्थ्	वेत्थि	सेट्	AT	1
37	श्रन्थ्	शिश्रन्थिष	शाश्रन्थ्य	शाश्रन्थ्	श्रन्थि	सेट्	AT	1
38	ग्रन्थ्	जिग्रन्थिष	जाग्रन्थ्य	जाग्रन्थ्	ग्रन्थि	सेट्	AT	1
39	कत्थ्	चिकत्थिष	चाकत्थ्य	चाकत्थ्	कत्थि	सेट्	AT	1
40	अत्	अतितिष	-	-	आति	सेट्	PP	1
41	चित्	चिचितिष	चेचित्य	चेचित्	चेति	सेट्	PP	1
42	चित्	चिचेतिष	-	-	-	सेट्	PP	1
43	च्युत्	चुच्युतिष	चोच्युत्य	चोच्युत्	च्योति	सेट्	PP	1
44	श्च्युत्	चुश्च्योतिष	चोश्च्युत्य	चोश्च्युत्	श्च्योति	सेट्	PP	1
45	मन्थ्	मिमन्थिष	मामथ्य	मामथ्	मन्थि	सेट्	PP	1
46	कुथ्	चुकुन्थिष	चोकुन्थ्य	चुकुन्थ्	कुन्थि	सेट्	PP	1
47	पुन्थ्	पुपुन्थिष	पोपुन्थ्य	पोपुन्थ्	पुन्थि	सेट्	PP	1
48	लुन्थ्	लुलुन्थिष	लोलुन्थ्य	लोलुन्थ्	लुन्थि	सेट्	PP	1
49	मन्थ्	मिमन्थिष	मामन्थ्य	मामन्थ्	मन्थि	सेट्	PP	1
50	षिध्	सिसिधिष	सेषिध्य	सेषिध्	सेधि	सेट्	PP	1
51	षिध्	सिसेधिष	-	-	-	सेट्	PP	1
52	सिध्	सिषित्स	सेषिध्य	सेषिध्	सेधि	सेट्	PP	1

53	खाद्	चिखादिष	चाखाद्य	चाखाद्	खादि	सेट्	PP	1
54	खद्	चिखदिष	चाखद्य	चाखद्	खादि	सेट्	PP	1
55	बद्	बिबदिष	बाबद्य	बाबद्	बादि	सेट्	PP	1
56	गद्	जिगदिष	जागद्य	जागद्	गादि	सेट्	PP	1
57	रद्	रिरदिष	रारद्य	रारद्	रादि	सेट्	PP	1
58	नद्	निनदिष	नानद्य	नानद्	नादि	सेट्	PP	1
59	अर्द्	अर्दिदिष	-	-	अर्दि	सेट्	PP	1
60	नर्द्	निनर्दिष	नानर्द्य	नानर्द्	नर्दि	सेट्	PP	1
61	गर्द्	जिगर्दिष	जागर्द्य	जागर्द्	गर्दि	सेट्	PP	1
62	तर्द्	तितर्दिष	तातर्द्य	तातर्द्	तर्दि	सेट्	PP	1
63	कर्द्	चिकर्दिष	चाकर्द्य	चाकर्द्	कर्दि	सेट्	PP	1
64	खर्द्	चिखर्दिष	चाखर्द्य	चाखर्द्	खर्दि	सेट्	PP	1
65	अन्त्	अन्तितिष	-	-	अन्ति	सेट्	PP	1
66	अन्द्	अन्दिदिष	-	-	अन्दि	सेट्	PP	1
67	इन्द्	इन्दिदिष	-	-	एदि	सेट्	PP	1
68	बिन्द्	बिबिन्दिष	बेबिन्द्य	बेबिन्द्	बिन्दि	सेट्	PP	1
69	भिन्द्	बिभिन्दिष	बेभिन्द्य	बेभिन्द्	भिन्दि	सेट्	PP	1
70	गन्द्	जिगन्दिष			गन्दि	सेट्	PP	1
71	निन्द्	निनिन्दिष	नेनिन्द्य	नेनिन्द्	निन्दि	सेट्	PP	1
72	नन्द्	निनन्दिष	नानन्द्य	नानन्द्	नन्दि	सेट्	PP	1
73	चन्द्	चिचन्दिष	चाचन्द्य	चाचन्द्	चन्दि	सेट्	PP	1
74	त्रन्द्	तित्रन्दिष	तात्रन्द्य	तात्रन्द्	त्रन्दि	सेट्	PP	1
75	कन्द्	चिकन्दिष	चाकन्द्य	चाकन्द्	कन्दि	सेट्	PP	1
76	क्रन्द्	चिक्रन्दिष	चाक्रन्द्य	चाक्रन्द्	क्रन्दि	सेट्	PP	1
77	क्लन्द्	चिक्लन्दिष	चाक्लन्द्य	चाक्लन्द्	क्लन्दि	सेट्	PP	1
78	क्लिन्द्	चिक्लिन्दिष	चेक्लिन्द्य	चेक्लिन्द्	क्लिन्दि	सेट्	PP	1
79	शुन्ध्	शुशुन्धिष	शोशुध्य	शोशुध्	शुन्धि	सेट्	PP	1

Table 5. 3: सनादि धातुपाठ

इन्ही नियमों के आधार पर प्रदत्त प्रत्येक पद के लिये सिस्टम एक डेटासेट प्रोग्राम के माध्यम से तैयार करता है तथा प्रदत्त पद से मिलान करता है। यदि यह प्रदत्त पद से मिलान हो जाता है तो सिस्टम अन्य सूचनाओं के साथ अन्य प्रक्रिया के लिये भेजता है। अन्यथा अगले स्ट्रिंग सेट से मिलान करता है यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि सारे नियम समाप्त नहीं हो जाते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई प्रयोक्ता "पिपठिषति" पद सिस्टम को प्रदान करता है तो सबसे पहले तालिका संख्या 5.1 में दिखाए गये डेटा के आधार सिस्टम पहली स्ट्रिंग "बुभूषति" जिसको मैच करने की कोशिश सिस्टम करेगा यह स्ट्रिंग मैच न होने के कारण दूसरे नियम पर जायेगा "अतितिषति" इसी प्रकार एक स्थान पर "पिपठिषति" पद बनेगा जो प्रदत्त पद से मैच हो जायेगा और सिस्टम आगे की प्रक्रिया के लिये इसके लकार, पुरुष एवं वचन तथा अन्य सूचना जैसे सेट/अनिट आत्मनेपद/परस्मैपद आदि की सूचना भेज देगा।

2. वेब आधारित संस्कृत सनाद्यन्त तन्त्र की संरचना

वेब आधारित संस्कृत सनाद्यन्त सूचना तन्त्र यूजर इण्टरफेस (interface) का विकास पाइथॉन सर्वर पेजेज (PSP) में किया गया है, तथा डेटाबेस एवं टेक्सट फाइल का प्रयोग किया गया है। सिस्टम हेतु पाइथॉन प्रोग्रामिंग (Bill, 2014; Dawson, 2010 and Knowlton, 2004) भाषा का प्रयोग किया गया है। इस सिस्टम की संरचना बहु-स्तरीय है जिसको चित्र संख्या 4.1 में दिखाया गया है।

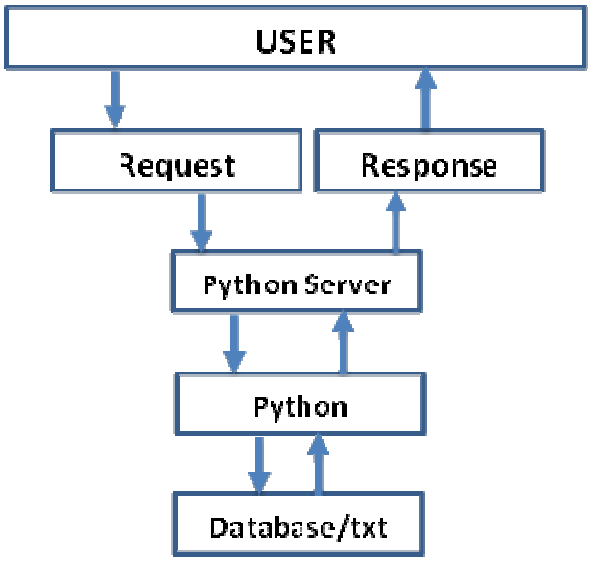

चित्र 4.1: वेब आधारित संस्कृत सनाद्यन्त सूचना तन्त्र की संरचना

2.1 पाइथॉन सर्वर पेजेज (Python Server Pages)

यह सिस्टम इन्पुट (Input) तथा ऑउटपुट (output) एक यूजर इंटरफेस (User Interface) की सहायता से स्वीकृत करता है । इस इण्टरफेस को पाइथॉन सर्वर पेजेज (Python Server Pages) में विकसित किया गया है[358] । इसका स्क्रीनशॉट चित्र संख्या 4.2 तथा चतुर्थ परिशिष्ट में दिया गया है । यह इंटरफेस पीएसपी में विकसित किया है, जिसमें वेब पेज के लिये एचटीएमएल (HTML) (Powell, 2010), टेक्सट फॉर्मेटिंग के लिये सीएसएस (CSS) (Powell, 2010) तथा पेज को परिवर्तनशील बनाने के लिये जावा स्क्रिप्ट (Java Script) (Nixon, 2015) के साथ पाइथॉन (Python) (Bill, 2014; Dawson, 2010 and Knowlton, 2004) के कोड शामिल हैं । कोड का प्रारूप नीचे दिया गया है ।

```
<spy:parent src="../template/template.spy" />
[[.import name=redirect ]]
[[.import name=cookie ]]
[[\
# coding: utf-8
```

[358] www.spyce.in

```
import string, Main, codecs, socket, cgi, os, re
from time import gmtime, strftime
]]
<link href="themes/1/tooltip.css" rel="stylesheet" type="text/css" />
<script src="themes/1/tooltip.js" type="text/javascript"></script>
        <style type="text/css">
h4 { font-size: 16px; font-family: "Trebuchet MS", Verdana; line-height:18px;}
table {
        border-collapse: collapse;
                }</style>
                <meta charset="UTF-8">
<TITLE>Sanskrit Secondry Verb Recognizer and Analyzer</TITLE>
<body>
 [[\
itext=""
if "itext" in (request.post()):#.strip()) != None:
itext = request.post('itext')[0].strip()
        if request.post('k'):
                k = string.join(request.post('s'))+string.join(request.post('k'))
        else: k = string.join(request.post('s'))
                ]]
<p align="center">
<center>
<table class="main" border="1" bordercolordark="navy" bordercolor="navy"
cellpadding="0" cellspacing="0" width="80%" height="25">
<tr>
<td class="main" width="100%" align="center">
<p align="center"><b><font face="Arial Unicode MS" color="navy"
size="6px">
```

सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण

Sanskrit Secondry Verb Recognizer and Analyzer

The "Sanskrit Secondry Verb Recognizer and Analyzer (सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण)" is a result of the doctoral research

carried out by Mr. Bhupendra Kumar (Ph.D. 2014-2018) under the supervision of Dr. Subhash Chandra, Assistant Professor,

Computational Linguistics, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi for the award of Ph. D. degree.

The title of thesis was संस्कृत सनाद्यन्त पदों का संगणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण.

The coding for the application was done by Dr. Subhash Chandra.

Data set and rules were prepared by Mr. Bhupendra Kumar

and Dr. Subhash Chandra.

<hr>

सनाद्यन्त क्रियापदों के सङ्गणकीय अभिज्ञान एवं विश्लेषण के लिए यूनीकोड में वाक्य या पाठ लिखें।

(Enter sentence or text in Unicode for sanadyanta recognition and analysis)


```
</p>

<form
action=index.spy action="[[=request.uri('path')]]" name=itext
method=post enctype="multipart/form-data" accept-
Charset="UTF-8">
<p
align="center">

<textarea name='itext' cols="50" rows="3"
style="border:solid 2px #4b545f; font-family: Arial Unicode MS;
color:black; font-size:20px">[[= itext]]</textarea></font>

</p>

<p
align=center>

<input style="border:solid 2px #4b545f; font-family: Arial
Unicode MS; color:black; font-size:14px" type=submit
value="सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण के लिए क्लिक करें">

</p>
</form>

<hr>

<p
align="left">
```

```
<font face="Helvetica, sans-serif" size=4 color="#4b545f">

<b><u>

Result:

</u></b>

</font>

</p><br>
<p align="left">
<font face="Arial Unicode MS" size= "6" color=navy
align="left">
[[\
if itext != "":
  print Main.main(itext.decode("utf-8")),"<br><hr>"

]]
```

2.2 स्पाइसी (Spyce) वेब सर्वर (Web Server)

प्रस्तुत सर्वर के लिये Spyce पाइथॉन सर्वर[359] (Bill, 2014; Dawson, 2010 and Knowlton, 2004) का प्रयोग किया गया है। स्पाइसी यह भी सर्वर हेतु एक अत्यावश्यक भाषा है जो परिवर्तनशील एचटीएमएल (HTML) (Powell, 2010) को बड़ी ही कुशलता से समर्थन करता है। यह जेएसपी जैसा ही है।

[359] http://spyce.sourceforge.net/

2.3 डेटाबेस एवं टेक्सट फाइल (Database and text file as back end)

सनाद्यन्त क्रियापदों से सम्बन्धित डेटा तथा नियम, डेटाबेस तथा टेक्सट फाइल में संरक्षित किये गये हैं। तथा डेटाबेस संरक्षण के लिये माइएसक्यूएल (MySQL)[360] (Vaswani, 2004 and DuBois, 2015) का प्रयोग किया गया है (Nixon, 2015)। इसमें डेटा देवनागरी यूनीकोड[361] में रखा गया है। साथ ही साथ कुछ डेटा टेक्सट फाइल में भी रखा गया है। इस डेटाबेस में विभिन्न प्रत्ययों के लिये कुल 12 टेबल प्रयुक्त किये गये हैं। जिसमें डेटा का प्रारूप ऊपर बताया जा चुका है।

3. सनाद्यन्त सिस्टम के घटक

यह सिस्टम सबसे पहले प्रदत्त सनाद्यन्त की पहचान करता है फिर विश्लेषण के लिये डेटाबेस में सर्च करता है तथा सूचना प्राप्त होने पर सभी सूचनाओं को वेब पेज पर दिखाने के लिये भेजता है। इन सभी प्रक्रियाओं के लिये निम्नलिखित घटकों का प्रयोग किया गया है।

3.1 पूर्व प्रक्रिया सनाद्यन्त

सबसे पहला घटक Preprocessor है जो आये हुये इन्पुट की जांच करता है तथा न्यूनाधिक कमियों को सही करता है।

3.2 सनाद्यन्त पहचानकर्त्ता (Sanadyanta Recognizer)

सनाद्यन्त पहचानकर्त्ता इस सिस्टम का महत्त्वपूर्ण घटक है। जो सनाद्यन्त की पहचान करता है। यह पहचान सनाद्यन्त डेटाबेस में सनाद्यन्त तालिका की सहायता से की जाती है। जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। अगर प्रदत्त पद डेटाबेस के किसी नियम से मिलता है तो उसको सभी सूचनाओं के साथ वापस कर दिया जाता है। यदि नहीं मिलता तो "**यह सनाद्यन्त पद नहीं है**"" के साथ वापस कर देता है।

[360] https://www.mysql.com/
[361] http://unicode.org/

3.3 सनाद्यन्त विश्लेषक (Sanadyanta Analyzer)

सनाद्यन्त पहचान करने के बाद सनाद्यन्त विश्लेषक पदों का विश्लेषण करता है । यह विश्लेषण डेटाबेस से प्राप्त की जाती है । डेटाबेस का प्रारूप तालिका संख्या 4.1 में दिखाया गया है । पाइथॉन कोड का प्रारूप नीचे दिखाया जा रहा है ।

```
def SanGenerator(root,suffix):
  sanRoop = []
  sanDhatu = {}
  for Rrule in RecRule [1:]:
    sp = Rrule.split("\t")
    start,end, lakar_purush_vacana = sp[1].strip(),sp[2].strip(),sp[3]
    #if inp.startswith(start) == True and inp.endswith(end) == True:
    for SanRule in DhatuRecRule[1:]:
      sr = SanRule.split("\t")
      sanRup,MDhatu,suf = sr[-2],sr[2],sr[-1]
      if suffix.encode("utf-8").strip() == suf.encode("utf-8").strip()\
        and root.encode("utf-8").strip() == MDhatu.encode("utf-8").strip():
        fnStr = start+sanRup+end+"_"+lakar_purush_vacana
        sanRoop.append(fnStr.encode("utf-8"))
        break
  for i in sanRoop:
```

```
  ii = i.strip().split("_")
  j = ii[-1].split(".")[0]
  jj = ii[-1].split(".")[1]
  jjj = j+"."+jj
  for k in ii:
    if ii[-1].startswith(jjj):
      print k,"<br>"
  print "###<br>"
print "<hr>"
```

4. सनाद्यन्त विश्लेषक सिस्टम की प्रक्रिया (Process of the Sanadyanta Information System):

वेब आधारित संस्कृत सनाद्यन्त विश्लेषक विभिन्न चरणों में कार्य करता है । इसकी पूरी प्रकिया को चित्र संख्या 4.2 से समझा जा सकता है ।

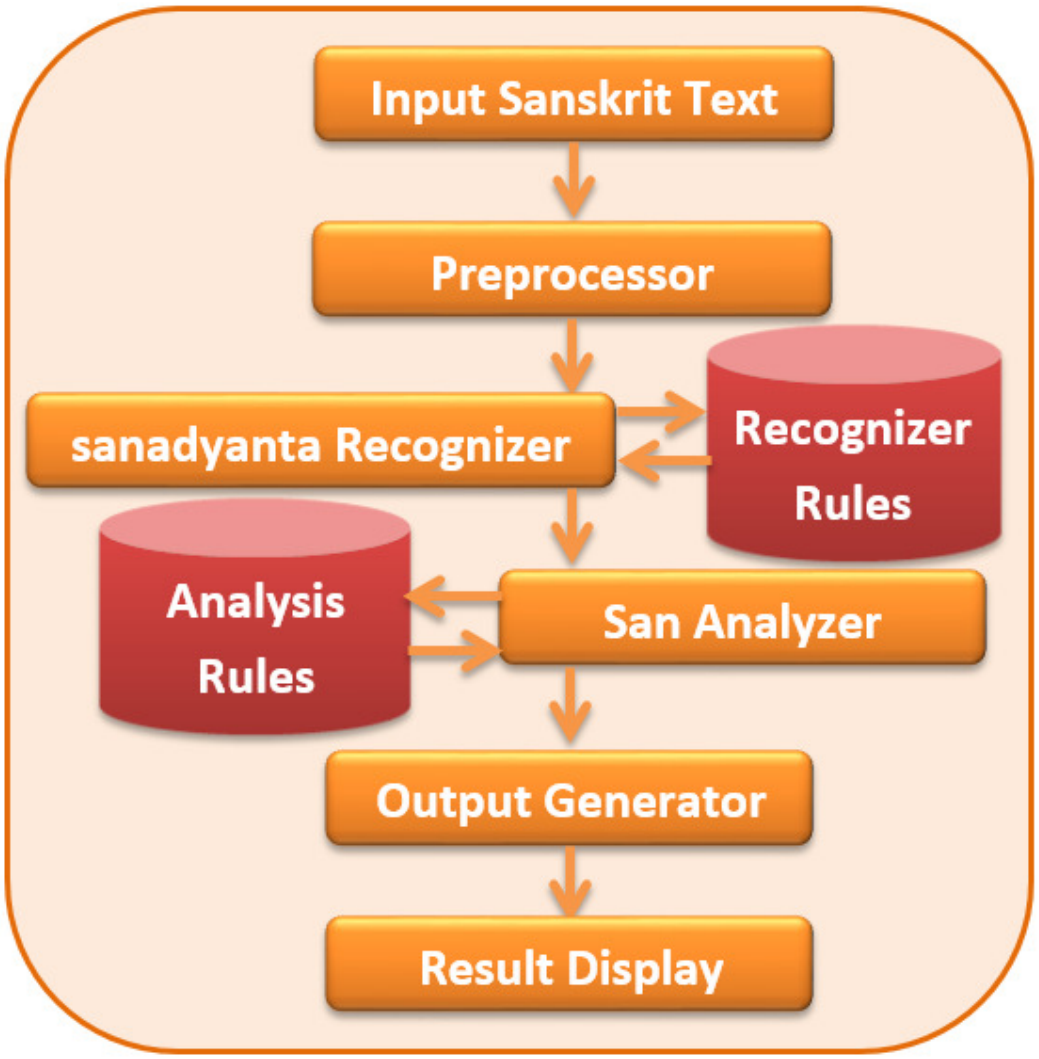

Figure 4.3: सनाद्यन्त विश्लेषक सिस्टम की प्रक्रिया (Process of the Sanadyanta Analyzer)

पञ्चम अध्याय

वेब आधारित सनाद्यन्त क्रियापदों का अनुप्रयोग अभिज्ञान एवं विश्लेषण सिस्टम

इस शोधकार्य का परिणाम एक वेब आधारित सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण सिस्टम जो एक संस्कृत वाक्य में सनाद्यन्त क्रियापदों के अभिज्ञान के साथ-साथ उसका विश्लेषण भी करता है। विश्लेषण में प्रकृति प्रत्यय विभाग शामिल है। यह सिस्टम संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय http://sanskrit.du.ac.in पर ई-शिक्षण टूल्स (E-Learning Tools) के अन्तर्गत उपलब्ध है। इस वेबसाइट को खोलने पर चित्र सङ्ख्या 5.1 में दिखाया गया यूजर इंटरफेस खुलता है। इसी वेब पेज पर प्रयोक्ता इन्पुट दे सकता है तथा ऑउटपुट के रूप में परिणाम भी यहीं देख सकता है। इस सिस्टम को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

1. इन्पुट मकैनिज्म (Input Mechanism):

पाठबॉक्स (Text Box):

वेब पेज पर एक पाठबॉक्स उपलब्ध है जिसके माध्यम से प्रयोक्ता यूनीकोड देवनागरी में इन्पुट के रूप में संस्कृत का कोई भी सनाद्यन्त पद अथवा वाक्य टंकित कर सकता है।

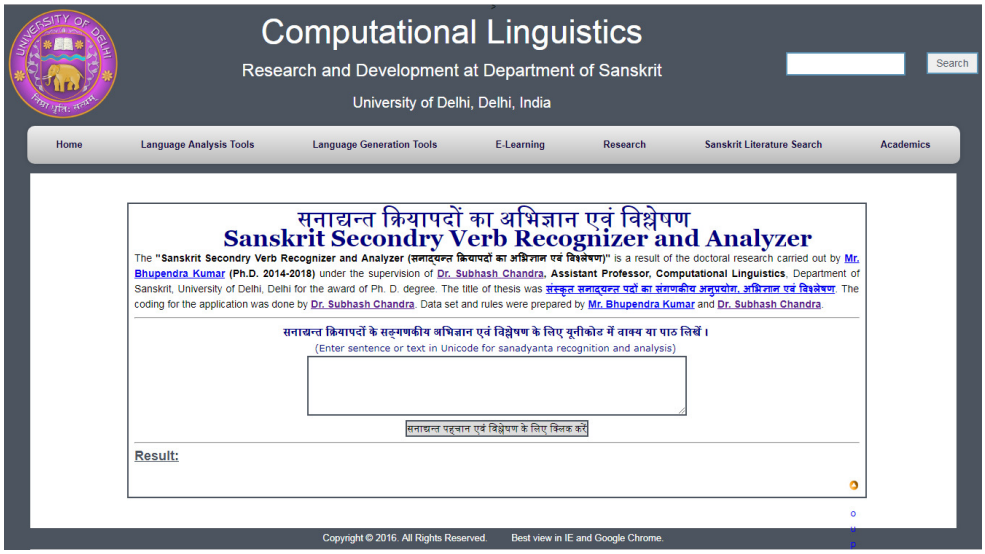

Figure 5.1: पाठबॉक्स (Text Box)

वर्तमान समय में यह सिस्टम यूनीकोड देवनागरी में ही टंकित या टाइप किया हुआ पद व वाक्य स्वीकार करता है । अतः इन्पुट केवल यूनीकोड में देवनागरी लिपि में ही दिया जा सकता है, अन्यथा कोई परिणाम प्राप्त नहीं होगा। पाठबॉक्स (Text Box) चित्र सङ्ख्या 5.1 में दिखाई गई है।

1.2 सब्मिट बटन (Submit Button):

सब्मिट बटन से उपरोक्त किसी भी माध्यम में प्रदत्त इन्पुट को सूचना प्रक्रिया के लिये बैक इण्ड प्रोग्राम को प्रेषित करता है। सब्मिट होते ही सबसे पहले इन्पुट का परीक्षण होता है कि वह मान्य संस्कृत पाठ है अथवा नहीं। सत्यापित होने पर अन्य प्रक्रिया के लिये भेजा जाता है जिससे सारी सूचनाएँ आउटपुट के रूप में इसी पेज पर परिणाम से नीचे प्रिण्ट करता है। सब्मिट बटन चित्र सङ्ख्या 5.2 में **"सनाद्यन्त पदों की पहचान एवं विश्लेषण के लिये क्लिक करें"** से दिखाया गया है।

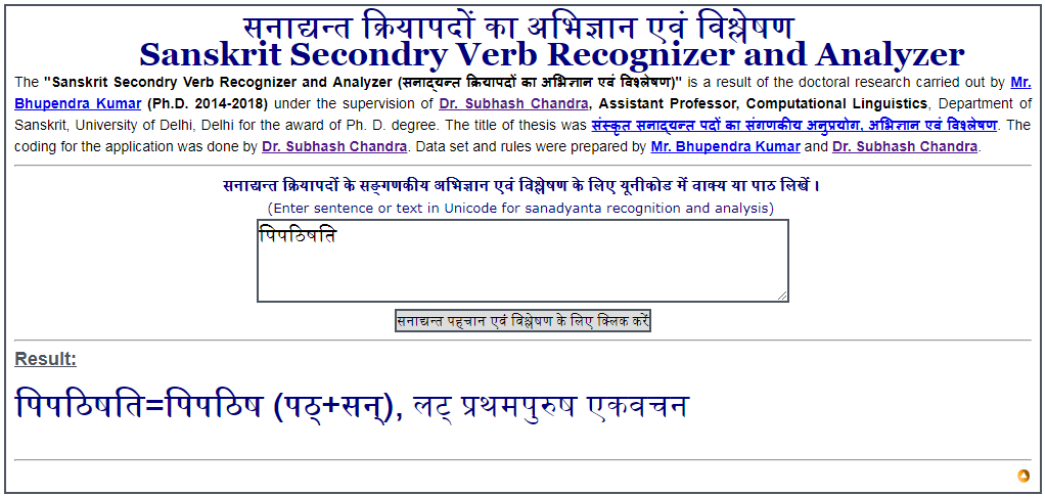

Figure 5.2: सब्मिट बटन (Submit Button)

2. आउटपुट (Output):

आउटपुट के रूप में प्रदत्त इन्पुट की पहचान की जाती है। यदि इन्पुट सनाद्यन्त पद है तो उसका पूरा विश्लेषण भी प्रदत्त किया जाता है। इसका परिणाम यूजर इंटरफेस के परिणाम बटन से

नीचे प्रिंट होता है । जैसाकि चित्र सङ्ख्या 5.3 में दिखाया गया है । जिसका विस्तृत विवरण परिणाम विवरण में दिया गया है ।

3. परिणाम विवरण (Result Descriptions):

परिणाम के रूप में विश्लेषित सनाद्यन्त पद से सम्बन्धित सभी सूचनाएं प्राप्त होती हैं । जो किसी भी प्रयोक्ता को संस्कृत सनाद्यन्त क्रियापदों का ज्ञान कराने में समर्थ होगा । साथ ही साथ इसका अर्थ निर्धारण करने में भी सहायक होगा । यह सिस्टम मशीनी अनुवाद या किसी भी पार्सर के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है ।

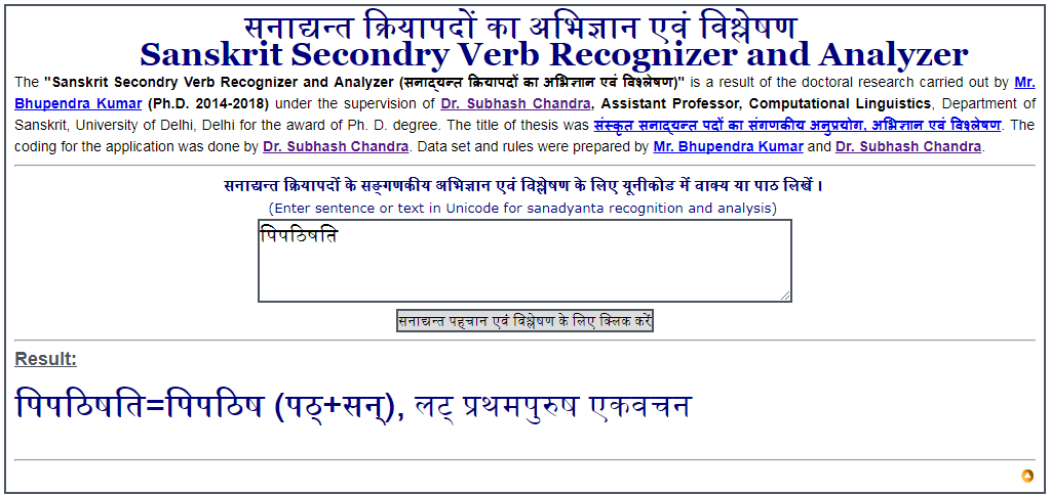

Figure 5.3: आउटपुट (Output)

परिणाम का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है-

3.1 धातु सूचना (Root Information):

परिणाम में सबसे पहले धातु की सूचना होती है । जैसाकि चित्र संख्या 5.3 दिया गया है । इसमें मूल धातु तक जाने में प्रयोक्ता को सूचना प्राप्त होती है ।

3.2 सनाद्यन्त प्रत्यय सूचना (Sanadyant Suffix Information):

धातु सूचना के पश्चात् परिणाम में सनादि प्रत्यय का नाम आता है। प्रदत्त इन्पुट पद में कौन सा सनादि प्रत्यय है इसकी सटीक जानकारी परिणाम में सम्मिलत की गई है। प्रत्यय के ऊपर कर्सर ले जाने पर यह प्रत्यय किस अर्थ में होता है इसकी पूरी जानकारी प्राप्त होती है।

3.3 लकार सूचना:

प्रदत्त सनाद्यन्त पद किस लकार में प्रयुक्त हुआ इसकी भी सूचना परिणाम में शामिल होती है।

3.4 पुरूष एवं वचन सूचना:

प्रदत्त सनाद्यन्त पद किस पुरूष एवं किस वचन में होता है। इसकी पूरी सूचना यहाँ प्राप्त हो जाती है। जिससे प्रदत्त सनाद्यन्त पद के अर्थ निर्धारण में काफी सहायता मिलती है।

3.5 सेट/अनिट सूचना:

प्रदत्त सनाद्यन्त पद में धातु सेट है या अनिट धातु है इसकी भी सूचना विश्लेषण में शामिल की गई है।

3.6 पद सूचना:

प्रदत्त सनाद्यन्त पद में धातु आत्मनेपद या परस्पैपद है इसकी भी सूचना सिस्टम प्रदान करता है।

निष्कर्ष एवं भावी अनुसन्धान सम्भावनाएँ

यह अनुसन्धान एवं विकास कार्य दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएचडी उपाधि हेतु सम्पन्न किया गया है। पाणिनि अष्टाध्यायी अनेक प्रकार के प्रत्ययों की चर्चा प्राप्त होती है यथा- कृत्, तद्धित, सनादि। इन सभी प्राप्त प्रत्ययों में सनाद्यन्तों का अपना एक अलग महत्व है क्योंकि वाक्य के संक्षेपण में यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस अनुसंधान में शोध प्रबन्ध लेखन के साथ-साथ सिस्टम विकास का कार्य भी शामिल है। अनुसंधान के दौरान सबसे पहले सनाद्यन्त से सम्बन्धित संगणकीय डेटाबेस निर्माण के लिये डेटा संग्रहण किया गया। फिर इन डेटा को डिजिटलाइज करके उसे प्रोग्राम में उपयोग के योग्य बनाया गया। इस डेटाबेस में सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण के लिये विभिन्न नियम तथा उदाहरण के विश्लेषण हेतु भी बहुत सारे छोटे-छोटे कार्य किये गये। इसके बाद सिस्टम का मूल्यांकन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है जिसके लिए यह कार्य किया गया। इस मूल्यांकन के पश्चात् प्राप्त कमियों को दूर करने का प्रयास भी किया गया है। इसके बाद इस सिस्टम को http:sanskrit.du.ac.in नामक दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की विभागीय वेबसाइट पर सर्वोपयोग के लिये उपलब्ध कराया गया। यद्यपि यह सिस्टम बहुत ही सावधानी से विकसित किया गया है। फिर भी इसमें बहुत सी कमियाँ भी हैं जिसको भविष्य में दूर करने का प्रयास किया जायेगा।

1. सिस्टम की कुछ विशिष्टताएँ:

1. यह सिस्टम सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण करता है।
2. यह सिस्टम नियम एवं उदाहरण आधारित विधि के आधार पर विकसित किया गया है।
3. यह सिस्टम देवनागरी यूनीकोड पाठ स्वीकार करता है और परिणाम भी इसी फॉर्मेट में देता है।
4. सनाद्यन्त पर संगणकीय विश्लेषण से सम्बन्धित यह पहला कार्य है।
5. इस सिस्टम के उपयोग से छात्रों को काफी मदद होगी।

2. सिस्टम की कुछ सीमाएँ:

1. अभी तक यह सिस्टम केवल देवनागरी यूनीकोड में इन्पुट लेता है तथा इसी फॉर्मेट में परिणाम देता है । अतः यह सिस्टम केवल हिन्दी माध्यम के जिज्ञासुओं के लिये ही उपयोगी हो सकता है।
2. यद्यपि सभी प्रकार के सनाद्यन्तों की पहचान एवं विश्लेषण नियम के आधार पर किया जाता है । फिर भी कुछ पदों की पहचान एवं विश्लेषण नियम के आधार न करके उदाहरण आधारित विधि से किया गया है ।
3. नामधातुओं की पहचान में बहुत कठिनाई हुई इसका रिजल्ट डेटा के आधार पर किया गया है ।
4. वाक्यों में सनाद्यन्त पहचान में कुछ कठिनाईयाँ आ सकती हैं ।

3. शोध की भावी सम्भावनाएँ:

इस शोध से सम्बन्धित इस प्रकार के सिस्टम का विकास भविष्य में किया जा सकता है ।

1. भविष्य में इस प्रकार का सिस्टम, विभिन्न भाषाओं में प्राप्त लिपियों में सनाद्यन्तों को आधार बनाकर तैयार किया जा सकता है, यथा हिन्दी, उर्दू, तमिल तथा पंजाबी इत्यादि ।
2. इसको आधार बनाकर सनाद्यन्त पदों की रूपसिद्धि हेतु ससूत्र रूपसिद्धि सिस्टम का विकास किया जा सकता है ।
3. इस सिस्टम को मशीनी अनुवाद के लिये उपयोग किया जा सकता है ।
4. इसको ई-शिक्षण हेतु उपयोग करने के योग्य बनाया जा सकता है ।

सन्दर्भग्रन्थसूची (References)

1. Agrawal, Muktanand, 2007, Computational identification and analysis of Sanskrit verb-forms of bhvaadigana, Diss. Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
2. Baeza, Richardo. 2003. Modern Information Retriva. Pearson Education.
3. Bhadra, Manji, 2007, Computational analysis of gender in Sanskrit noun phrases for Machine Translation, Mphil. Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
4. Bhadra, Manji, Singh, Surjit Kumar, Kumar, Sachin, Chandra, Subhash, Agrawal, Muk-tanand, Chandrashekar, R, Mishra, Sudhir Kumar & Jha, Girish Nath, 2009, "Sanskrit Analysis System (SAS)", Sanskrit Computational Linguistics Lecture Notes in Computer Science by Springer Berlin Heidelberg, Page 116-133.
5. Bharati, Akshar, Amba P. Kulkarni, and V. Sheeba. "Building a wide coverage Sanskrit morphological analyzer: A practical approach." The First National Symposium on Modelling and Shallow Parsing of Indian Languages, IIT-Bombay. 2006.
6. Bill, Lubanovic. 2014. Introducing Python. Shroff Publishers & Distributers Private Limited. Mumbai.
7. Chandra, Subhash & Jha, Girish Nath, 2011, Computer Processing of Sanskrit Nominal Inflections: Methods and Implementation, Cambridge Scholars Publishing (CSP), Newcastle upon Tyne.
8. Chandra, Subhash, 2006, Machine Recognition and Morphological Analysis of Subanta-padas, Diss. Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
9. Chandra, Subhash, 2006, Machine Recognition and Morphological Analysis of Subanta-padas, Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
10. Chandra, Subhash, 2012, Restructuring of Paninian Morphological Rules for Computer processing of Sanskrit Nominal Inflections, Proc. of the Workshop

on Indian Language Data: Resources and Evaluation, Lütfi Kirdar Istanbul Exhibition and Congress Center, Turkey.

11. Chandra, Subhash, Kumar, Bhupendra, Kumar, Vivek and Sakshi. 2015. Detection, Analysis and Word Formation Process of Sanskrit Morphology: A Hybrid Approach, presented in Twenty Second International Congress of Vedanta (22Vedanta). Special Center for Sanskrit Studies. Jawaharlal Nehru University. New Delhi During. Dec 27-30. 2015.
12. Dawson, Michael. 2010. Python Programming for the Absolute Beginne. Delmar Cengage Learning.
13. DuBois, Paul. 2015. MySQL. Pearson Education.
14. Jurafsky, Daniel. 2013. Speech and Language Processing: An Introduction to Natural Language Processing. Computational Linguistics and Speech Recognition. Pearson Education.
15. Knowlton, James O. 2004. Python: Create-Modify-Reuse. Wrox.
16. Kulkarni, Amba, and K. V. Ramakrishnamacharyulu. "Parsing Sanskrit texts: Some relation specific issues." Proceedings of the 5th International Sanskrit Computational Linguistics Symposium. DK Printworld (P) Ltd. 2013.
17. Kulkarni, Amba, Sheetal Pokar, and Devanand Shukl. "Designing a Constraint Based Parser for Sanskrit." Sanskrit Computational Linguistics. 2010.
18. Kumar, Anil, V. Sheebasudheer, and Amba Kulkarni. "Sanskrit compound paraphrase generator." Proceedings of ICON 2009(2009).
19. Kumar, Anil, Vipul Mittal, and Amba Kulkarni. "Sanskrit Compound Processor." Sanskrit Computational Linguistics6465 (2010): 57-69.
20. Kumar, Sachin, 2007, Sandhi splitter and analyzer for Sanskrit (with special reference to aC Sandhi), Diss. Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
21. Mishra, Sudhir kumar, 2007, Sanskrit Karaka Analyzer for Machine Translation, Ph.D. Thesis. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
22. N., Murali, R.J., Ramasreee and K.V.R.K., Acharyulu, 2014, Kridanta Analysis For Sanskrit, International Journal on Natural Language Computing (IJNLC) Vol. 3, No.3, June.

23. Nair, Sivaja S., and Amba Kulkarni. "The Knowledge Structure in Amarakosa." Sanskrit Computational Linguistics. 2010.
24. Nixon, Robin. 2015. Learning PHP, MySQL & JavaScript with j Query, CSS & HTML5. Shroff Publishers & Distributers Private Limited - Mumbai.
25. Powell, Thomas. 2010. HTML & CSS: The Complete Reference. McGraw Hill Education.
26. Singh, Surjit Kumar, 2008, Kridanata Recognition and processing for Sanskrit, Diss. Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
27. Vaswani, Vikram. 2004. MySQL (TM): The Complete Reference. McGraw Hill Education (India) Private Limited.
28. अग्रवाल, निधि, 2012, जैनेन्द्र धातुपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
29. अवस्थी, रुद्रप्रताप (सम्पा.), 1972, *पाणिनीयशिक्षा,* चौखम्बा संस्कृतसीरीज आफिस, वाराणसी।
30. अवस्थी, शिवशंकर (सम्पा.) 2010, *वाक्यपदीयम्: ब्रह्मकाण्ड*, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
31. आचार्य, विष्णु, 1964, *पञ्चतन्त्र,* पंण्डित पुस्तकालय काशी।
32. आर्य, कुलदीप, 1980, पाणिनिय धातुपाठ में पठित गत्यर्थक धातुओं की अर्थवैज्ञानिक समीक्षा, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
33. उपाध्याय, बलदेव एवं पाण्डेय, ओमप्रकाश, 1997, *संस्कृत-वाङ्मय का बृहद इतिहास वेदाङ्ग खण्ड,* उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
34. उपाध्याय, बलदेव एवं पाण्डेय, ओमप्रकाश, 1997, *संस्कृत-वाङ्मय का बृहद इतिहास वेदाङ्ग खण्ड,* उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
35. कश्यप, नीरजा, 1987, कालिदास के नाटकों में सोपसर्ग क्रियाएँ, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

36. कुमार, धर्मेन्द्र, 2007, पाणिनिय धातुपाठ में पठित भोजनार्थक, पानार्थक एवं शब्द कर्मार्थक धातुओं के अर्थनिर्देश का विश्लेषणात्मक अध्ययन, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

37. कुमार, मुकेश, 2010, अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्द महाकाव्य में प्रयुक्त तिङन्तों का विश्लेषणात्मक लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

38. कुमारी, प्रवीन, 2007, शिशुपालवधम् के प्रथम दो सर्गों में प्रयुक्त तिङन्तों का संरचनात्मक एवं अर्थमूलक विश्लेषण, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

39. कुशवाहा, 1984, लघुसिद्धान्तकौमुदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी।

40. गणि, हर्षकुल, 2005, *कविकल्पद्रुम*, सुरेन्द्रसूरीश्वर जी तत्वज्ञानशाला, अहमदाबाद।

41. गाङ्गुली, पृथा, 2010, शाकटायन-धातुपाठ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

42. गैरोला वाचस्पति, 2014, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन वारणसी।

43. गौड, नीलम 2015, *नामधातुक्रियारूप: भाषाशास्त्रीय अध्ययन*, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली।

44. गौड, नीलम 2015, *नामधातुक्रियारूप: भाषाशास्त्रीय अध्ययन*, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली

45. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, 2003, *अष्टाध्यायीप्रथमावृत्ति भाग 1,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा।

46. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, 2007, *अष्टाध्यायीसूत्रपाठः*, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा।

47. जोशी, भार्गव शास्त्री, 2004, *व्याकरणमहाभाष्यम्(भाष्यप्रदीपोद्द्योतसमुल्लसितम्),* प्रथमः खण्डः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

48. जोशी, भार्गव शास्त्री, 2004, *व्याकरणमहाभाष्यम्(भाष्यप्रदीपोद्द्योतसमुल्लसितम्),* प्रथमः खण्डः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

49. झा, गंगानाथ (सम्पा.), 2004, *मनुस्मृति-मनुभाष्यसमेता,* परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली।

50. झा, रविन्द्रनाथ, 1990, लकारार्थ एक अध्ययन वैयाकरण भूषणसार के विशेष सन्दर्भ में, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

51. तैलंग, जगन्नाथ शास्त्री, 2000, *मुण्डकोपनिषद,* चौखम्बा, वाराणसी।

52. त्रिपाठी, जयशंकरलाल एवं मालवीय, सुधाकर(सम्पा.),2012, काशिका, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी।

53. त्रिपाठी, डॉ रामदेव, 1977, *भाषा विज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, बिहार।

54. दीक्षित, पुष्पा, 2014, *धात्वाधिकारीयं सामान्यमङ्गकार्यम्*, ज्ञान भारती पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

55. देवी, डॉ प्रज्ञा एवं देवी, मेधा (सम्पा.), 2008, *गोपथ ब्राह्मण*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

56. द्विवेदी, कपिलदेव. 2010. *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति.* विश्वविद्यालय प्रकाशन. वाराणसी।

57. नागर, रविशंकर (सम्पा.), 1989, *नाट्यशास्त्र,* परिमल प्रकाशन, दिल्ली।

58. पाण्डेय, जनार्दन शास्त्री(संम्पा.)1998, *मनुस्मृति,* मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, वाराणसी।

59. पाण्डेय, ब्रजमोहन, 2005, *संस्कृतव्याकरण की प्राविधिक शब्दावली का विवेचन,* सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

60. पाण्डेय, श्रीगोपालदत्त, 2014, *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी,* चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी।

61. पाण्डेय, श्रीनेत्र, 2006, *भारतवर्ष का बृहद् इतिहास-द्वितीय भाग*, लोकभारती प्रकाशन।

62. फडके, बाबा शास्त्री, 1992, *ऐतरेय आरण्यक, सायणाचार्यभाष्योपेतम्,* आनन्द आश्रम, पुणे।

63. बन्द्योपाध्याय, सुरेशचन्द्र (सम्पा.), 1985, *नाट्यशास्त्र*, नवपत्रप्रकाशन, कलकत्ता।

64. भट्ट, नागेश, वि.क्र. 2041, *लघुशब्देन्दुशेखर,* चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी।

65. भट्टाचार्य, डॉ सिद्धेश्वर (सम्पा.), 1973, *यजुर्वेद संहिता,* काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
66. मधुसूदन मिश्र, 2013, *वैदिक महाव्याकरण,* विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली।
67. महतो, दामोदर (सम्पा.), 2015, *पाणिनीय शिक्षा,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
68. मीमांसक, पं० युधिष्ठिर, 2006, *संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरयाणा,
69. मीमांसक, युधिष्ठिर, 2000, महाभाष्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा।
70. मुंशीराम, हेमचन्द्र. 1962. *ऋक्तन्त्रम्.* लाहौर।
71. मुनि, बाल्मीकी, कट्टी, श्रीनिवास शास्त्री (सम्पा.),1983, *रामायण :किष्किन्धाकाण्ड,* परिमल पब्लिकेशन।
72. मुनि, बाल्मीकी, कट्टी, श्रीनिवास शास्त्री (सम्पा.),1990, *रामायण: उत्तरकाण्ड,* परिमल पब्लिकेशन।
73. मेधार्थी, आनन्द प्रकाश, 1997, वार्तिक प्रकाश, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
74. लाजवन्ती, 1991, सिद्धान्तकौमुदी के लकारार्थप्रकरण तथा परमलघुमंजुषा के लकारार्थनिर्णय का विवेचनात्मक अध्ययन, संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
75. विद्यावारिधि, विजयपाल, 1997, *काशिका,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा।
76. विद्यावारिधि, विजयपाल, 1997, *काशिका,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा।
77. विनिता, 1999, प्रबन्धचिंतामणि के तिङन्त पदों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
78. शर्मा शिवदत्त (सम्पा०), 1969, *निरुक्तम्(यास्कः,),* (दुर्गाचार्यभाष्योपेतम्), श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालयम्, बम्बई।
79. शर्मा, उमाशंकर, 2014, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।

80. शर्मा, उमाशंकर, 2014, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।

81. शर्मा, भीष्मदत्त, 2013, *ऋग्वेदसंहिता,* चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

82. शर्मा, मिथिलेश, 1983, पाणिनि से कात्यायन तक का भाषागत विकास तिङन्त के सन्दर्भ में लघुशोध, संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

83. शास्त्री, आचार्य पं० शिवनारायण, 1994, *काव्यादर्श,* परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली।

84. शास्त्री, डॉ श्रीवत्स, 2000, *हेलाराज का व्याकरण दर्शन को योगदान*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली।

85. शास्त्री, बापट एवं विष्णु वामन(सम्पा.), 2016, *कथासरित्सागर,* भाग 1 ला (लंबक 1-7)

86. शास्त्री, भीमसेन, 2013, *लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमीव्याख्या),* भैमी प्रकाशन, दिल्ली।

87. शास्त्री, राकेश (सम्पा.), 2005, *मनुस्मृति*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली।

88. शास्त्री, राकेश, 1947, *बृहदारण्यकोपनिषद्,* परिमल प्रकाशन, दिल्ली।

89. शास्त्री, श्रीराम, 1970, *ब्रह्मवैवर्तपुराण,* संस्कृति संस्थान बरेली।

90. शास्त्री, हरगोविन्ददास (सम्पा.), 1998, *अमरकोश,* चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

91. संतराम, 1925, इत्सिंग की भारत यात्रा, सरस्वती-सिरीज नं- 54, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

92. सतनारायण, 2003, मेघदूत के तिङन्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

93. सत्यश्रवा(सम्पा.), 1996 भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रणव प्रकाशन, दिल्ली।

94. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, 2002, कृष्णयजुर्वेदीय तैतिरीय संहिता, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत।

95. सायणाचार्य, संवत् 1985, ऋग्वेद भाष्यभूमिका, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

96. साहू, 2011, *पाणिनीयपदव्यवस्था,* राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम्, तिरुपति, आन्ध्रप्रदेश।

97. सीकरी, दर्शन कुमार, 1994, भट्टोजिदीक्षित के अनुसार णिजन्त विचार, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

98. सुक्थंकर, वी.एस. (सम्पा.), 1998, *महाभारत: उद्योगपर्व*, भण्डारकर ओरिंटल रिसर्च इण्स्टीट्यूट, पूना।
99. सुषमा,2010, चान्द्र धातुपाठ का समीक्षात्मक अध्ययन, लघुशोध. संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
100. सूरी, राजशेखर, दलाल, सी. डी. एवं शास्त्री आर. ए (सम्पा.),1934, *काव्यमीमांसा,* ओरिन्टल ईन्स्टिट्यूट बरोडा।
101. सोनटक्के, नारायणशर्मा एवं धर्माधिकारी, त्रिविक्रमशर्मा (सम्पा.), *तैत्तिरीय-संहिता,* 1970, वैदिक संशोधन मण्डल पूना।
102. स्वरूप, लक्ष्मण (सम्पा.), 1939, *ऋग्वेदसंहिता* (वेंकटमाधवभाष्य-सहित), लाहौर।
103. स्वामी, क्षीर, वि.क्र. 2063, मीमांसक, युधिष्ठिर (सम्पा.), *क्षीरतरङ्गिणी,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा।

सहायकग्रन्थों की सूची (Bibiiography)

1. Acharya, Sudarshandev. 1997. *Paniniya Ashtadhyayi Pravachanam.* Brahamarshi Swami Virajanand Arsh Dharmaarth nyas Gurukul Sansthan, Haryana.
2. Aggarwal, Piyush. 2015. *Paninian Samasa Recognition and Processing: A rule based approach*. PhD Thesis Department of Sanskrit, Panjab University, Chandigarh.
3. Agrawal, Muktanand. 2007. *Computational identification and analysis of Sanskrit verb-forms of bhvaadigana*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
4. Arya, Karamveer.2005. *महाभाष्य के परिप्रेक्ष्य में तद्धित प्रत्ययों की समीक्षा.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.
5. Arya, Kuldeep. 2007. *धातुपाठों में हिंसार्थक एवं शब्दार्थक धातुओं का अर्थज्ञानिक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.
6. Basu, SC. 1980.*The astadhyayi of Panini*. Motilal Banarsidass Publication, New Delhi.
7. Bhadra, Manji. 2007. *Computational analysis of gender in Sanskrit noun phrases for Machine Translation*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
8. Bhadra, Manji. 2012. *knowledgebase for karma-kaaraka.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
9. Bhowmik, Priti. 2009. *Evolving e-learning methods for Sanskrit elearning in the context of secondary sylabus of CBSE*. PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
10. Cardona, George. 2008. "Pāṇini." *Encyclopaedia of the History of Science, Technology, and Medicine in Non-Western Cultures*. Springer Netherlands.
11. Cardona, George. 1997. *Pāṇini: A survey of research*. Motilal Banarsidass Publication, New Delhi.
12. Chadrashekar, R. 2007. *Part-Of-Speech Tagging for Sanskrit.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

13. Chakraborty, Deepro. 2013. *Critical Edition of the Atreya-Shiksha*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
14. Chandra, Subhash. 2007. *Machine recognition and morphological analysis of subanta-padas*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
15. Chandra, Subhash. 2011. *Ontological Knowledge Base for selected verbs of Sanskrit and Bangla*. PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
16. Chaudhury, Narayan, Kumar . 2007. *Great Andamanese Verb Analyzer*. MPhil Diss. Center for Linguistics, School of Language Literature & Culture Studies, Jawaharlal Nehru University of Delhi, Delhi.
17. Das, Paritosh.2011. *Index Based Search for Brhadaranyaka Upanisad*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
18. Gopal, Madhav. 2011. *Computational Methods for Anaphora and Cataphora Resolution in the Sanskrit Text Panchatantra*. MPhil Diss. Center for Linguistics, School of Language Literature & Culture Studies, Jawaharlal Nehru University of Delhi, Delhi.
19. Harish. 1994. *धात्वर्थनिर्णय एवं धात्वर्थनिरूपण का तुलनात्मक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.
20. Joshi, Shivram Dattatray, and J. A. F. Roodbergen. 1991. *The Aṣṭādhyāyī of Pāṇini with translation and explanatory notes*. Vol. 11. Sahitya Akademi.
21. Katre, Saumitra M. 1989. *Aṣṭādhyāyī of Pāṇini.* Motilal Banarasidas, New Delhi.
22. Khandoliyan, Baldev. 2011. *Vanaushaadhi-varga of Amarakosha: A computational study*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
23. Kumar, Sachin. 2007. *Sandhi splitter and analyzer for Sanskrit (with special reference to aC Sandhi)*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

24. Kumar, Sachin. 2012. *Named Entity Recognition for Sanskrit: a hybrid approach.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

25. Kumari, Suman. 1988. *संस्कृत धातुओं का विकास* . PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.

26. Mandal, Anusrita. 2014. *Critical Edition of Itihaasottama.* MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

27. Meena, Geeta Kumari. 2017. *Sanskrit loan words in Bahasa Indonesia: a lexicographic approach*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

28. Mishra, Diwakar. 2009. *Issues and challenges in computational processing of vyanjana sandhi.* MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

29. Mishra, Diwakar. 2013. Samvacaka - *A Speech Synthesis System for Sanskrit Prose.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

30. Mishra, Mukesh, Kumar. 2010. *Computational analysis of Sanskrit homonyms in the context of naanaartha varga of Amarakosha*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

31. Mishra, Sudhir Kumar. 2007. *Sanskrit karaka analyzer for Machine Translation*. PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

32. Neelam. 2012. *हरविजयम महाकाव्य में प्रयुक्त क्रियारूपों का संरचनात्मक एवं अर्थमूलक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.

33. Niranjan, T. R. .2005. "Ashtadhyayi mein adesh vidhayak sutra-ek samikshatamak adhyayan".

34. Pandey, Rajneesh. 2011. *Online Indexing of Sushruta Samhita*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

35. Pandey, Rajneesh. 2015. *Sanskrit-Hindi Statistical Machine Translation: Perspectives & Problems.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
36. Pathak, Kumar Nripendra. 2015. *Verb Mapping for Sanskrit Hindi Translator (SaHiT).* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
37. Pathak, Nripendra. 2011. *Challenges in Sanskrit Hindi Noun Phrase Mapping*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
38. Rajput, Devendra. 2013. *E-book on Shrimadbhagvadgita: with special reference to chapter 1*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
39. Ramchandra, 2008. *सरस्वतीकण्ठाभरण और सिद्धान्तकौमुदी के तद्धित प्रकरण का तुलनात्मक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.
40. Seth, Anupama. 1997. *हेमचन्द्र के धातुपरायण का समालोचनात्मक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.
41. Sharma, Rama Nath. 2003. *The aṣṭādhyāyī of Pāṇini: english translation of adhyāyas seven and height with sanskrit text, transliteration, word-boundary, anuvṛtti, vṛtti, explanatory notes, derivational history of examples, and indices*. Vol. 6. Munshirm Manoharlal Pub Pvt Limited.
42. Sil, Parthasarathi. 2014. *Critical Edition of The Vaidikacchandahprakāśa*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
43. Singh Surjit, Kumar. 2008. *Kridanta recognition and processing for Sanskrit.* MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.
44. Soni, Chitresh. 2015. *Issues and challenges in Sanskrit to English machine Translation.* PhD Thesis Department of Sanskrit, MLSU, Udaipur, Rajasthan.
45. Tiwari, Archana. 2011. *Automatic Indexing of Carakasamhita*. MPhil Diss. Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

46. Tiwari, Archana. 2015. *Statistical POS Tagger for Sanskrit: Methods, Modality & Challenges.* PhD Thesis Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi.

47. Tripathi, Sujata. 2001. *पाणिनीय धात्वाधिकार का समीक्षात्मक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.

48. Vimal, Kamana. 2006. *कृतप्रत्ययों का संरचनात्मक एवं अर्थमूलक अध्ययन.* PhD Thesis Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi.

49. उपाध्याय, रामजी (सम्पा.), 1986, *भासनाटकचक्रम्,* भारतीय संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

50. गोयल, प्रीतिप्रभा, 1998, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर।

51. गोविन्दाचार्य (व्या.) एवं शर्मा, लक्ष्मी (संपा.), 2011, *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या समन्विता,* चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी।

52. चौबे, ब्रजबिहारी, 1972, *वैदिक वाङ्मय: एक अनुशीलन,* कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर।

53. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, 1998, *अष्टाध्यायी,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली।

54. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, 2000, *प्रथमावृत्ति भाग -2,* रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली।

55. त्रिपाठी, शंकरलाल (सम्पा०), 1954, मृच्छकटिकम्, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

56. दीक्षित, पुष्पा, 2011, *अष्टाध्यायी सहजबोध,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

57. द्विवेदी, कैलाशनाथ, 2005, *अभिज्ञान शाकुन्तलम् महाकवि कालिदास प्रणीतम्: संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहित,* सब्लाइम प्रकाशक।

58. भट्टाचार्य, रामशंकर (सम्पा.), 1963, *गरुडपुराण,* बम्बई।

59. मणि, रविकान्त (सम्पा.), 2008, *रघुवंशमहाकाव्यम्,* हंसा प्रकाशन, जयपुर।

60. लाल, कृष्ण, 2001, *वैदिकसंग्रह,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

61. विद्याभास्कर, रामावतार, 2014, *पञ्चदशी,* भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी।

62. शर्मा, शुकदेव (सम्पा.), 2015, *नैषधीयचरितम् (प्रदीपिका टीका सहित)*, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

63. शर्मा, शेषराज, 2012, *नैषधीयचरितम्: संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहित*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

64. शर्मा, श्रीराम (सम्पा.), 1969, *अग्निपुराण*, संस्कृत संस्थान, ख्व्वाजा कुतुब. बरेली।

65. शर्मा, सुब्राय, 2006, *वेदान्तसंवत्सर*, श्री नित्यानन्द प्रकाशन, बेंगलुरु।

66. शास्त्री, द्विजेन्द्र. 1956, *संस्कृत साहित्य विमर्श,* भारती प्रतिष्ठानम्, मयराष्ट्रनगरम् उत्तरप्रदेश।

67. शास्त्री, सुरेन्द्रदेव (सम्पा.), 2012, *नैषधचरितमहाकाव्यम्*, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी।

68. शास्त्री, हरगोविन्द, 2013, *शिशुपालवधम् संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहित*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

69. सहाय, राजवंश, 1996, *संस्कृत साहित्य कोश.* चौखाम्बा विद्याभवन. वाराणसी।

Internet source

1. http://cdac.in (obtained on September 1, 2017)

2. http://sanskrit.du.ac.in/cl.html (obtained on September 2, 2017)

3. http://sanskrit.jnu.ac.in/amara/index.jsp (obtained on September 3, 2017)

4. http://sanskrit.jnu.ac.in/sandhi/gen.jsp (obtained on September 1, 2017)

5. http://sanskrit.jnu.ac.in/subanta/generate.jsp (obtained on September 5, 2017)

6. https://www.mysql.com/(obtained on September 8, 2017)
7. www.spyce.in(obtained on September 8, 2017)

8. http://sanskrit.jnu.ac.in/tinanta/tinanta.jsp (obtained on September 8, 2017)

9. http://sanskrit.uohyd.ernet.in/ (obtained on September 4, 2017)

10. http://sanskrit.sai.uni-heidelberg.de/Chanda/HTML (obtained on July 1, 2017)

11. https://en.wikipedia.org/wiki/wikipedia (obtained on January 15, 2018)

12. http://spyce.sourceforge.net/ (obtained on March 15, 2017)

13. https://www.mysql.com/ (obtained on July 11, 2017)

14. http://unicode.org/ (obtained on April 9, 2017)

कोशग्रन्थ

1. Williams, Monier. *Williams Monier Online Dictionary (2008 revision):* University of Cologne: http://www.sanskrit-lexicon.uni-koeln.de/monier/ (Obtained on February 20, 2016).

2. अभ्यंकर, के० वी०, 1961, डिक्शनरी ऑफ संस्कृत ग्रामर, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा।

3. आप्टे, वामन शिवराम, 1966, *संस्कृत-हिन्दी कोश*, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली।

4. राजा, राधाकान्तदेव, 1961, शब्दकल्पद्रुमकोष, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

5. सिंह, अमर, 1968, अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

प्रथम परिशिष्ट

पाणिनीय धातुपाठ एवं सनादि प्रत्ययों से निर्मित धातुओं के प्रारूप

SR	Dhatu	SanDhatu	YanDhatu	YanLukDhatu	NicDhatu
1	भू	बुभूष	बोभूय	बोभू	भावी
2	एध्	एदिधिष	-	-	एधि
3	स्पर्द्ध्	पिस्पर्द्धिष	पास्पर्द्ध्य	पास्पर्द्ध्	स्पर्द्धि
4	गाध्	जिगाधिष	जागाध्य	जागाध्	गाधि
	बाध्	बिबाधिष	बाबाध्य	बाबाध्	बाधि
5	नाथ्	निनाथिष	नानाथ्य	नानाथ्	नाथि
6	नाध्	निनाधिष	नानाध्य	नानाध्	नाधि
7	दध्	दिदधिष	दादध्य	दादध्	दाधि
8	स्कुन्द्	चुस्कुन्दिष	चोस्कुन्द्य	चोस्कुन्द्	स्कुन्दि
9	श्विन्द्	शिश्विन्दिष	शेश्विन्द्य	शेश्विन्द्	श्विन्दि
10	वन्द्	विवन्दिष	वावन्द्य	वावन्द्	वन्दि
11	भन्द्	बिभन्दिष	बाभन्द्य	बाभन्द्	भन्दि
12	मन्द्	मिमन्दिष	मामन्द्य	मामन्द्	मन्दि
13	स्पन्द्	पिस्पन्दिष	पास्पन्द्य	पास्पन्द्	स्पन्दि
14	क्लिन्द्	चिक्लिन्दिष	चेक्लिन्द्य	चेक्लिन्द्	क्लिन्दि
15	मुद्	मुमोदिष	मोमुद्य	मोमुद्	मोदि
16	मुद्	मुमुदिष	-	-	-
17	दद्	दिददिष	दादद्य	दादद्	दादि
18	स्वद्	सिस्वदिष	सास्वद्य	सास्वद्	स्वादि
19	स्वर्द्	सिस्वर्दिष	सास्वर्द्य	सास्वर्द्	स्वर्दि
20	उर्द्	ऊर्दिदिष	-	-	ऊर्दि
21	कुर्द्	चुकूर्दिष	चोकूर्द्य	चोकूर्द्	कूर्दि
22	खुर्द्	चुखूर्दिष	चोखूर्द्य	चोखूर्द्	खूर्दि
23	गुर्द्	जुगूर्दिष	जोगुर्द्य	जोगुर्द्	गूर्दि
24	गुद्	जुगुदिष	जोगुद्य	जोगुद्	गोदि
25	षूद्	सुसूदिष	सोसूद्य	सोसूद्	सूदि

26	ह्राद्	जिह्रादिष	जाह्राद्य	जाह्राद्	ह्रादि
27	ह्लाद्	जिह्लादिष	जाह्लाद्य	जाह्लाद्	ह्लादि
28	स्वाद्	सिस्वादिष	सास्वाद्य	सास्वाद्	स्वादि
29	पर्द्	पिपर्दिष	पापर्द्य	पापर्द्	पर्दि
30	यत्	यियतिष	यायत्य	यायत्	याति
31	युत्	युयुतिष	योयुत्य	योयुत्	योति
32	युत्	युयोतिष	-	-	-
33	जुत्	जुजुतिष	जोजुत्य	जोजुत्	जोति
34	जुत्	जुजोतिष	-	-	-
35	विथ्	विविथिष	वेविथ्य	वेवेथ्	वेथि
36	वेथ्	विवेथिष्	वेवेथ्य	वेवेथ्	वेथि
37	श्रन्थ्	शिश्रन्थिष	शाश्रन्थ्य	शाश्रन्थ्	श्रन्थि
38	ग्रन्थ्	जिग्रन्थिष	जाग्रन्थ्य	जाग्रन्थ्	ग्रन्थि
39	कत्थ्	चिकत्थिष	चाकत्थ्य	चाकत्थ्	कत्थि
40	अत्	अतितिष	-	-	आति
41	चित्	चिचितिष	चेचित्य	चेचित्	चेति
42	चित्	चिचेतिष	-	-	-
43	च्युत्	चुच्युतिष	चोच्युत्य	चोच्युत्	च्योति
44	श्च्युत्	चुश्च्योतिष	चोश्च्युत्य	चोश्चुत्	श्च्योति
45	मन्थ्	मिमन्थिष	मामथ्य	मामथ्	मन्थि
46	कुथ्	चुकुन्थिष	चोकुन्थ्य	चुकुन्थ्	कुन्थि
47	पुन्थ्	पुपुन्थिष	पोपुन्थ्य	पोपुन्थ्	पुन्थि
48	लुन्थ्	लुलुन्थिष	लोलुन्थ्य	लोलुन्थ्	लुन्थि
49	मन्थ्	मिमन्थिष	मामन्थ्य	मामन्थ्	मन्थि
50	षिध्	सिसिधिष	सेषिध्य	सेषिध्	सेधि
51	षिध्	सिसेधिष	-	-	-
52	सिध्	सिषित्स	सेषिध्य	सेषिध्	सेधि
53	खाद्	चिखादिष	चाखाद्य	चाखाद्	खादि
54	खद्	चिखदिष	चाखद्य	चाखद्	खादि
55	बद्	बिबदिष	बाबद्य	बाबद्	बादि

56	गद्	जिगदिष	जागद्य	जागद्	गादि
57	रद्	रिरदिष	रारद्य	रारद्	रादि
58	नद्	निनदिष	नानद्य	नानद्	नादि
59	अर्द्	अर्दिदिष	-	-	अर्दि
60	नर्द्	निनर्दिष	नानर्द्य	नानर्द्	नर्दि
61	गर्द्	जिगर्दिष	जागर्द्य	जागर्द्	गर्दि
62	तर्द्	तितर्दिष	तातर्द्य	तातर्द्	तर्दि
63	कर्द्	चिकर्दिष	चाकर्द्य	चाकर्द्	कर्दि
64	खर्द्	चिखर्दिष	चाखर्द्य	चाखर्द्	खर्दि
65	अन्त्	अन्तितिष	-	-	अन्ति
66	अन्द्	अन्दिदिष	-	-	अन्दि
67	इन्द्	इन्दिदिष	-	-	एदि
68	बिन्द्	बिबिन्दिष	बेबिन्द्य	बेबिन्द्	बिन्दि
69	भिन्द्	बिभिन्दिष	बेभिन्द्य	बेभिन्द्	भिन्दि
70	गन्द्	जिगन्दिष			गन्दि
71	निन्द्	निनिन्दिष	नेनिन्द्य	नेनिन्द्	निन्दि
72	नन्द्	निनन्दिष	नानन्द्य	नानन्द्	नन्दि
73	चन्द्	चिचन्दिष	चाचन्द्य	चाचन्द्	चन्दि
74	त्रन्द्	तित्रन्दिष	तात्रन्द्य	तात्रन्द्	त्रन्दि
75	कन्द्	चिकन्दिष	चाकन्द्य	चाकन्द्	कन्दि
76	क्रन्द्	चिक्रन्दिष	चाक्रन्द्य	चाक्रन्द्	क्रन्दि
77	क्लन्द्	चिक्लन्दिष	चाक्लन्द्य	चाक्लन्द्	क्लन्दि
78	क्लिन्द्	चिक्लिन्दिष	चेक्लिन्द्य	चेक्लिन्द्	क्लिन्दि
79	शुन्ध्	शुशुन्धिष	शोशुध्य	शोशुध्	शुन्धि
80	शीक्	शिशीकिष	शेशिक्य	शेशिक्	शीकि
81	लोक्	लुलोकिष	लोलोक्य	लोलोक्	लोकि
82	श्लोक्	शुश्लोकिष	शोश्लोक्य	शोश्लोक्	श्लोकि
83	द्रेक्	दिद्रेकिष	देद्रेक्य	देद्रेक्	द्रेकि
84	ध्रेक्	दिध्रेकिष	देध्रेक्य	देध्रेक्	ध्रेकि
85	रेक्	रिरेकिष	रेरेक्य	रेरेक्	रेकि

86	सेक्	सिसेकिष	सेसेक्य	सेसेक्	सेकि
87	स्रेक्	सिस्रेकिष	सेस्रेक्य	सेस्रेक्	स्रेकि
88	स्रक्	सिस्रङ्किष	सास्रङ्क्य	सास्रङ्क्	स्रङ्कि
89	श्रक्	शिश्रङ्किष	शाश्रङ्क्य	शाश्रङ्क्	श्रङ्कि
90	श्लक्	शिश्लङ्किष	शाश्लङ्क्य	शाश्लङ्क्	श्लङ्कि
91	शक्	शिशङ्किष	शाशङ्क्य	शाशङ्क्	शङ्कि
92	अक्	अञ्चिकिष	-	-	अङ्कि
93	वङ्क्	विवङ्किष	वावङ्क्य	वावङ्क्	वङ्कि
94	मङ्क्	मिमङ्किष	मामङ्क्य	मामङ्क्	मङ्कि
95	कक्	चककिष	चाकक्य	चाकक्	काकि
96	कुक्	चुकुकिष	चोकुक्य	चोकुक्	कोकि
96	कुक्	चुकोकिष	-	-	कोकि
97	वृक्	विवर्किष	वरीवृक्य	वरीवृक्/वरिवृक्/वर्वृक्	वर्कि
98	चक्	चिचकिष	चाचक्य	चाचक्	चाकि
99	कङ्क्	चिकङ्किष	-	-	कङ्कि
100	वङ्क्	विवङ्किष	वावङ्क्य	वावङ्क्	वङ्कि
101	श्वङ्क्	शिश्वङ्किष	शाश्वङ्क्य	शाश्वङ्क्	श्वङ्कि
102	त्रङ्क्	तित्रङ्किष	तात्रङ्क्य	तात्रङ्क्	त्रङ्कि
103	ढौक्	डुढौकिष	डोढौक्य	डोढौक्	ढौकि
104	त्रौक्	तुत्रौकिष	तोत्रौक्य	तोत्रौक्	त्रौकि
105	ष्वष्क्	षिष्वष्किष	षाष्वष्क्य	षाष्वष्क्	ष्वष्कि
106	वस्क्	विवस्किष	वावस्क्य	वावस्क्	वस्कि
107	मस्क्	मिमस्किष	मामस्क्य	मामस्क्	मस्कि
108	टिक्	टिटिकिष	टेटिक्य	टेटिक्	टेकि
109	टीक्	टिटीकिष	टेटीक्य	टेटीक्	टीकि
110	तिक्	तितिकिष	तेतिक्य	तेतिक्	तेकि
111	तीक्	तितीकिष	तेतीक्य	तेतीक्	तीकि
112	रङ्घ्	रिरङ्घिष	रारङ्घ्य	रारङ्घ्	रङ्घि
113	लङ्घ्	लिलङ्घिष	लालङ्घ्य	लालङ्घ्	लङ्घि

114	लङ्घ्	लिलङ्घिष	लालङ्घ्य	लालङ्घ्	लङ्घि
115	अङ्घ्	अञ्जिघिष	-	-	अङ्घि
116	वङ्घ्	विवङ्घिष	वावङ्घ्य	वावङ्घ्	वङ्घि
117	मङ्घ्	मिमङ्घिष	मामङ्घ्य	मामङ्घ्	मङ्घि
118	मङ्घ्	मिमङ्घिष	मामङ्घ्य	मामङ्घ्	मङ्घि
119	राघ्	रिराघिष	राराघ्य	राराघ्	राघि
120	लाघ्	लिलाघिष	लालाघ्य	लालाघ्	लाघि
121	द्राघ्	दिद्राघिष	दाद्राघ्य	दाद्राघ्	द्राघि
122	ध्राघ्	दिध्राघिष	दाध्राघ्य	दाद्राघ्	ध्राघि
123	द्राघ्	दिद्राघिष	दाद्राघ्य	दाद्राघ्	द्राघि
124	श्लाघ्	शिश्लाघिष	शाश्लाघ्य	शाश्लाघ्	श्लाघि
125	फक्क्	पिफक्किष	पाफक्क्य	पाफक्क्	फक्कि
126	तक्	तितकिष	तातक्य	तातक्	ताकि
127	तङ्क्	तितङ्किष	तातङ्क्य	तातङ्क्	तङ्कि
128	बुक्क्	बुबुक्किष	बोबुक्क्य	बोबुक्क्	बुक्कि
129	कख्	चिकखिष	चाकख्य	चाकख्	काखि
130	ओख्	ओचिखिष	-	-	ओखि
131	राख्	रिराखिष	राराख्य	राराख्	राखि
132	लाख्	लिलाखिष	लालाख्य	लालाख्	लाखि
133	द्राख्	दिद्राखिष	दाद्राख्य	दाद्राख्	द्राखि
134	ध्राख्	दिध्राखिष	दाध्राख्य	दाध्राख्	ध्राखि
135	शाख्	शिशाखिष	शाशाख्य	शाशाख्	शाखि
136	श्लाख्	शिश्लाखिष	शाश्लाख्य	शाश्लाख्	श्लाखि
137	उख्	ओचिखिष	-	-	ओखि
138	उङ्ख्	ओञ्जिखिष	-	-	उङ्**खि**
139	वख्	विवखिष	वावख्य	वावख्	वाखि
140	वङ्ख्	विवङ्खिष	वावङ्ख्य	वावङ्ख्	वङ्खि
141	मख्	मिमखिष	मामख्य	मामख्	माखि
142	मङ्ख्	मिमङ्खिष	मामङ्ख्य	मामङ्ख्	मङ्खि
143	नख्	निणखिष	नानख्य	नानख्	नाखि

144	नङ्ख्	निणङ्खिष	नानङ्ख्य	नानङ्ख्	नङ्खि
145	रख्	रिरखिष	रारख्य	रारख्	राखि
146	रङ्ख्	रिरङ्खिष	रारङ्ख्य	रारङ्ख्	रङ्खि
147	लख्	लिलखिष	लालख्य	लालख्	लाखि

चुनिन्दा धातुओं से लगने वाले सनादि धातुओं का प्रारूप					
SR	Root	Iyanga	Nin	Aya	yaka
1	ऋत्	ऋतिय	-	-	-
2	कम्	-	कामय	-	-
3	गुप्	-		गोपाय	-
4	धूप्	-	-	धूपाय	-
5	विच्छ्	-	-	विच्छाय	-
6	पण्	-	-	पणाय	-
7	पन्	-	-	पनाय	-
8	कण्डू	-	-	-	कण्डूय
9	मन्तु	-	-	-	मन्तूय
10	वल्गु				वल्गूय
11	असु				अस्य
12	असू				असूय
13	असू				असूय
14	लेट्				लेट्य
15	लोट्				लोट्य
16	लेला				लेलाय
17	इरस्				इरस्य
18	इरज्				इरज्य
19	इर				इरय
20	उषस्				उषस्य
21	वेद				वेद्य
22	मेधा				मेधाय
23	कुषुभ				कुषुभ्य
24	मगध				मगध्य
25	तन्तस्				तन्तस्य
26	पम्पस्				पम्पस्य
27	सपर				सपर्य

28	अरर				अरर्य
29	भिषज्				भिषज्य
30	भिष्णज्				भिष्णज्य
31	इषुध				इषुध्य
32	चरण				चरण्य
33	वरण				वरण्य
34	चुरण				चुरण्य
35	तुरण				तुरण्य
36	भुरण				भुरण्य
37	गद्गद				गद्गद्य
38	एला				एलाय
39	केला				केलाय
40	खेला				खेलाय
41	इला				इलाय
42	खेला				खेलाय
	लिट्				लिट्य
	लाट्				लाट्य
	हृणी				हृणीय
	मही				महीय
	रेखा				रेखाय
	दुवस्				दुवस्य
	तिरस्				तिरस्य
	अगद्				अगद्य
	उरस्				उरस्य
	तरण				तरण्य
	पयस्				पयस्य
	सम्भूयस्				सम्भूयस्य
	अम्बर				अम्बर्य
	सम्बर				सम्बर्य

नामधातुओं का प्रारूप							
Sr	pada	kyac	kAmyac	kyaNg	kyaSh	Nin	Nic
1	पुत्र	पुत्रीय	पुत्रकाम्य	-	-	-	-
2	अश्व	अश्वस्य	अश्वकाम्य	-	-	-	-
3	क्षीर	क्षिरस्य	क्षीरकाम्य	-	-	-	-
4	वृष	वृषस्य	वृषकाम्य	-	-	-	-
5	लवण	लवणस्य	लवणकाम्य	-	-	-	-
6	दधि	दधिस्य/दध्यस्य/दधीय	दधिकाम्य	-	-	-	-
7	मधु	मधुस्य/ मध्वस्य/मधूय	मधुकाम्य	-	-	-	-
8	अशन्	अशनीय	अशन्काम्य	-	-	-	-
9	उदक	उदकीय	उदककाम्य	-	-	-	-
10	धन	धनीय	धनकाम्य	-	-	-	-
11	गार्ग्य	गार्गीय	गार्ग्यकाम्य	-	-	-	-
12	ऋकार	ऋकारीय	ऋकारकाम्य	-	-	-	-
13	माला	मालीय	मालाकाम्य	-	-	-	-
14	कुमार	कुमारीय	कुमारकाम्य	-	-	-	-
15	चतुर	चतुर्य	चतुरकाम्य	-	-	-	-
16	गिर	गीर्य	गिर्काम्य	-	-	-	-
17	पुर	पुर्य	-	-	-	-	-
18	राजन्	राजीय	-	-	-	-	-
19	अहन्	अहर्य	-	-	-	-	-
20	खय्	खय्य	-	-	-	-	-
21	दिव	दिव्य	दिव्काम्य	-	-	-	-
22	त्वत्	त्वद्य	त्वत्काम्य	त्वद्य	-	-	-
23	युष्मत्		युष्मत्काम्य	-	-	-	-
24	अग्नि		अग्निकाम्य	-	-	-	-
25	पयस्		पयस्काम्य	-	-	-	-
26	यशस्		यशस्काम्य	-	-	-	-
27	सर्पिष्		सर्पिष्काम्य	-	-	-	-

28	धनुष्		धनुष्काम्य	-	-	-	-
29	पुंस्		पुंस्काम्य	-	-	-	-
30	श्येन			श्येनाय	-	-	-
31	काका			काकाय	-	-	-
32	ओजस्			ओजाय	-	-	-
33	अप्सरस्			अप्सराय	-	-	-
34	पयस्			पयस्य/पयाय	-	-	-
35	यशस्			यशस्य/यशाय	-	-	-
36	हंस			हंसाय	-	-	-
37	कुमार			कुमाराय	-	-	-
38	भृश			भृशाय	-	-	-
39	शीघ्र			शीघ्राय	-	-	-
40	पण्डित			पण्डिताय	-	-	-
41	लोहित				लोहिताय	-	-
42	पटत्पटत्				पटपटाय	-	-
43	निद्रा				निद्राय	-	-
44	करुणा				करुणाय	-	-
45	कष्ट			कष्टाय		-	-
46	रोमन्थ			रोमन्थाय		-	-
47	तपस्			तपस्य		-	-
48	बाष्प			बाष्पाय		-	-
49	शब्द			शब्दाय		-	-
50	वैर			वैराय		-	-
51	नमस्	नमस्य				-	-
52	वरिवस्	वरिवस्य				-	-
53	पुच्छ	-	-	-	-	उत्पुच्छि	-
54	भाण्ड	-	-	-	-	भाण्डि	-

55	चीवर	-	-	-	-	चीवरि	-
56	मुण्ड	-	-	-	-	-	मुण्डि
57	मिश्र	-	-	-	-	-	मिश्रि
58	श्लक्षण	-	-	-	-	-	श्लक्षणि
59	लवण	-	-	-	-	-	लवणि
60	व्रत	-	-	-	-	-	व्रति
61	वस्त्र	-	-	-	-	-	वस्त्रि
62	हल	-	-	-	-	-	हलि
63	कल	-	-	-	-	-	कलि
64	कृत	-	-	-	-	-	कृति
65	सत्याप	-	-	-	-	-	सत्यापि
66	पाश	-	-	-	-	-	पाशि
67	रूप	-	-	-	-	-	रूपि
68	वीणा	-	-	-	-	-	वीणय
69	तूल	-	-	-	-	-	तूलि
70	श्लोक	-	-	-	-	-	श्लोकि
71	सेना	-	-	-	-	-	सेनि
72	लोम	-	-	-	-	-	लोमि
73	वर्म	-	-	-	-	-	वर्मि
74	वर्ण	-	-	-	-	-	वर्णि
75	चूर्ण	-	-	-	-	-	चूर्णि

द्वितीय परिशिष्ट

सनाद्यन्त प्रकरण में प्रयुक्त सूत्रों की सूची

1. अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः- अष्टाध्यायी-7.4.25
2. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ –अष्टाध्यायी-6.4.77
3. अचोऽञ्णिति- अष्टाध्यायी-7.2.115
4. अजादेर्द्वितीयस्य-अष्टाध्यायी- 6.1.2
5. अज्झन्गमां सनि –अष्टाध्यायी-6.4.16
6. अतः उपधायाः- अष्टाध्याय़ी- 7.2.116
7. अतो गार्ग्यस्य- अष्टाध्यायी-8.1.20
8. अत्रलोपोऽभ्यासस्य- अष्टाध्यायी-7.4.58
9. अदिप्रभृतिभ्यः शपः- अष्टाध्यायी-2.4.72
10. अनिदितां हल उपधाया क्ङिति- अष्टाध्यायी-6.4.24
11. अभ्यासाच्च- अष्टाध्यायी-7.3.55
12. अभ्यासे चर्च- अष्टाध्यायी-8.4.54
13. अर्त्तिह्लीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ-अष्टाध्यायी-7.3.36
14. अवङ् स्फोटायनस्य- अष्टाध्यायी-6.1.123
15. अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि-अष्टाध्यायी-7.1.51
16. आतो लोप इटि च- अष्टाध्यायी-6.4.64
17. आदाचर्याणाम् । अष्टाध्यायी-7.3.49
18. आर्धधातुकं शेषः- अष्टाध्यायी-3.4.114
19. आर्धधातुकस्येड् वलादेः-अष्टाध्यायी- 7.2.35
20. इको झल्-अष्टाध्यायी- 1.2.9
21. इकोऽसवर्णे शाकलस्य ह्रस्वश्च - अष्टाध्यायी-6.1.123
22. इङश्च- अष्टाध्यायी-2.4.48
23. इट् सनि वा- अष्टाध्यायी- 7.2.41
24. ई घ्राध्मोः-अष्टाध्यायी- 6.1.31
25. ई चाक्रवर्मणास्य- अष्टाध्यायी-6.1.130
26. उत् परस्यातः-- अष्टाध्यायी-7.4.88
27. उदीचामिञ् । अष्टाध्यायी-4.3.153
28. उदोष्ठ्यपूर्वस्य - अष्टाध्यायी- 7.1.102
29. उपमानादाचारे- अष्टाध्यायी- 3.1.10

30. उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्- अष्टाध्यायी-8.3.65
31. उभे अभ्यस्तम्- अष्टाध्यायी- 6.1.5
32. ऋतश्च- अष्टाध्यायी- 7.4.92
33. ऋतेरीयङ्-अष्टाध्यायी -3.1.29
34. ऋतो भारद्वाजस्य- अष्टाध्यायी-7.2.63
35. एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् –अष्टाध्यायी-7.2.10
36. एकाचो द्वे प्रथमस्य- अष्टाध्यायी- 6.1.1
37. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः- अष्टाध्यायी-8.2.37
38. एच् इग्घ्रस्वादेशे- अष्टाध्यायी-1.1.48
39. कण्ड्वादिभ्यो यक्- अष्टाध्यायी-3.1.27
40. कमेर्णिङ्-अष्टाध्यायी -3.1.30
41. कर्तुः क्यङ् सलोपश्च- अष्टाध्यायी- 3.1.11
42. काम्यच्च-अष्टाध्यायी -3.1.9
43. कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि- अष्टाध्यायी-3.1.35
44. किरश्च पञ्चभ्यः- अष्टाध्यायी- 7.2.75
45. कुहोश्चुः- अष्टाध्यायी-7.4.62
46. कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि-अष्टाध्यायी-3.1.40
47. क्ङिति च-अष्टाध्यायी- 1.1.5
48. क्र्यदिभ्यः श्ना- अष्टाध्यायी-3.1.81
49. खरि च- अष्टाध्यायी-8.4.44
50. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च-अष्टाध्यायी- 3.4.72
51. गरेश्च सेनकस्य- अष्टाध्यायी-5.4.112
52. गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च-अष्टा०-6.4.165
53. गुणो यङ्लुकोः- अष्टाध्यायी- 7.4.82
54. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः-अष्टाध्यायी -3.1.28
55. गुप्तिज्किद्भ्यः सन्-अष्टाध्यायी-3.1.5
56. चयः की-अष्टाध्यायी- 6.1.21
57. चरफलोश्च-- अष्टाध्यायी-7.4.87
58. जपजभदहदशभञ्जपशां च-- अष्टाध्यायी-7.4.86
59. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः- अष्टाध्यायी-2.4.75
60. णेरनिटि- अष्टाध्यायी-6.4.51
61. तङानावात्मनेपदम्-अष्टाध्यायी- 1.4.100
62. तत्प्रयोजको हेतुश्च- अष्टाध्यायी-4.1.55

63. तनादिकृञ्भ्यः उः- अष्टाध्यायी-3.1.79
64. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः- अष्टाध्यायी- 1.4.101
65. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः- अष्टाध्यायी- 1.4.101
66. तिङ्ङतिङः-अष्टाध्यायी- 8.1.28
67. तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस् तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् –अष्टाध्यायी- 3.4.78
68. तुदादिभ्यः शः- अष्टाध्यायी-3.1.77
69. तृतीयादिषु भाषितपुंस्कंपुंवद् गालवस्य- अष्टाध्यायी-7.1.74
70. तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य- अष्टाध्यायी-1.2.25
71. दिवादिभ्यः श्यन्- अष्टाध्यायी-3.1.69
72. दीर्घोऽकितः- अष्टाध्यायी- 7.4.83
73. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायाम् वा- अष्टाध्यायी- 3.1.7
74. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्- अष्टाध्यायी- 3.1.22
75. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः –अष्टाध्यायी-7.2.59
76. नन्द्राः संयोगादयः –अष्टाध्यायी- 6.1.3
77. नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च-अष्टाध्यायी- 2.3.16
78. नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम्- अष्टाध्यायी-7.4.84
79. नुगतोऽनुनासिकान्तस्य- अष्टाध्यायी-7.4.85
80. परोक्षे लिट्- अष्टाध्यायी-3.2.115
81. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः –अष्टाध्यायी- 7.3.78
82. पुगन्तलघूपधस्य च –अष्टाध्यायी- 7
83. पूर्वोभ्यासः- अष्टाध्यायी- 6.1.4
84. प्राचां ष्फः तद्धितः । अष्टाध्यायी- 4.1.117
85. भियो हेतुभये षुक्- अष्टाध्यायी- 7.3.40
86. भूवादयो धातवः-अष्टाध्यायी-1.3.1
87. मितां ह्रस्व- अष्टाध्याय़ी- 6.4.92
88. मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो- अष्टाध्यायी-3.1.21
89. यङोऽचि च- अष्टाध्यायी- 2.4.74
90. यजुष्येकेषाम् । अष्टाध्यायी-8.3.108
91. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च- अष्टाध्यायी- 1.2.26
92. रीगृदुपधस्य च- अष्टाध्यायी-7.4.90
93. रुग्रिकौ च लुकि- अष्टाध्यायी- 7.4.91
94. रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च– अष्टाध्यायी- 1.2.8
95. रुधादिभ्यः श्नम्- अष्टाध्यायी-3.1.78

96. लङः शाकटायनस्य- अष्टाध्यायी-3.4.111
97. लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने- अष्टाध्यायी- 7.3.39
98. लोपः शाकलस्य - अष्टाध्यायी-8.3.19
99. लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-अष्टाध्यायी -3.1.13
100. लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-अष्टाध्यायी-3.1.13
101. वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15
102. वा क्यषः--अष्टाध्यायी-1.3.90
103. वा सुप्यापिशिलेः- अष्टाध्यायी-6.1.92
104. विजुपे छन्दसि 3.2.73
105. विपराभ्यां जेः, अष्टाध्यायी-1.3.19
106. विभाषा चेः- अष्टाध्यायी-7.3.58
107. वो विधूनने जुक्- अष्टाध्यायी-7.3.38
108. शर्पूर्वा खयः –अष्टाध्यायी- 7.4.61
109. शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्-अष्टाध्यायी-7.3.37
110. शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्- अष्टाध्यायी-1.3.78
111. सः स्यार्धधातुके- अष्टाध्यायी-7.4.49
112. सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् अष्टाध्यायी 3.1.25
113. सनाद्यन्ता धातवः (अष्टा. 3.1.32)
114. सनि च – अष्टाध्यायी-2.4.47
115. सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्- अष्टाध्यायी-7.4.54
116. सनिग्रहगुहोश्च- अष्टाध्यायी- 7.2.12
117. सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयुर्णुभरज्ञपिसनाम्- अष्टाध्यायी-7.2.49
118. सन्यतः - अष्टाध्याय़ी- 7.4.79
119. सन्लिटोर्जेः- अष्टाध्यायी-7.3.57
120. सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे- अष्टाध्याय़ी- 7.4.93
121. समर्थः पदविधिः- अष्टाध्यायी – 2.1.1
122. सम्बुद्धौ शकलस्येतावनार्षे- अष्टाध्यायी-1.1.16
123. सर्वत्र शाकलस्य - अष्टाध्यायी-8.4.51
124. सुप आत्मनः क्यच्-- अष्टाध्यायी-3.1.8
125. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः-अष्टाध्यायी-2.4.71
126. सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः- अष्टाध्यायी- 7.2.57
127. स्वतन्त्रः कर्ता-अष्टाध्यायी-1.4.24
128. स्वपिस्यमिव्येयां यङि-अष्टाध्यायी- 6..1.19

129.	स्वादिभ्यः श्नुः- अष्टाध्यायी-3.1.73
130.	स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् – अष्टाध्यायी- 4.1.2
131.	हलन्ताच्च- अष्टाध्यायी- 1.2.10
132.	हलादि शेषः- अष्टाध्यायी- 7.4.60
133.	हेतुमति च-अष्टाध्यायी -3.1.26
134.	हेरचङि- अष्टाध्यायी-7.3.56
135.	ह्रस्वः- अष्टाध्यायी- 7.4.59
136.	ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्–अष्टाध्यायी-6.1.71

तृतीय परिशिष्ट

वेब आधारित सिस्टम का स्क्रीनशॉट

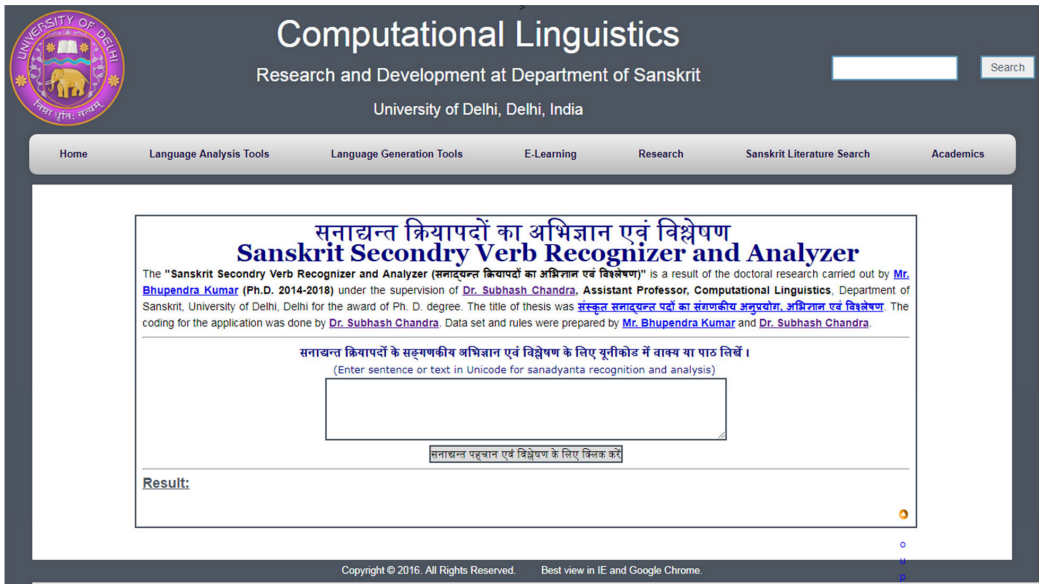

चतुर्थ परिशिष्ट

सनाद्यन्त विश्लेषण सिस्टम परिणाम का स्क्रीनशॉट

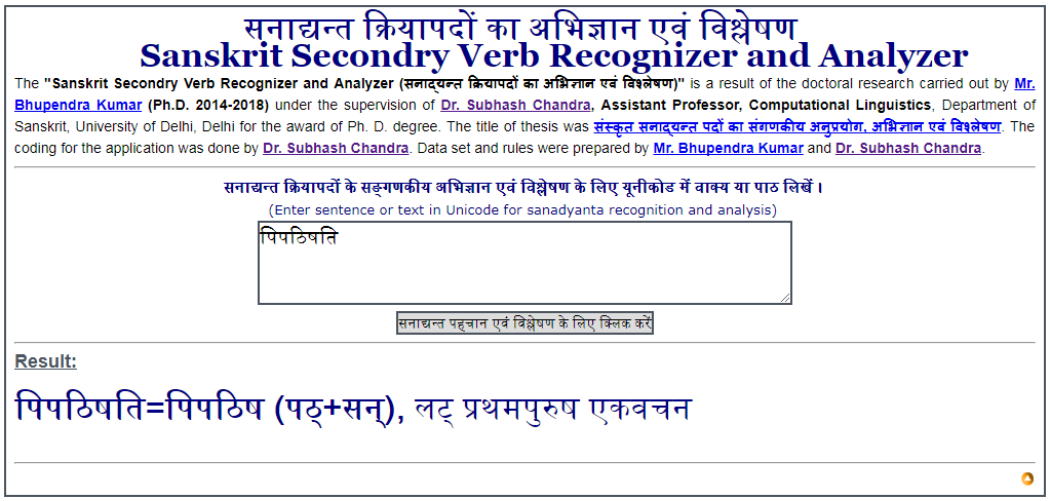

सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण
Sanskrit Secondry Verb Recognizer and Analyzer

The "Sanskrit Secondry Verb Recognizer and Analyzer (सनाद्यन्त क्रियापदों का अभिज्ञान एवं विश्लेषण)" is a result of the doctoral research carried out by Mr. Bhupendra Kumar (Ph.D. 2014-2018) under the supervision of Dr. Subhash Chandra, Assistant Professor, Computational Linguistics, Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi for the award of Ph. D. degree. The title of thesis was संस्कृत सनाद्यन्त पदों का संगणकीय अनुप्रयोग, अभिज्ञान एवं विश्लेषण. The coding for the application was done by Dr. Subhash Chandra. Data set and rules were prepared by Mr. Bhupendra Kumar and Dr. Subhash Chandra.

सनाद्यन्त क्रियापदों के सङ्गणकीय अभिज्ञान एवं विश्लेषण के लिए यूनीकोड में वाक्य या पाठ लिखें।
(Enter sentence or text in Unicode for sanadyanta recognition and analysis)

पिपठिषति

सनाद्यन्त पहचान एवं विश्लेषण के लिए क्लिक करें

Result:

पिपठिषति=पिपठिष (पठ्+सन्), लट् प्रथमपुरुष एकवचन

प्रकाशन सूची (List of Publications)